"परिपूर्ण ज्ञाने, परिपूर्ण ध्याने
परिपूर्ण चारित्र बोधित्व दाने,
निरागी महाशांत, मूर्ति तुमारी,
प्रभु प्रार्थना राज लेना हमारी ।"

ॐ

मुनि सुव्रत भगवान को बन्दूँ शीश झुकाय ।
जाके तीरथकाल की रामकथा अति भाय ॥

श्री रविषेणाचार्य प्रणीत महापद्मपुराण पर आधारित

जैन
॥ श्रीरामकथा ॥

पद्मानुवादक
पं. गुणभद्र जैन कविरत्न

प्रस्तुति
रमेशचन्द गुणभद्र जैन

प्रकाशन-संपादन
श्रीमती सुधा देवेन्द्र जैन

जैन श्रीरामकथा
पं. गुणभद्र जैन कविरत्न

द्वितीय आवृत्ति : २००७

प्रकाशक-मुद्रक
श्रीमती सुधा देवेन्द्र जैन
सन्मति ट्रस्ट
२१-बी, कहान नगर,
एन सी केलकर रोड, दादर (प),
मुम्बई-४०० ०२८.
चलितवार्ता ०९८६९३ ५४२२१

प्रस्तुति
श्री रमेशचन्द गुणभद्र जैन
जैन भवन, १ माला,
मामलेतदार वाडी न ४,
मालाड (प), **मुम्बई**-४०० ०६४.
कहो सुनो . (०२२) २८८९ ५०४७

आवरण शिल्पी
श्री सुरेश म्हात्रे, फोन . (०२२) २८७७४८१६

लागत मूल्य : ८०/- रु.

प्रकाशन सहयोगी
श्रीमती चन्द्रज्योत्सना जैन, श्री चन्द्रवदन जैन (रतलाम),
श्रीमती ज्योति जैन, श्री अजय जैन,
श्रीमती निधि जैन, श्री मयंक जैन (मुम्बई)
श्रीमती आभा बाझल, श्री सुधीर बाझल (जलगांव)

स्मृति शेष

अ.सौ. श्रीमती मालती रमेशचन्द जैन

जन्म : १६-१-४० मृत्यु : ०५-०३-२००३

ज्ञान पिपासु मेरी सह धर्मणी श्रीमती मालती रमेशचद जैन मुम्बई महानगर पालिका के प्राथमिक स्कूल मे प्रधानाध्यिपका के पद से सेवा निवृत्त हुई थीं।

जिनकी हार्दिक इच्छा थी की मेरे पूज्य पिताश्री प गुणभद्र जैन कविरत्न द्वारा रचित सभी काव्य ग्रथो का प्रकाशन कर समाज को आत्महितार्थ अर्पित करे। उन रचनओ की प्रथम कडी के रूप में यह **'जैन रामकथा'** महाकाव्य का पुन प्रकाशन कर मुमुक्षुओं, त्यागियो, मुनियो, शोध छात्रो, पुस्तकालयो मे वितरित करने के लिए हम प्रयत्नशील हैं। तुम्हारी इच्छानुसार पूज्य पिताश्री के शेष सभी प्रकाशन समाज के कल्याणार्थ निकट भविष्य मे प्रकाशित कर वितरित करेगे। इसी विश्वास के साथ,

तुम्हारी याद मे

- रमेशचन्द गुणभद्र जैन

जैन भवन, १ माला,
मामलेतदार वाडी न ४,
मालाड (प), मुम्बई ६४
फोन · (०२२)२८८९५०४७

मेरे विचार

प्रथमानुयोग का महान् ग्रन्थ पद्मपुराण रविषेणाचार्य प्रणीत जिसके आधार पर सरस रामकथा पुस्तक के सम्बन्ध में बडे हर्ष के साथ कुछ अपने विचार प्रगट करता हूँ । बहुत समय से इस सग्रह के प्रकाशित करने का उपयोग लग रहा था, सुयोग मित्र धर्मबन्धु श्री पन्नालाल जी आर्चीटिक्ट की प्रेरणा कार्यकारी हुई, जो पूर्व मे आठ दस वर्ष तक प्रत्येक **जैन मित्र** के अक में प्रकाशित होती थीं और सरस रामकथा प्रकाशन का शुभ अवसर प्राप्त हुआ, इस शास्त्र को प गुणभद्र जी कविरत्न ने सरस कविता का रूप देकर इसकी महानता को चार चॉद लगा दिये हैं, यह महान् आचार्य प्रणीत मूल ग्रन्थ सर्वजन हितकारी, फिर भी सर्व साधारण जनता के लाभ हित इसका पद्य रूप के कारण प्रकाशित होना अति आवश्यक था इस सरल राम गुण चरित्र से जनता को ज्ञात होगा कि श्रीराम अष्टम बलभद्र के समय मे किस प्रकार के महान् व्यक्ति हुये । जो नाना प्रकार के भ्रम जैनेतर समाज मे पाये जाते है उनका समाधान इस रामकथा की स्वाध्याय करने से होगा, और तथ्य क्या है ? जाना जा सकेगा । प ताराचन्द शास्त्री ने प्राक्कथन मे विस्तार रूप से स्पष्ट लिख दिया है, मेरी अन्तिम भावना है इस पुस्तक के पाठक रुचि पूर्वक स्वाध्याय करेगे । जिन २ महानुभावो ने इस उत्तम कार्य मे परिश्रम किया-दान दिया, वह निसन्देह भाग्यशाली है जिसके कारण उनका ज्ञान अन्तराय का निश्चय क्षय होगा और सम्यक् ज्ञान की उपलब्धि होगी ।

आदि सागर

क्षुल्लक

रेवाड़ी १६-१-७० वीर नि. स २४९६

प्राक्कथन

भारतीय आख्यान साहित्य में 'रामकथा' का महत्व सर्वाधिक है । जैन तथा जैनेतर वाङ्मय मे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का दिव्य जीवन काव्य की विविध शैलियो मे गुम्फित उपलब्ध होता है । अतीत के चलचित्रो की इन विभिन्न झाँकियो मे हमारी स्वर्णिम सस्कृति विविध गवाक्षो से झाकती दृष्टि गोचर होती है, किन्तु इतिहास का कौन-सा चित्र यथार्थ के अधिक समीप है, इसका निर्णय करना सामान्य पाठक के लिये असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होता है ।

प श्री गुणभद्र जी, बम्बई ने प्रस्तुत रचना 'रामकथा' के माध्यम से उपर्युक्त समस्या को सुलझाने का यथा साध्य प्रयत्न किया है जिसमे उन्हें निस्सन्देह सफलता मिली है ।

'पद्म पुराण' रामकथा सम्बन्धी अत्यन्त प्राचीन तथा विश्रुत महाकाव्य है । जैनेतर साहित्य मे बाल्मीकि, रामायण, रघुवश, हनुमन्नाटक, प्रसन्न राघव, अध्यात्म रामायण, काकभुशुण्डि रामायण, जानकी मगल, रामचरित मानस, (गोस्वामी तुलसीदास), स्वयभू रामायण, इत्यादि अनेक राम-काव्य उपलब्ध हैं ।

हमारे राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा विरचित 'साकेत' इस सन्दर्भ मे उल्लेखनीय महाकाव्य रचना है ।

उपर्युक्त राम काव्यो के अध्ययन से जहा सामान्य पाठक को श्रीराम के दिव्य जीवन का परिचय प्राप्त होता है, वहा अनेक प्रकार की भ्रान्तिया भी जन मानस मे जन्म लेती है । साकेत इस का अपवाद है । श्री अयोध्यासिह उपाध्याय द्वारा विरचित 'प्रिय-प्रवास' भी श्रीकृष्ण चरित्र के क्षेत्र मे उपर्युक्त तथ्य का अपवाद है । किन्तु अधिकाश प्राचीन राम कथाओ मे श्रीराम के दिव्य जीवन की अवैज्ञानिक तथ्यों तथा अनैतिहासिक घटनाओ की भरमार है ।

उदाहरणार्थ - हनुमान का बन्दर होना, हनुमान द्वारा सूर्य को मुख मे रख लेना, राम सादृश महापुरुष का शिकारी होना, महाराज दशरथ की रानियो से पुत्रेष्ठियज्ञ द्वारा सन्तति इत्यादि कथन महापुरुषो के महान् व्यक्तित्व मे भ्रान्तयाँ उत्पन्न करते हैं ।

अनेक ऐसी घटनाये उपर्युक्त ग्रन्थो मे मिलती है, जिनमे उनके प्रणेताओ ने बौद्धिकता का दिवाला निकाल दिया है ।

श्री गुणभद्र जी ने अपनी 'रामकथा' द्वारा राम चरित सम्बन्धी विभिन्न भ्रान्तियो का मूलोच्छेदन करने का सराहनीय प्रयास किया है । एतदर्थ वे बधाई के पात्र है ।

भाषा की सरलता तथा विशिष्ट सौन्दर्य ने काव्य की लोकोपयोगिता को चार चाँद लगा दिये । मुझे आशा है, कि प्रस्तुत रचना द्वारा जिज्ञासु पाठको को 'राम कथा' सम्बन्धी समुचित समाधान उपलब्ध होगे ।

पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक आदिसागर जी की सम्यक् धार्मिक प्रेरणा फलस्वरूप प्रस्तुत रचना -

'जैन मित्र' साप्ताहिक सैंकडो अङ्को से सग्रहीत की गई स्वय पूज्य श्री क्षुल्लक जी ने अपने अनवरत कठोर परिश्रम तथा सतत अध्यवसाय से इस क्षेत्र मे कार्य किया, परिणाम आप लोगो के सामने है कि ग्रन्थ सरस 'राम-कथा' प्रकाशित हो गया है ।

श्री प. पन्नलाल जी जैन आर्चीटेक्ट, शिवनगर, देहली जो 'जैन साहित्य प्रकाशन' के सचालक हैं, इस प्रकाशन कार्य की सम्पूर्ण व्यवस्था मे अपना अमूल्य समय और सभी प्रकार का सहयोग दिया, उन्हे जैन साहित्य के सरल प्रकाशन-सम्पादन, प्रचार तथा प्रसार मे सदैव ही अभिरुचि रही है, इसके अतिरिक्त जैन भूगोल सम्बन्धी बडे बडे विशाल शास्त्रोक्त चित्र बना कर तो जैन समाज मे अपना नाम अमर कर दिया है, उन्हे कोटिश धन्यवाद।

मैने पूज्य क्षुल्लक जी की सत्प्रेरणा से प्रस्तुत काव्य का यथा साध्य सशोधन किया है। अधिकाश अशुद्धिया छापे की थी उनका निराकरण किया गया है ।

अब भी त्रुटियो का रह जाना सम्भव है, साहित्य प्रेमियों तथा धर्म बन्धुओ से विनम्र निवेदन है कि उन्हे स्वय सुधार ले, तथा अग्रिम प्रकाशन के लिये व्यवस्थापक जैन साहित्य प्रकाशन को सुझाव प्रेषित कर कृतार्थ करे ।

प्रस्तुत काव्य-ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु जिन दातारो ने द्रव्य प्रदान किया उनमें रेवाडी जैन समाज का कार्य सर्वथा स्तुत्य है । रेवाडी जैन समाज ने पूज्य क्षुल्लक जी के वीर सम्वत् २४६५ में चातुर्मास सानन्द सम्पन्न होने के उपलक्ष मे इस पुण्य कार्य मे जो आर्थिक सहयोग दिया, तदर्थ दातार वर्ग को धन्यवादञ्जिलि समर्पित है ।

इसके अतिरिक्त बल्लभगढ जैन समाज ने कार्तिकी अष्टाह्निका पर्व मे सम्पन्न होने वाले श्री सिद्धचक्र विधान के उपलक्ष में इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु यथा साध्य द्रव्य प्रदान किया तदर्थ हम उनके अभारी है । इसके अतिरिक्त पूज्य श्री क्षुल्लक जी की जन्म भूमि फिरोजपुर छावनी (पंजाब) से भी १५०/- का सहयोग प्राप्त हुआ तदर्थ उन सज्जनो को भी हार्दिक धन्यवाद है ।

दिनाक १ जनवरी १९७०

विनीत -

ताराचन्द जैन शास्त्री
'साहित्य रत्न'

जैन हाई स्कूल, रेवाड़ी
(गुडगाव-हरयाणा)

भूमिका

प्राचीन भारतीय साहित्य में रामायण एक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रथ है । प्रत्येक सुशिक्षित परिवार इस ग्रथ से परिचित है । अशिक्षित परिवारों मे भी 'रामकथा' का प्रवेश रहा है । हिन्दी जगत मुख्यत· दो रामायणो से परिचित है । एक सस्कृत मे रचित वाल्मिकी रामायण तथा दूसरी अवधि मे रचित गोस्वामी तुलसीदास का रामचरित मानस । इसके अतिरिक्त वैदिक साहित्य तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं मे रघुवशम, आध्यात्म रामायण, तमिल रामायण, माधवकदली रामायण और कृतिवास रामायण आदि अनेको रामाख्यान व रामकाव्य उपलब्ध हैं । इनमे कथानक-विवरण मे कहीं-कहीं कुछ अन्तर होने के बावजूद सभी कृतियो का उद्देश्य एक बेहतर समाज-निर्माण की प्रेरणा देता रहा है ।

'रामकथा' प्राचीन भारतीय समाज की सामाजिक-सास्कृतिक परिस्थितियो तथा अपने युग-जीवन के विशद अध्ययन का श्रोत है । रामायण कालीन सस्कृति भारतीय सस्कृति की सुदीर्घ परम्परा का अभिन्न अग है जो आज भी समाजहित की दृष्टि से विशिष्ट शोध व अध्ययन की अपेक्षा रखती हैं । 'रामकथा' का मूल सरोकार धार्मिकता या उपदेश-वृत्ति नहीं है । इसमें सत्य, स्नेह, सदाचार, कर्तव्यपालन और आत्मत्याग के उन आदर्शों व मूल्यो को स्थापित किया गया है जो हमे सास्कृतिक उत्तराधिकार मे मिले हैं । वे आदर्श और मूल्य आज भी लोकजीवन को सुदर, सुशात, समृद्ध और सतुलित बनाने के लिए उपयोगी हैं ।

हर कृति युग सापेक्ष होती है । प्रत्येक युग की अपनी विशिष्ट परिस्थितियो मे ही उस युग का समाज विकसित होता रहा है । इस दृष्टि से सामती युग की वर्णव्यवस्था केन्द्रित समाज की कुछ परम्पराए और धारणाएं आज प्रासगिक नहीं रह गयीं हैं । किन्तु यह निर्विवाद है कि समाजहित व चरित्र-निर्माण के प्रसग मे रामायणकालीन मूल्य और आदर्श आज भी सार्थक व प्रेरक हैं । इस चिर-पुराणकथा की अपार लोकप्रियता तथा राष्ट्रीय व अतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसका व्यापक प्रसार इसका प्रमाण है ।

वर्तमान बाजारोन्मुख उपभोक्तावाद ने व्यक्तिगत स्वार्थ को सर्वोपरि बना कर अनैतिकता व मूल्यहीनता का एक भयावह सास्कृतिक सकट खड़ा कर दिया है । वैचारिक-प्रदूषण के इस दौर में 'रामकथा' हमें प्रेरणा देती है । अपनी सांस्कृतिक परम्परा के वस्तुगत व सम्यक् अध्ययन से हम समाजहित और मानवकल्याण के प्रति समर्पित मूल्य-व्यवस्था की सार्थकता को उद्घाटित कर सकते हैं ।

जैन साहित्य में रामकथा के दो रूप प्रचलित हैं । श्वेताम्बर सम्प्रदाय में विमलसूरि की रामकथा का प्रचलन है तो दिगम्बर सम्प्रदाय में विमलसूरि तथा गुणभद्र दोनों की रामकथाए प्रचलित हैं । श्री रविषेणाचार्य प्रणीत महा पद्मपुराण पर आधारित रामकथा केवल जैन-साहित्य की ही नहीं, समस्त भारतीय आख्यान साहित्य की एक बहुमूल्य निधि है । सन्मति ट्रस्ट ने पडित गुणभद्र जैन द्वारा किए गये इसके हिन्दी पद्यानुवाद के इस नवीनतम सस्करण को प्रकाशित करते हुए एक सरहानीय कार्य किया है ।

इस हेतु मैं सन्मति ट्रस्ट को साधुवाद देता हू ।

- डॉ. सोहन शर्मा

१० मई, २००७
मुबई

(डा सोहन शर्मा हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार एव विचारक हैं ।)

* * *

मेरे दो शब्द

भारतवर्ष का यह सौभाग्य है कि उसमे श्रीरामचन्द्र जैसे महान् पुरुषो का जन्म हुआ। प्रभात मे उठने पर श्री राम नाम बोलने से हम अपने को पवित्र मानते हैं । उनकी कथा यहॉ के छोटे छोटे बच्चे भी जानते हैं । श्रीराम एक उच्च आदर्श पुरुष थे । उन्होने राज्य का त्याग कर वनवास स्वीकार किया । तथा वन जन्य कष्ट सहर्ष सहे । राज्य के अधिकारी होते हुए भी अपने भाई भरत को राज्य भार सौंप कर जगलो की राख छानी। **पिता की प्रसन्नता को ही अपनी प्रसन्नता समझा ।** ऐसे यथार्थवादी साहित्य मे बहुत ही कम मिलेगे ।

सीता का रावण द्वारा हरण होने पर भी श्री राम की रावण से युद्ध की इच्छा नही थी। वे शान्ति से अन्याय का प्रतिकार करना चाहते थे । अभिमानी लङ्कापति ने उनकी बात न मानी, और अन्त मे समर क्षेत्र मे अपने प्राण गुमाने पडे । सारी कथा उत्तम आदर्शो से भरी हुई । राम चरित्र पढने से चित्त को एक प्रकार अलौकिक शान्ति मिलती है । कथा पद्मपुराण से सम्बन्धित है ।

सती सीता ने जङ्गल के दु खो की कोई परवाह न करके पति के साथ वन जाना स्वीकार किया । वह एक आदर्श नारी थी । स्त्री समाज उससे बहुत कुछ ग्रहण कर सकता है । श्री लक्ष्मण का भ्रातृस्नेह आज के युग के लिये बोध रूप है । बन्धुओ मे कैसा स्नेह होना चाहिए यह इनके जीवन से समझा जा सकता है । अपने उत्तम गुणो के कारण ही आज राम-कथा ससार मे सर्वत्र प्रचलित हो रही है ।

मैने अपने अध्ययन काल मे राम-चरित को अनेक बार सुना, पढा । पढकर मेरे मनको अत्यन्त प्रसन्नता होती थी और उस समय मैने सीता आदि के ऊपर कविताये लिखी थी जो पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रही ।

एक बार सर्व कथा लिखने का विचार आया । और उसके दो अध्याय भी मैने लिख डाले थे । उसी समय श्रीमान् **सेठ मूलचन्द जी किशनदास जी कापडिया,** सूरत सम्पादक **जैन मित्र** से अहमदाबाद मे भेट हुई । उन्होने मुझे कुछ लिखने को कहा । मैने राम-कथा की चर्चा की । उन्होने उसे जैन मित्र मे क्रमश प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया । जो अन्त तक बराबर उसमे प्रकाशित होती रही । इसके लिये मै

कापडिया जी का अत्यन्त आभारी हूँ । आज जो यह कथा पुस्तकाकार देखने मे आ रही है, यह उनकी प्रेरणा का ही शुभ फल है ।

जैन मित्र मे राम-कथा प्रकाशित होती थी और सभी उसको अत्यन्त रुचि से पढते थे । उनमे से बहुत से सज्जनो ने मुझे लिखा था कि आप इसे पुस्तकाकार प्रकाशित करे । लेकिन उस ओर मेरा विशेष ध्यान नहीं गया, क्योकि यह कार्य व्यय साध्य था ।

पू. क्षुल्लक श्री आदि सागर महाराज का 'राम-कथा' को पुस्तकाकार प्रकाशित करने की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट हुआ । और वे स्वय भी जैन मित्र के कथाश अङ्को का सग्रह करते रहे । इसके प्रकाशन की उनकी तीव्र भावना थी, इससे उन्होने इस वर्ष के चातुर्मास के अवसर पर रेवाडी जैन समाज से इसके प्रकाशित करने की प्रेरणा की। समाज ने उनकी बात को सहर्ष स्वीकार किया तथा यथाशक्ति सहायता प्रदान की ।

कथा के उत्तरार्द्ध के लिये, श्री क्षुल्लक जी के उपदेश से प्रभावित होकर बल्लभगढ निवासी भाई बहनो ने जो योगदान दिया है, उसके लिये मैं श्री क्षुल्लक जी तथा उन सबका अन्त करण से अत्यन्त आभारी हूँ ।

भाई श्री पन्नालाल जी आर्चीटेक्ट दिल्ली वालो ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे जो अपार परिश्रम उठाया है, उसे किसी तरह नहीं भुलाया जा सकता । यदि वे प्रकाशन का भार अपने स्कधो पर वहन न करते तो कथा का जो आकार आज पाठको के सामने उपस्थित है, न हो सकता । आपको साहित्य से अच्छी रुचि है । उसी के आधीन होकर समय समय पर अवश्य ही कुछ न कुछ प्रकाशित करते रहते है । उनकी अभिलाषा सत् साहित्य के प्रचार की है । इस प्रकाशन का सारा श्रेय आपको ही है । यदि आपका सहयोग न होता तो कथा जैन मित्र के अङ्को मे पडी रह जाती । मै आपके अपार परिश्रम का हृदय से स्वागत करता हूँ तथा उसके लिये आपको जितना भी धन्यवाद दिया जावे, थोड़ा है ।

श्री शुभचन्द्राचार्य का एक श्लोक स्मृति मे आ गया है । उसका यहाँ लिखना अनुचित न होगा

''न कवित्वाभिमानेन, न कीर्तिप्रसरेच्छया ।
कृतिः किन्तुमदीयेयं, स्वबोधायैव केवलम् ।।''

गुणभद्र जैन

जैन भवन, मामलेतदार वाडी-४,
मालाड (प), बम्बई नं. ६४.

जैन श्रीरामकथा

प्रथम खण्ड

उपक्रमणिका

करके पराजय मोह का, जो सर्वथा कृतकृत्य है ।
मद, मोह, मत्सरता रहित, अविचल अमर अज नित्य है ।।
दिखता चराचर विश्व सब, जिनके अलौकिक ज्ञान में ।
हो लीन मेरा चित्त उन, श्री वीर प्रभु के ध्यान में ।।१।।

हे सरस्वति ! भक्ति से मै, तेरी करूं आराधना ।
तू है हृदय का मन्त्र, मैं तेरी करूं नित साधना ।।
तेरी कृपा से मानवों के, सिद्ध होते इष्ट हैं ।
क्षण में तुम्हारे नाम से सब क्षीण होते कष्ट है ।।२।।

ससार वैभव त्याग कर, निज में करें जो लीनता ।
प्रतिक्षत जहां पर है सतत, परभाव की अति क्षीणता ।।
अनुरक्त अपने श्रेय में, छोड़ी सभी की दीनता ।
वे आत्म-साधक साधुवर, करने कलुष की क्षीणता ।।३।।

आचार्य श्री रविषेण ने, लिख राम की अनुपम कथा ।
सब के लिए करदी सरल, इस भांति लिखने की प्रथा ।।
आधार ले उनकी कथा का, आज कुछ लिखने चला ।
आदर्श पुरुषों की कथा से, विश्व का होता भला ।।४।।

❑ ❑ ❑

करते हुए विहार वीर प्रभु, विपुलाचल पर आये ।
देवो ने हर्षित हो करके, मधुर गीत शुभ गाये ।।
फूल उठी वनराजी सहसा, हुई मही क्या पुलकित ।
उमड़ पड़ा मनुजों के मन में, सुख का स्रोत अपरिमित ।।५।।

आये हैं श्री वर्द्धमान जिन, विपुलाचल के ऊपर ।
माली ने वृतान्त कहा सब, श्रेणिक नृप से जाकर ।।
सुन कर शुभ यह समाचार वह, फूला नहीं समाया ।
सिंहासन तज कर परोक्ष में, प्रभु को शीश नवाया ।।६।।

मुदित हृदय होकर भूपति ने, भूषण सकल उतारे ।
राज्य चिन्ह सब छोड़ दान में, तत्क्षण सब दे डाले ।।
दिखने लगे उसे श्री प्रभुवर, निज आंखों के सन्मुख ।
सदा पूज्य पुरुषों की स्मृति से, पाता हृदय अधिक सुख ।।७।।

जिस प्रभु की सेवार्थ स्वर्ग से, आते सुरगण भू पर ।
आ पहुंचे वे वीर भाग्य से, स्वयं अहो मेरे घर ।।
चमक उठा इनके आने से, सुन्दर भाग्य हमारा ।
दे देकर उपदेश इन्होने, भू-का भार उतारा ।।८।।

होकर गद् गद् हृदय भक्ति से, चले नृपति पुर बाहर ।
देख दूर से समवशरण को, तजा राज्य आडम्बर ।।
कर वन्दन त्रैलोक्य-नाथ को, बैठे भूप वही पर ।
अभयकुमार, वारिषेणादिक, आए परिजन मिलकर ।।९।।

प्रभु दर्शन का हर्ष नृपति के, मन में नहीं समाया ।
अहो जगत् में आज नृपति ने, अनुपम वैभव पाया ।।
पुनः पुन. अवलोक नाथ को, दृग थे नही अघाते ।
देख सौम्य-शशि को चकोर ज्यो, पुलकित-तनु सुख पाते ।।१०।।

पूर्वोदय वश वहां मनोहर, खिरी वीर की वाणी ।
सुनते उसे स्वच्छ मन हो कर, शिव-पथ इच्छुक प्राणी ।।
यह चेतन संसार-विपिन में, फिरता मारा मारा ।
पाता नही मोह के वश हो, दुख का कही किनारा ।।११।।

चहु गति-गर्त अगाध भयानक, उसमे पड़े निरन्तर ।
आर्य क्षेत्र मानव कुल उत्तम, धर्म श्रवण है दुष्कर ।।
पा करके भी योग श्रवण, का दुस्तर श्रद्धा आना ।
श्रद्धा होने पर दुष्कर है, संयम को अपनाना ।।१२।।

पीकर मोह वारुणी प्राणी, विषयों में सुख माने ।
खाकर मूर्ख धतूरा जैसे, सबकों सोना जाने ।।
छोड विश्व की ममता सारी, अपने को पहिचानो ।
शिव सुख की जो है अभिलाषा, सत्य तत्व को जानो ।।१३।।

प्रभु का यह उपदेशामृत शुभ, सब के मन को भाया ।
यथाशक्ति सब ही जीवों ने, सत्य-धर्म अपनाया ।।
सुनकर प्रभु के वचन अमोलक, हृदय-कमल था विकसित ।
पूंछा यों गौतम गणधर से, होकर अति विनयान्वित ।।१४।।

भगवन् राम-कथा सुनने को, आतुर है मेरा मन ।
सत्पुरुषों का चरित जगत को, कर देता है पावन ।।
इनकी जो लौकिक-ग्रन्थों में, कथा आज है प्रचलित ।
विद्वानो को अपने मन मे, लगती नही यथोचित ।।१५।।

श्रद्धालु श्रद्धावश जिस को, सत्य मानता मन मे ।
सत्य ज्ञात हो जाने पर, वह रुचे न निज जीवन मे ।।
रेणु कणो के पेलन से ज्यों, कभी न तेल निकलता ।
त्यो विपरीत कथा सुनने से, पुण्य अश न मिलता ।।१६।।

श्रेणिक का समयोचित शुभ प्रद, सुन कर प्रश्न मनोहर ।
दन्त किरण से जग को उज्जवल, करते बोले गणधर ।।
हे राजन् एकाग्र चित्त हो, है यथार्थ निज वाणी ।
उस ही के अनुसार कहूँगा, मैं सब कथा पुरानी ।।१७।।

सत्य-कथन मैं श्री जिन वाणी, निर्विवाद है भूपर ।
दूर करे अज्ञान तिमिर को, बनकर दिव्य दिवाकर ।।
हे राजन् श्रेणिक निश्चय ही, रावण विद्याधर था ।
था अभक्ष्य से दूर सर्वथा, गुणी, शौर्य का घर था ।।१८।।

आर्य वीर सुग्रीवादिक भी, मानव थे; नहीं बन्दर ।
थे मनुजों के ही अधिपति ये, कुल इनका विद्याधर ।।
नींव बिना जैसे मन्दिर की, भीत न बनने पाती ।
वैसे ही जिन वचन बिना, प्रिय कथा न सत्य कहाती ।।१९।।

वीतराग के शुभ वचनों से, मुक्ति मार्ग का पा सन्देश ।
उनके अवलम्बन से अपनी आत्म शक्ति पावन सर्वेश ।।
यह जग तो सत्पुरुषों में भी, करे कल्पना नाना ।
लोकोत्तर पुरुषों को इसने, अपना सा ही माना ।।२०।।

अचल सत्य का निर्णय करने, करता लेश न उद्यम ।
रूढि मार्ग से जो मिल जाता, वही इस है अनुपम ।।
रख उसमें श्रद्धान भाव से, विचलित कभी न होता ।
इस प्रकार बहता रहता है, मिथ्या मन का स्रोता ।।२१।।

जम्बू द्वीप स्थित भारत के, नाभिराय थे स्वामी ।
शान्त, दान्त, अतिशय उदार मन, ज्ञानवान निष्कामी ।।
मरुदेवी थी प्राणवल्लभा, जीवन पंथ सहायक ।
सकल प्रजा को थे ये दोनों, चन्द्र सदृश सुखदायक ।।२२।।

एक बार त्रिभुवन माता ने, सोलह स्वप्न निहारे ।
जान स्वप्न वृतान्त भूप ने, इस विधि वचन उचारे ।।
हे देवी, स्वप्नो से समझों, उघडा भाग्य हमारा ।
भाग्यशालियों में अति उत्तम, होगा पुत्र तुम्हारा ।।२३।।

विश्व मात्र को हित पथ का वह, होगा दर्शक नेता ।
काम, क्रोध, मोहादि, शत्रुओं, का वह परम विजेता ।।
मातृ-कुक्षि से ऋषभदेव, जब आये धरणी ऊपर ।
जन्मोत्सव अत्यन्त मनाया, देवों ने तब आकर ।।२४।।

हर्ष युक्त सौधर्म इन्द्र, ले गया उन्हें सुरगिर पर ।
कर अभिषेक भक्ति से प्रभु का, आया वह गृह सत्वर ।।
माता-पिता देख बालक को, आनन्दित थे ऐसे ।
पाकर रङ्क निधान विश्व में, रोमांचित हो जैसे ।।२५।।

तीर्थंकर-जननी-पद पंकज, हरि ने शीश झुकाकर ।
पिता नाभि की राज सभा में नृत्य किया अति सुखकर ।।
शनैः शनैः वे ऋषभदेव प्रभु, आये यौवन वन में ।
थी अपूर्व सुन्दरता द्रग-प्रिय, उनके सारे तन में ।।२६।।

अङ्ग अङ्ग में फैल गई थी, सुषमा-रस की धारा ।
आकर रूप बसा था उनमें, पाकर अचल सहारा ।।
भोग भूमि हो चुकी नष्ट थी, हुआ काल परिवर्तन ।
कर्म भूमि का कर्मठ युग, तब आया था चिर-नूतन ।।
उगे धान्य स्वमेव भूमि पर, नाम न जाने पर नर ।।२७।।

पीकर मधुर इक्षु रस को भी, तृप्त न होते वे नर ।
नाभि नृपति के निकट प्रेम से, आये तब सब मिल कर ।।
हाथ जोड़ कर के कुलकर को, निज वृतान्त सुनाया ।
हे राजन् ! इस समय क्षुधा ने, हमको अधिक सताया ।।२८।।

करने पर भी यत्न करोड़ों, समझ न हम कुछ पाते ।
करते हैं जिस ओर दृष्टि हम, अद्‌भुत दृश्य दिखाते ।।
सिहादिक पशुओं ने अपनी, तज दी सहज सरलता ।
गाय और भैसो के स्तन से, जानें क्या है झरता ।।२९।।

तुम्हे छोड़ कर अपने दुख की, किसको कथा सुनायें ।
कष्ट निवारण का उपाय कुछ, हमको आप बतायें ।।
ऋषभदेव ने लोक धर्म तब, उन सबको समझाया ।
क्रूर प्राणियों से बचने का भी, तब मार्ग बताया ।।३०।।

कर्म भूमि प्रारम्भ हो गई, श्रम से अब सुख होगा ।
उद्यम रहित मनुज को अबसे, देखो अति दुःख होगा ।।
सम्पति असि-कृषि के द्वारा निज, जीवन आप चलाओ ।
लख नवीनता जगती तल पर, किंचित मत घबराओ ।।३१।।

कर्म-भूमि का समय आ गया, बोले यों करुणाकर ।
नगर, ग्राम, गृह आदि व्यवस्था, की सुरपति ने आकर ।।
उन मनुजों को आदि देव ने, गृह-व्यवहार सिखाया ।
न्याय नीति का भूपतियों को, सुन्दर पाठ पढ़ाया ।।३२।।

थे रक्षा में कुशल पुरुष जो, क्षत्रिय उन्हें बताया ।
कृषि-वाणिज्य निपुण पुरुषों को, वैश्य वर्ण ठहराया ।।
परजन की सेवा की जिसने, माना जीवन साधन ।
शूद्र कहाये वे धरणी पर, युग आया था नूतन ।।३३।।

नन्दा और सुनन्दा वे दो, थीं प्रभु की ललनायें ।
मानों अनुपम कल्पवृक्ष की, थीं ये मधुर लतायें ।।
भरत, बाहुबलि आदि ऋषभ के, शत सुत थे सुखसागर ।
ब्राह्मी, सुन्दरी कन्यायें, थी विद्या अगम सरोवर ।।३४।।

एक बार सुरपति ने प्रभु तट, किया नृत्य आयोजन ।
करती करती नृत्य अप्सरा, खो बैठी निज जीवन ।।
नही रङ्ग में भङ्ग पड़े अब, सोच यही निज मन में ।
सुरपति ने तत्तुल्य अप्सरा, वहां खड़ी की क्षण में ।।३५।।

आदीश्वर ने दिव्य ज्ञान से, जानी वह सब माया ।
लगे सोचने क्षण भंगुर है, भोग विलासी काया ।।
विषयो के वश होकर के मैं, अब तक रहा सदन मे ।
तज करके सब राज-पाट अब, जाऊं मैं मुनि वन में ।।३६।।

यों वैराग्य चित्त थे जब प्रभु, लौकान्तिक सुर आये ।
सद् विचार है नाथ आपके, "सांजलि" शीश नवाये ।।
बुला ऋषभ ने निज पुत्रों को, गृह का भार उतारा ।
अब न राज्य से मुझे प्रयोजन, वह सब भांति तुम्हारा ।।३७।।

पुत्र तुल्य तुम शिष्ट प्रजा का, पालन सुख से करना ।
शत्रु जन्य उनके दुःखों को, साहस पूर्वक हरना ।।
जाकर के उपवन में प्रभु ने, भूषण वसन उतारे ।
कर सिद्धों का स्मरण हृदय में, पंच महाव्रत धारे ।।३८।।

यो प्रभु को दीक्षित विलोक कर, वहां बहुत से भूपति ।
तज, तज अपने वस्त्र भक्तिवश, हुए स्वयं वे दीक्षित ।।
मुनि-चर्या अज्ञात भूप वे, थे प्रभु के अनुरागी ।
प्रभु को त्यागी देख आप वे, हुए वेश में रागी ।।३९।।

प्रभु तो कायोत्सर्ग धरे, छह मास रहे थे अविचल ।
कच्छ, महा कच्छादि कष्ट से, हुए अधिक तर चंचल ।।
सह न सके मुनि चर्या के दुख, तज तज वेष दिगम्बर ।
करते उदर पूर्ति फल खाकर, मृग सम बन में फिरकर ।।४०।।

नमि, विनमि प्रभु के तट आकर, कर चरणों में वन्दन ।
हमें दीजिए राज्य मनोहर, हो जिससे प्रमुदित मन ।।
अचल योग धर थे अविचल प्रभु, दिया न मुख से उत्तर ।
आया तब धरणेन्द्र विपन में, जान वृत्त सब सत्वर ।।४१।।

दिया उन्हें विजयार्द्ध राज्य शुभ, रहे जहां विद्याधर ।
दो श्रेणी आगम प्रसिद्ध है, उसकी दक्षिण उत्तर ।।
देकर के धरणेन्द्र राज्य यो, जाता हुआ भवन में ।
क्या पदार्थ जग मे अलभ्य है, पुण्यवान जीवन ।।४२।।

रह करके छह मास ध्यान में चले नगर प्रति प्रभुवर ।
पर मुनि की आहार विधि को, नही जानते थे नर ।।
धर्म मार्ग के लिए ईश तो, निकले करने भोजन ।
अन्य वस्तुओं से उनको था, किंचित् नही प्रयोजन ।।४३।।

अज्ञ नगर जन विविध वस्तुयें, ला, ला सन्मुख धरते ।
उनको ग्रहण न कर आदीश्वर, निर्भय रहें विचरते ।।
छह महीने तक अन्तराय वश, किया न प्रभु ने भोजन ।
फिर भी अपने संयम में थे, दृढ़तर वे प्रभु क्षण क्षण ।।४४।।

करते हुए विहार सिंह सम, हस्तिनापुर में आये ।
शशि सा उनको देख नगर जन, अतिशय हर्ष मनाए ।।
श्री श्रेयान्स भूप ने उनको आते देखा ज्यों ही ।
पूर्व जन्म की सारी सुस्मृति, जागी उर में त्यों ही ।।४५।।

होकर खडे द्वार पर सविनय, तिष्ठो बचन सुनाया ।
मधुर इक्षु रसका सुभक्ति सह, सुख से पान कराया ।।
धन्य धन्य यह पात्र सर्वथा, धन्य धन्य वह दाता ।
धन्य धन्य यह भूमि मनोहर, नभ में शब्द सुनाता ।।४६।।

करके यों आहार नाभि सुत, चले गए फिर बन में ।
उन्हें नगर से काम नहीं कुछ, जिन्हें न ममता तन में ।।
मार मोह की सेना सारी, शुक्ल ध्यान के बल से ।
हुए सुशोभित दिनकर सम वे, दिव्यज्ञान केवल से ।।४७।।

लोक-लोक हस्त रेखावत्, उनको सर्व जनाया ।
सुरकृत समवशरण में हो स्थित, हित का पन्थ बताया ।।
जीव मात्र को इस धरणी में, सब विधि धर्म शरण है ।
इसके बिना चार गतियों में, दुखमम महा मरण है ।।४८।।

सुख के लिये नित्य सारा जग, करता रहे प्रवर्तन ।
धर्म बिना जग की प्रवृत्ति से, मिलता कब सुख का कण ।।
सुन प्रभु के इस दिव्य बोध को, शिव पथ में जो आया ।
महा मोह को त्याग शीघ्र ही, निज सुख उसने पाया ।।४९।।

निष्कटक सम्पूर्ण भरत में, राज्य करें भरतेश्वर ।
बाहु-बली के बिना बन्धु सब, हुये मुक्ति अग्रेसर ।।
भरतेश्वर का बाहु-बली को, नहीं मान्य था शासन ।
उद्यत हुये शीघ्र दोनों ही, करने को भीषण रण ।।५०।।

किया मन्त्रियों ने यह निर्णय, कर लें युद्ध परस्पर ।
लाभ न दिखता है करने में, नर संहार भयंकर ।।
दृष्टि, मल्ल, जल युद्ध परस्पर, हुए वही पर निश्चित ।
भरतेश्वर इन सब युद्धों में, अतिशय हुए पराजित ।।५१।।

क्रोधित हो तब वीर बन्धु पर, अपना चक्र चलाया ।
घात न कर वह चक्र देह का, लौट भरत फिर आया ।।
हो विरक्त तब बाहूबलि ने, तजा राज्य सब तत्क्षण ।
करने लगे तपोवन मे जा, कठिन तपस्या मुनि बन ।।५२।।

एक वर्ष का अनशन ले वे, हुए आप मे तत्पर ।
किन्तु शुल्य थी मन में उनके, दुखित हुआ भरतेश्वर ।।
वर्ष पारणा दिवस भरत ने, उनको पूजा सादर ।
प्रगट हुआ तब बाहु बलि को, केवल ज्ञान दिवाकर ।।५३।।

अन्त समय में सब प्रकार के, तोड़ कर्म के बन्धन ।
अजर अमर अक्षय अविनाशी, पाया उत्तम निज धन ।।
भरतेश्वर ने भी भोगों में, जब न सार कुछ पाया ।
अपने पूज्य पिता के पथ को, सादर तब अपनाया ।।५४।।

पाकर केवल ज्ञान अलौकिक, निज में भरत समाये ।
पाया वह स्वस्थान जहां से, कोई कभी न आये ।।
भव्य लोक को मोक्ष मार्ग का, शुभ उपदेश सुनाकर ।
हुए मोक्ष को प्राप्त ऋषभ प्रभु, गिरि कैलाश शिखर पर ।।५५।।

प्रभु का पावन ध्यान निरन्तर, जो करते हैं मन में ।
मोक्ष मार्ग की दाता निर्मल भक्ति बसे जीवन में ।।
लाख लाख हो बन्दन उनके अनुपम चरण कमल में ।
रहे सुशोभित प्रतिमा उनकी, मेरे अन्तस्तल में ।।५६।।

❑ ❑ ❑

भरतेश्वर सुत अर्ककीर्ति से, सूर्य वंश की हुई प्रवृत्त ।
इस कुल अगणित धरणीधर, भव निवास से हुये निवृत्त ।।
बाहुबली के अनुज सोमयश, सोम वंश के थे आधार ।
बहुतेरे नृप वंश इसी के, भव सागर से उतरे पार ।।५७।।

नमि क्षितिपतिसे विद्याधर कुल, जग में हुआ महा विख्यात ।
इस कुल के भी अगणित खेचर, गये मुक्तिकर कर्म विनाश ।।
कितने ही तज राज्य सम्पदा, सुर पुर में कर गये प्रयाण ।
भोगों में ही लीन रहे जो, मिला नर्क उनको भयवान् ।।५८।।

उद्धत 'विद्युद्दृष्ट्रं भूमिपति, निज विमान में गया विदेह ।
देखा संजयन्त मुनिवर को, जिन्हें नहीं था तन से नेह ।।
देख उन्हें उस विद्याधर को, मनमें उपजा अतिशय क्रोध ।
पूर्व-जन्म के कर्मों के वश, प्रगटित होता वैर विरोध ।।५९।।

ध्यानारूढ़ उठा कर उनको, ले आया पुर में तत्काल ।
कहा नगरमें द्वेष विवश हो, इस मुनि को हो क्लेश कराल ।।
लगे मारने अज्ञानी जन, मुष्टि तथा कर्कश पाषाण ।
सहकर वह उपसर्ग शान्ति से, प्राप्त कर लिया केवलज्ञान ।।६०।।

उसी समय उन मुनिवर के तट, वन्दनार्थ आये धरणेन्द्र ।
कुपित हुये वे वृत्त जान सब, जैसे होता है नागेन्द्र ।।
नागपाश से बाँध प्रजा को, हुए मारने को तैयार ।
कहा सभी ने विद्युद्दृष्ट्रका, है इसमें अपराध अपार ।।६१।।

उत्साहित कर इसने हमसे, नाथ कराया है जो दोष ।
क्षमा चाहते हाथ जोड़ कर, आप न कीजे हम पर कोप ।।
ज्ञात हुआ धरणेन्द्र देव को, महादुष्ट है विद्युद्दृष्ट्र ।
बाँध उसे दृढ़ बन्धन मे तब, दिया देव ने भारी कष्ट ।।६२।।

कहा अन्य देवो ने सविनय, देव आपका अनुचित काम ।
छौड दीजिये इसे विश्व सब, भोगे कर्मो का परिणाम ।।
हर उसकी सारी विद्यायें, किया उसे बन्धन से हीन ।
व्यथित हुआ खेचरपति मनमें, फणिधर जैसे रत्नविहीन ।।६३।।

होकर नम्र कहा उसने तब, क्षमा करें मेरा अपराध ।
बतलायें सदुपाय मुझे कुछ, सकूं शीघ्र मैं विद्या साध ।।
बोले तब धरणेन्द्र शान्त हो, कभी न करना ऐसा काम ।
करने से उपसर्ग साधु को, सुखकर होता कब परिणाम ।।६४।।

संजयन्त मुनि प्रतिमा के तट, रहकर करो तपादि विशेष ।
होगी विद्या सिद्ध तुम्हें तो, देना मत विज्ञों को क्लेश ।।
चैत्यालय, जिन मुनियों का यदि, कर बैठोगे तुम अपमान ।
होगी विद्या नष्ट सर्वथा, जैसे जल से अग्नि महान ।।६५।।

समझा यों उस विद्याधर को, चले गये धरणेन्द्र स्वधाम ।
हुए इसी विद्याधर कुल मे, अगणित नायक गुण के धाम ।।
धर्माराधन तत्परता से, मिला किसी को स्वर्ग विमान ।
तोड कर्मकी रज्जु किसी ने, प्राप्त किया अनुपम निर्वाण ।।६६।।

अजितनाथ से हुआ सुशोभित, पृथ्वी में इक्ष्वाकु वंश ।
अधिपति वे साकेत नगर के, जो पुर है क्षिति का अवतंस ।।
सौप राज्य सब 'विजय' पुत्र को, हुए स्वयं दीक्षित भगवान ।
हुआ चक्रवर्ती सुत इसके, सगर नाम धारक गुणवान ।।६७।।

भरतक्षेत्र विजयार्द्ध अपर में, चक्रवाल है नगर महान ।
वहाँ पूर्णघन खेचर अधिपति, विद्याओ मे हैं बलवान् ।।
तिलक नगर के भूप सुलोचन की, कन्या की, की अभिलाष ।
किन्तु सुलोचन के उत्तर से, हुआ पूर्णघन अधिक निराश ।।६८।।

बलात्कार कन्या लेने को, चढ़ आया सेना ले दुष्ट ।
स्वार्थी मनुज देखता है कब ? अन्य मनुज का इष्ट अनिष्ट ।।
उत्पलमति को बन्धु विपन में, लेकर चला गया तत्काल ।
आये सगर वहाँ पर सहसा, सब कुछ करता पुण्य विशाल ।।६९।।

चक्रनाथ से निज भगिनी का, वन में ही कर दिया विवाह ।
मार पूर्णघन को फिर रणमें, हुई शान्तनिज मनकी चाह ।।
चक्रवर्ती का बल पाकर के, बना खेचरों का अधिराज ।
उसको अतिशय लगा मानने, बलशाली वह सर्व समाज ।।७०।।

देख विपक्षी के सुभटो को, मरा पूर्णघन सुत तज राज ।
पहुचा समयशरण में सत्वर, शोभित जहाँ अजित जिनराज ।।
आया 'सहसनयन' तब पीछे, लेकर के कर में तलवार ।
रोष विवश कम्पित होता था, क्षण क्षण में तनु वारॅ-वार ।।७१।।

अहो ! अचानक अपने सन्मुख, देख यहां प्रभु को साक्षात ।
उन प्रभुवर के शुभ प्रभाव से, भूल गया कटुता की बात ।।
दोनों छोड चित्त कल्मपता, बने परस्पर सच्चे मित्र ।
पाकर के उत्तम निमित्त को, पूर्व पुण्य फलता सर्वत्र ।।७२।।

कहा मेघवाहन ने प्रभु से, धन्य, धन्य हे जिनवर आप ।
सुधा भरी भवदीय दृष्टि से, मानव के मिट जाते पाप ।।
देते हैं भगवान् विश्य को, सत्य, दयामय शुभ सन्देश ।
किन्तु कभी इसके बदले में, ग्रहण न करते हैं धन लेश ।।७३।।

जीर्ण वस्त्र समजान जगतको, किया आपने उसका त्याग ।
निर्मोही प्रभु के दर्शन से, खुला आज मेरा सद्भाग्य ।।
भव-समुद्र से दुखित जीव को, करते तुम क्षण भर में पार ।
टलता नित्य नाथ-आश्रय से, जन्म-मरण का सारा भार ।।७४।।

समवशरण में देख उसे यों, राक्षसेन्द्र तब भीम, सुभीम ।
कहें मेघवाहन से तुम पर, हम प्रसन्न हैं आज असीम ।।
अजितनाथ प्रभुके चरणों का, तुमने लिया प्रबल आधार ।
ग्रहण करो, तुम को दें जो हम, अपनी इच्छा वश उपहार ।।७५।।

इस ही लवण महोदधि में हैं, सुन्दर अन्तर द्वीप अनेक ।
उप द्वीपों के मध्य स्थित है, राक्षस द्वीप मनोहर एक ।।
वहीं त्रिकूटाचल पर्वत है, सुरगिरि सदृश महा रमणीय ।
पर्वत पर नाना शोभामय, है लङ्का नगरी कमनीय ।।७६।।

हो प्रसन्न विद्याधर तुमको, वह नगरी मैं करूं प्रदान ।
निज परिवार सहित रह उसमें, भोगो सब सुख इन्द्र समान ।।
इस त्रिकूट के अधो भाग में, है विस्तृत लंका पाताल ।
वहाँ अलंकारोदय पुर है, जगती में सुखरूप विशाल ।।७७।।

सदा सुरक्षित है वह लङ्का, रिपुओं का नहीं जहाँ प्रवेश ।
मिली मेघवाहन को लंका, प्रमुदित इससे हुआ विशेष ।।
राक्षस नाथ भीम ने उसको, दिया रत्नमय अनुपम हार ।
निज प्रकाश से करता था जो, निशामध्य तमका संहार ।।७८।।

निज निज वाहन पर चढ करके, आये विद्याधर परिवार ।
उत्सव सहित गये लङ्का में, करते प्रभुका जयजय कार ।।
रहें मेघवाहन लङ्का में, सिंह तुल्य निर्भय निश्चिन्त ।
पुण्योदय जब होता विकसित, आता तब कष्टों का अन्त ।।७९।।

किन्नर गीत नगर के वासी, रति मयूख थे विज्ञ नरेश ।
'अनुमति' नामक प्राणवल्लभा, शोभा की प्रतिमा सविशेष ।।
सुता 'सुप्रभा' थी दोनों के, जगती में सौन्दर्य निधान ।
भूप मेघवाहन ने उससे, कर विवाह पाया सुखदान ।।८०।।

महारक्ष नामा सुत उसके, हुआ लोकमें लक्षणवान् ।
एक समय लंकापति मन में, उपजा भव वैराग्य महान ।।
अजितनाथ के चरणों में ली, दीक्षा; तज लंका का भार ।
भोगों के पश्चात त्याग ही, है मानव जीवन का सार ।।८१।।

महारक्ष के तीन पुत्र थे, मानों त्रिभुवन के आधार ।
अमररक्ष श्री उदधिरक्ष, शुभ भानुरक्ष ये परम उदार ।।
अजितनाथ प्रभु जगती तल में, भव्यों को देकर उपदेश ।
पहुंचे सिद्ध-निवास भूमि में, कर्मों को करके निःशेष ।।८२।।

❑ ❑ ❑

सगर चक्रवर्ती के थे सुत, देव-तुल्य प्रिय षष्टि हजार ।
वन्दनार्थ कैलाश गया था, पुत्रों का समुदाय अपार ।।
लगे खोदने खाई वहां वे, उस पर्वत के चारों ओर ।
हुआ कुपित नागेन्द्र शीघ्र ही, करके अपनी दृष्टि कठोर ।।८३।।

भस्म हो गये वे क्षण भर में, बचे मात्र तब दो ही वीर ।
चले नगर की ओर शोकसे, आंखों से टपकाते नीर ।।
विज्ञ मन्त्रियों ने चक्री से, प्रथम गुप्त रक्खा वृत्तान्त ।
अवसर देख वृद्ध मन्त्री ने, कहा वृत्त सब होकर शान्त ।।८४।।

हे पृथ्वीश्वर! इस पृथ्वी पर, है अनित्यताका साम्रज्य ।
बन जाता है रङ्क क्षणिक में, बना हुआ जो भूपति आज ।।
आप सदृश कितने ही राजन्, इस धरणी पर हुए नरेश ।
बने काल के ग्रास अन्त में, छोड़ छाड़ कर अपना वेश ।।८५।।

नहीं काल को दया किसी पर, चले निरन्तर इसका चक्र ।
हो जाता लाचार सर्वथा, इसके सन्मुख सुरपति शक्र ।।
क्षितिपति सुनकर वचन सचिव के, समझ गया सब उसका भाव ।
गूढ भाव का ज्ञान शीघ्र हो. विज्ञो का यह सहज स्वभाव ।।८६।।

देख भूप दो पुत्रों को तब, हुए व्यथित मन में अत्यन्त ।
सतत दिया करता है जग को, मोहराज हा कष्ट अनन्त ।।
जान अन्त में जग स्वभाव को, छोड़ी सारी राज्य समृद्धि ।
धर दीक्षा की प्राप्त ध्यान से, मोक्षनगर की अनुपम ऋद्धि ।।८७।।

भागीरथ ने सविनय, पूछा, श्रुत सागर से सुन उपदेश ।
एक साथ परलोक सिधाये, कौन पाप से बन्धु अशेष ।।
बचा एक मैं ही क्यों भगवन्, बोले मुनि परभव को जान ।
संमेदाचल को जाता था, वन्दनार्थ शुभ संघ महान ।।८८।।

आया 'अन्तिक' ग्राम मध्य जब, कहें कठोर वचन ग्रामीण ।
करते थे उपहास अधिक तर, देख तपस्या से तन क्षीण ।।
तत्पुरवासी कुम्भकार ने, देख जनों का दुष्टाचार ।
समझा बुझा प्रेम से तत्क्षण, रोका उनको किसी प्रकार ।।८९।।

एक मनुज के प्रबल दोष से, जलवा दिया नृपति ने ग्राम ।
मर मर के वे अधम ग्राम जन, दुर्गति में भ्रमकर अविराम ।।
किसी पुण्य से उन जीवों का, हुआ राज्यकुल में अवतार ।
कुम्भकार का जीव वत्स तू; दुःखमय है सारा संसार ।।९०।।

जो जैसा करता है जगमें, मिलता फल उसके अनुसार ।
विज्ञ सर्वदा तन मन, धन से, सत्य धर्म का ले आधार ।।
मुनि निन्दा के तीव्र पास से, मरे ग्रामजन बारम्बार ।
अपने किये शुभाशुभ का फल, सम्प्रति तुमने लिया निहार ।।९१।।

❑ ❑ ❑

(सर्ग २)

एक दिवस महारक्ष विपिन में, गये सकल निज परिवार ।
देख प्रमद वन की शोभा को, हुआ प्रफुल्लित चित्त अपार ।।
कमलों में आ, आकर अलिगण, पीते थे सुख से मकरन्द ।
दिन समाप्त होते पंकज में, हुआ एक अलि सहसा बन्द ।।१।।

देख मृतक उसको लंकापति, मन में करने लगे विचार ।
भुला रहा शुभ-पथ चेतनको, महा मोह ही बारम्बार ।।
करते करते पान मधुर रस, भूल गया अलि अपना भान ।
पंकज बना उसे कारागृह, और गुमाये अपने प्राण ।।२।।

तजूं न मैं जो राज-पाट यह, रहें अधम विषयों में लीन ।
तो अपने हाथों ही द्वारा, कर लूंगा कष्टों को पीन ।।
विषय कषायों ने जगती में, ठगा मुझे हा ! अगणितवार ।
तोड़ मोह का बन्धन सत्वर, करूं आज अपना उद्धार ।।३।।

उसी समय वनमाली ने आ, कहा, उन्हें हे शौर्य निधान ।
आये हैं मुनिवर 'श्रुतसागर' दयावान अतिशय विद्वान् ।।
जाकर सविनय श्री गुरु-सन्निधि, किया नृपति ने नम्र प्रणाम ।
भव संतप्त पथिक क्षितिपति ने, पाया मुनि तरु तट विश्राम ।।४।।

कुशल पूछ, मुनिवर से बोले, दीजे कुछ ऐसा उपदेश ।
जिससे मेरे ये अनादि के, मिटें सदा भव भव के क्लेश ।।
हे राजन् तू जान सर्वथा, दया धर्म का अङ्ग प्रधान ।
इसके बिना तपादिक निष्फल, कहते हैं जिनवर भगवान ।।५।।

जगत वस्तुओं से बढ़ करके, प्रियतर हैं सब को निज प्राण ।
लेकर भी साम्राज्य विश्व का, दे कोई क्या निज बलिदान ।।
बनी हुई है जीव मात्रको, केवल जीवन की अभिलाष ।
अपना मरण श्रवण कर उपजे, मन में क्षण भर भीषण त्रास ।।६।।

चुभने पर कण्टक इस तनमें, होता है जब कष्ट अपार ।
तब क्यों निर्दय होकर मानव, करता पशु पर शस्त्र प्रहार ।।
हिंसक जगभर के जीवोंसे, करता रहता वैर कठोर ।
अपने पाप कृत्य के वश हो, पाता दुर्गतिमें दुःख घोर ।।७।।

छल प्रपंचको त्याग सर्वथा, सत्य वचन मुखसे तू बोल ।
काम, क्रोध, लोभादि विवश हो, नहीं सुधामें विषको घोल ।।
पाकर दिव्य मनुज भव राजन्, छोड़ो भोगोंकी अभिलाष ।
रखकर आत्म तत्त्वकी श्रद्धा, करो दुखोंका सत्वर ह्रास ।।८।।

गुरु-वाणी सुन महारक्षने, अमर रक्षको दे सब भार ।
युवराजा कर भानुरक्षको, दूर किये तनसे शृङ्गार ।।
बने सत्य अब मोक्ष पथिक वे, शत्रु-मित्र सब उन्हें समान ।
तजकर अपना तन समाधिसह, पाया उत्तम स्वर्ग-विमान ।।९।।

इसी वंशमें हुए बहुतसे, न्यायवान भूपाल महान् ।
हो विरक्त संसार भावसे, किया प्राप्त सुरपुर, निर्वाण ।।
रक्ष नामके खेचर पति के, राक्षस सुत था कुल-अवतंस ।
उसके ही प्रभावसे जगमें, कहलाया कुल राक्षस वंश ।।१०।।

थे सज्जन ये सर्व विवेकी, न्यायनिष्ठ, प्रिय मनुजाकार ।
असुर न होकर ये मनुष्य थे, नही लेश था अशुभाचार ।।
भक्ष्याभक्ष्य विवेक इन्हें था, जिनप्रभु के थे पूरे भक्त ।
निन्दनीय आचरणोंसे तो, रहते थे ये सदा विरक्त ।।११।।

अनुक्रम से फिर इसी वंशमें, विद्याधर-पति हुए अनेक ।
जोड़ा निज सम्बन्ध मुक्तिसे, छोड़ राज्य वैभव सविवेक ।।
स्वर्गपुरी सी लंकामें थे, कीर्ति धवल विश्रुत विद्येश ।
नाम मात्र सुनकरके जिसका, डरते मनमें शत्रु अशेष ।।१२।।

शूर वीरताका निधान था, अस्त्र शास्त्रमें था अति दक्ष ।
टिका नहीं था समय मात्र भी, इसके सन्मुख कभी विपक्ष ।।
इन्द्र-तुल्य यह विद्याधर पति, भोगे सब जगतीके भोग ।
दुर्लभ वहां पदार्थ कौनसा, जहां पुण्यका होता योग ।।१३।।

वानर कुल का उदगमस्थल था, नगर मेघपुर जग विख्यात ।
देव भवन सम भवन वहांके, करते थे स्वर्गोंसे बात ।।
थे 'अतीन्द्र' शासक उस पुरके, रानी थी श्रीमती ललाम ।
शोभित थे उससे वे ऐसे, जैसे रतिसे होता काम ।।१४।।

पुत्र हुआ श्रीकण्ठ नामका, बढ़ा हुआ था जिसका ज्ञान ।
भूपतिके 'देवी' कन्या थी, जगमें सुन्दरता की खान ।।
इधर रत्नपुरके राजा थे, पुष्पोत्तर बल धाम महान ।
उनके थी 'पद्माभा' कन्या, पद्मोत्तर सुत ज्ञान निधान ।।१५।।

पुष्पोत्तरने नृप अतीन्द्र तट, भेजा यह सुन्दर सन्देश ।
देवीको दो मम सुपुत्रको, बढे परस्पर प्रीति विशेष ।।
कीर्ति धवलको दे निज बाला, ऐसा था उसका सुविचार ।
इससे पुष्पोत्तर वाणीको, किया नहीं उसने स्वीकार ।।१६।।

कीर्ति धवलको दें निज बाला, किया सुदृढ उससे सम्बन्ध ।
लोक योग्य इन कार्योंसे ही, बढे परस्पर प्रेम प्रबन्ध ।।
एक समय 'श्रीकण्ठ' गगनमें, करें विमानारूढ विहार ।
'पद्माभा' पृथ्वी पर बैठी, बजा रही तन्त्रीके तार ।।१७।।

भूल गया श्रीकण्ठ आपको, सुनकर उसका सुमधुर गान ।
बाला भी मोहित हो बैठी, देख युवकको मदन समान ।।
प्रस्तुत वह हो गई सङ्ग तब, चलनेको उसके ही सङ्ग ।
ले उसको श्रीकण्ठ गगनमें, चला गया तत्काल अभंग ।।१८।।

राज भवनमें दृश्य देख यह, परिजन करने लगे पुकार ।
सुन वृतान्त भूप क्षणभर में, बना क्रोध से दीप्तांगार ।।
पकड़ो, मारो उस पापीको, कह यों भेजी सैन्य अपार ।
बना स्वयं श्रीकण्ठ अभय तब, कीर्ति धवलका ले आधार ।।१९।।

कीर्तिधवलने पुष्पोत्तर तट, भेजा निज सुखमय सन्देश ।
किस कारण करने आये हो, सम्प्रति तुम यह युद्ध विशेष ।।
कन्या सदा पराया धन है, देना होगा उसे अवश्य ।
मिला स्वयं इसको वर उत्तम, इसमें क्या कर सके मनुष्य ।।२०।।

है श्रीकण्ठ रूपमें अनुपम, कला-निपुण अतिशय बलवान ।
दिखते हैं प्रत्यक्ष रूपसे, दोनोंमें गुण एक-समान ।।
बाला ही चाहे इस वरको, तो तुमको रणसे क्या काम ।
सुनकर शुभ सन्देश शीघ्र ही, बदल गये उसके परिणाम ।।२१।।

मिल करके सप्रेम परस्पर, गये त्वरित वे निज निज धाम ।
पद्माभाका हस्त ग्रहण कर, गई चित्तसे भीति तमाम ।।
रिपुगण हैं अत्यन्त तुम्हारे, उस गिरि पर 'श्रीकण्ठ' अनेक ।
ग्रहण करो मेरे कहनेसे, द्वीप मनोहर, कोई एक ।।२२।।

भगिनी-पतिके आग्रहवश हो, ग्रहण किया शुभ वानर द्वीप ।
उस प्रदेशके आसपासमें, विद्यमान बहुतेरे द्वीप ।।
गये मुदित श्रीकण्ठ द्वीपमें, लेकर निज सारा परिवार ।
देख वहांकी शोभा अद्भुत, हुआ चित्तमें मोद अपार ।।२३।।

वह प्रदेश अत्यन्त सुरक्षित, नन्दन-वनसे थे उद्यान ।
नीर पूर्ण थे स्वच्छ सरोवर, तरुवर देते थे फलदान ।।
फूल रहे थे कलम मनोहर, अलिगण करते गुञ्जार ।
मानो आगत नूतन नृपका, यश गाते थे बारम्बार ।।२४।।

देख चेष्टा, कपियो की वे भूपति मनमे करें विचार ।
नर समान करते थे लीला, उन समान सुन्दर आकार ।।
मंगा सेवकों से उनको वह, रखे निरन्तर अपने पास ।
विपिन निवासी उन पशुओंको, और सिखाया नृत्य विलास ।।२५।।

किह कंधा पुर नगर बसाया, जहां न रिपु कर सकें प्रवेश ।
स्वर्ग तुल्य शोभित होता था, मनुजों से वह शान्त प्रदेश ।।
एक दिवस श्रीकण्ठ द्वीपपति, देख रहे थे, दिव्याकाश ।
नन्दीश्वर जाते देवोंको, देख हुई मनमें अभिलाष ।।२६।।

मैं भी नन्दीश्वर जाऊं झट, मिलकर इन देवोंके साथ ।
बिना धर्मके जगती-तलमें, चेतन है सब भांति अनाथ ।।
चले प्रियाको स्वयं साथ ले, खेचरपति नन्दीश्वर ओर ।
रुका विमान गगनमें पाके, मानुषोत्तर शैल कठोर ।।२७।।

चल न सके तिलभर भी आगे, टूट गया उनका उत्साह ।
बोल उठे सहसा व्याकुल हो, लेकर मुखसे गहरी आह ।।
शक्ति हीन हैं हम हा ! इतने, रुका हमारा दिव्य विमान ।
हो विरक्त सब राज पाठसे जोडा संयममें निज ध्यान ।।२८।।

वे श्रीकण्ठ साधुवर निशिदिन, धरें आत्म चिन्तनमें चित्त ।
इसी वंशमें हुआ शिरोमणि, भूप अमरप्रभु महा पवित्र ।।
एकबार इसकी पटरानी, लखती थी भवन स्थित चित्र ।
देखे उसने वहां मनोरम, सुखप्रद, सुन्दर-सुन्दर चित्र ।।२९।।

मान सरोवरके कमलोंमें, अलि गण करते थे गुञ्जार ।
कही वापिका तट वृक्षों पर, खग-गण करते थे संचार ।।
भीत स्थित चित्राम वहांके, दिखते थे लगभग साक्षात ।
चित्रोंकी शोभासे नृप गृह, हुआ जगतमे अतिशय ख्यात ।।३०।।

देख बन्दरोंके चित्रोको, डरी हृदयमे रानी आप ।
भयसे व्याकुल होकरके तन, लगा कांपने अपने आप ।।
आया त्वरित पसीना सिरपर, तिलक हीन दिखता था भाल ।
हुए कुपित राजा मनुजों पर, देख प्रियाका ऐसा हाल ।।३१।।

बना बन्दरोंके चित्रोंको, प्रचलित की किसने यह रीत ।
जिसे देखकर हुई हृदयमें, प्राण वल्लभा अति भयभीत ।।
बोले वृद्ध मन्त्रिगण सविनय, दूर कीजिये कोप नितान्त ।
पूर्व वंशजोसे सम्बन्धित, है इसका सारा वृतान्त ।।३२।।

नाथ ! आपके इसी वंशमें, हुए भूप श्रीकण्ठ प्रधान ।
स्वयं बसाया था उनने ही, सुरपुर सम यह नगर प्रधान ।।
देख मनुष्य सदृश कपियोंको, हुई नृपतिकी उन पर प्रीति ।
शुभ कृत्योंमें, कपि चित्रोंकी, चली तुम्हारे कुलमें रीति ।।३३।।

सुन उत्तर प्रमुदित खेचरपति, बोले मुखसे वाक्य ललाम ।
मान्य हमें निःशंक भावसे, वृद्ध मान्य कपिके चित्राम ।।
करो न इसका भंग लेश अब, धरूं मुकुटमें वानर चित्र ।
कपिके चिन्होंसे शोभित हों, राज्य ध्वजामें अब सर्वत्र ।।३४।।

सचिवोंने वह काम किया झट, मिला उन्हें जैसा आदेश ।
उसी समयसे हुआ विश्वमें, विश्रुत यह कपिवंश विशेष ।।
वे कपिवंशी विद्याधर ही, ज्ञानवान प्रिय मनुजाकार ।
नहीं कभी भी लेशमात्र था, कपि-समान उनका आकार ।।३५।।

जीत अमरप्रभने निजबलसे, खेचर युत विजयार्द्ध प्रदेश ।
सौंपा क्षेत्र स्वामियोंको फिर, करके उनका मान विशेष ।।
इस प्रकार कई वंश धरा पर, हुए बहुत खेचर बलवान ।
निज-निज कर्मोंके वश पाया, स्वर्ग लोग अथवा निर्वाण ।।३६।।

❑ ❑ ❑

मुनिसुव्रतके समय पालते, थे लंकाको विद्युत केश ।
उसी समय कपिवंश शिरोमणि, हुए महोदधि नृप विद्येश ।।
इन दोनो खेचर पतियोंमें, रहा परस्पर प्रेम अपार ।
भोग रहे थे दोनो सुखसे, पुण्योपार्जित निज संसार ।।३७।।

प्रिया सहित लंकापति आये, वनमें लेनेको आनन्द ।
देख प्रमद वनकी शोभाको, हुआ हर्ष तब उन्हें अमन्द ।।
फूल रहे थे कमल कहीं पर, था सरवर में निर्मल नीर ।
खग-गण वृक्षोंकी शाखा पर, बैठे लेते मन्द समीर ।।३८।।

पुष्प तोड़ती कोई रानी, नमा वृक्ष शाखाको आप ।
वृक्ष स्थित कपिने रानीको, उपजाया अतिशय सन्ताप ।।
बहने लगा रुधिर तब तन से, किया घोर उसने आक्रन्द ।
राजा ने तब बाण मार कर, कपि को किया व्यथित अत्यन्त ।।३९।।

वह बन्दर खाकर के चक्कर, गिरा किसी मुनि पद के पास ।
'णमोकार' शुभ मन्त्र सुना कर, किया दूर उनने सब त्रास ।।
समता सह तज कर तन बन्दर, हुआ भवनवासी में देव ।
उसी बिपिन में बन्दनार्थ झट, आया मुनि सन्निधि स्वयमेव ।।४०।।

दूर देश में मार रहे थे, कपियों को राजा के दास ।
कुपित हुआ तब देव शीघ्र ही, देख बन्दरों का यों ह्रास ।।
कपियों की सेना रचकर वह, दौड़ा सत्वर भूपति ओर ।
डरा भूप अत्यन्त हृदय में, सुनकर उनका शब्द कठोर ।।४१।।

राजा को अति विनयवान लख, बोला महोदधि निर्जर ।
हे राजन् ! वानर पशु होते, होता स्वभाव चंचलतर ।।
प्रिया प्रेम के कारण तूने, हता वानरों का समुदाय ।
साधु के धर्मोपदेश से, हुआ देव में अतिशय काय ।।४२।।

तू मेरा लोकोत्तर वैभव, लख हे राजन् ! निर्भय बन ।
राजा उर में लगा काँपने, रोमांचित हुआ सब तन मन ।।
लगा पूछने तब वह राजा, आज्ञा करो करूं वह देव ।
कहा देव ने सत्वर चल अब, करो निग्रंथ सुगुरु की सेव ।।४३।।

पहुंचे राजा, देव सुगुरु तट, देव पूर्व भव बतलाया ।
अपने वानर जीवन को तज, वहाँ रहस्य सब जतलाया ।।
राजा विद्युत केश पूछते, क्या मेरा कर्तव्य महान ।
कहा तपोधन ने तब नृप से, चलो सुगुरु मम हे मतिमान ।।४४।।

तब सब मिल कर पहुंचे गुरु तट, महा मुने वे तपो निधान ।
उनका दिव्य तेज लख सबको, मन में अचरज हुआ महान ।।
गुरुवर ने तब भवि जीवों को, भेद धर्म का समझाया ।
दूर हुआ अज्ञान तिमिर सब, ज्ञान सरोवर लहराया ।।४५।।

भव तन भोग विरक्त नृपति तब, मन में करने लगे विचार ।
भोगों में नित लीन रहा मैं, मुझको है शत् शत् धिक्कार ।।
भोग भुजंग भयानक मुझको, डसते भव भव में प्रतिवार ।
परिजन इन्द्रिय भोग वासना, लक्ष्मी चंचल मधु असिधार ।।४६।।

इन भोगों में लीन नृपति ज्यों, फंसता राज्य कोष में दीन ।
विषय वासना तिमिर जाल में, आत्म ज्योति हो जाती क्षीण ।।४७।।

सुन मुनि का उपदेश शाँत प्रद, बने साधु यों विद्युत्केश ।
कर आराधन सत्य पन्थ का, तन तज पाया स्वर्ग प्रदेश ।।
इधर महोदधि खेचरपति ने, सुना सेवकों से यह वृत्त ।
लगे सोचने अपने मन में, होकर के संसार विरक्त ।।४८।।

किस पदार्थ प्रति प्रीति करूं मैं, है अनित्य सारे संयोग ।
फिर भी हाय ! मोह मदिरा से, छोड नहीं सकते हम भोग ।।
जिसे देखते हम क्षण पहले, स्वस्थ और तन से अति पुष्ट ।
उसे उठाकर ले जाता है, यहाँ एक क्षण में यम दुष्ट ।।४९।।

करे राज्य हे पूज्य, आप ही, बोला यों सविनय युवराज ।
आप बिना होगा वश कैसे, विकट और विस्तृत साम्राज्य ।।
जान स्वपति के निश्चय को दृढ, रोने लगा सकल परिवार ।
बहु विधि उन्हें मनाया सबने, ले-लेकर दुख के निश्वास ।।५०।।

नाथ आपकी इस दिक्षा से, होती है हमको अति पीर ।
किन्तु मोह की तोड़ श्रृङ्खला, बनें महोदधि तप मे वीर ।।
सौंप राज्य प्रतिचन्द्र पुत्र को, तोड़ प्रेम का भीषण पाश ।
भव तन भोग विरक्त नृपति का, हृदय हुआ अत्यन्त उदास ।।५१।।

कर शासन प्रतिचन्द्र वीर भी, छोड़ अन्त मे सब सम्बन्ध ।
हुए स्वयं दीक्षित वन में जा, बना राज्य शासक किहकन्ध ।।
वे यथार्थ मानव हैं जग में, जो करते वैभव का त्याग ।
समझ न सकते वे मनुष्यता, जिन्हें विश्व विषयो से राग ।।५२।।

था आदित्य नगर का अधिपति, 'मन्दिर' नाम गगनचर ।
'श्रीमाला' अपनी कन्या का, उसने रचा स्वयंबर ।।
भेज दूत उस विद्याधर ने, भूपों को बुलवाया ।
अशनिवेग का पुत्र 'विजय', भी वहां हर्ष युत आया ।।५३।।

बैठ गये वे राजपुत्र सब, निज निज शुभ मंचों पर ।
उस कन्या के लिये सभी का, था मन अतिशय आतुर ।।
मणि भूषण-भूषित वह बाला, कर में माला लेकर ।
आ पहुंची मण्डप में सत्वर, भावो को मन में भर ।।५४।।

देख रूप की सुधा सुता को, मुग्ध हुए विद्याधर ।
देखें कौन भाग्यशाली अब, ग्रहण करे इसका कर ।।
छोड़ राजपुत्रों को तृण सम, आगे आई बाला ।
उत्तम श्री किहकन्ध कंठ में, डाली कर की माला ।।५५।।

ईर्ष्यावश उस समय विजय का, हुआ शीघ्र मुख ज्वाला ।
आकर के अत्यन्त क्रोध में, नियम स्वयंबर टाला ।।
लगा बोलने मान विवश हो, है किहकंध कहॉ पर ।
आया क्यों इस दिव्य भूमि में, उछल कूंद वह बानर ।।५६।।

ले लो इससे राजसुता को, मिल विद्याधर सारे ।
क्षण भर में बज उठे वहां पर, रण के अतुल नगारे ।।
विजय और किहकन्ध वीर को, लड़ते इस विधि लखकर ।
निज निज पक्षों के विद्याधर, लड़ने लगे परस्पर ।।५७।।

मरे अनेको वीर युद्ध मे, बही रुधिर की धारा ।
मानों सबने उसी भूमि के, निज निज क्रोध उतारा ।।
लंकापति सुकेश सत्वर ही, दौड़े आये रण मे ।
देख उसे किहकन्ध समय पर, मुदित हुआ निज मन में ।।५८।।

देता है जो साथ समय पर, मित्र वही है उत्तम ।
सुख में सुख के लिये मित्र, बन जाते पीछे दुश्मन ।।
निज भ्राता किहकंध वीर को, अपने नगर पठाया ।
फिर 'अन्धुक' ते 'विजय' वीर का, मस्तक त्वरित उडाया ।।५९।।

जान विजय को मरा, खड़ी रह सकी न सेना क्षण भर ।
हो जाती निश्चेष्ट देह सब, जब चेतन जा तजकर ।।
अशनिवेग ने पुत्र मरण का, समाचार जब पाया ।
तब उसकी आंखों में पापी, क्रोध अधिक भर आया ।।६०।।

जाकर के किहकंध नगर को, घेरा उसने सत्वर ।
अशनिवेग से लंकेश्वर का, तब रण हुआ भयङ्कर ।।
अशनिवेग के सन्मुख दोनों, टिक न सके उस रण में ।
गुप्त रहे पाताल भूमि में, सोच समझ कर मन में ।।६१।।

तब लंका में अशनिवेग का, चलता निर्भय शासन ।
तज स्वदेश किहकन्ध वीर नित, रहता अति क्लेशित मन ।।
आता था किहकन्ध एक दिन, कर सुमेरु के दर्शन ।
नन्दन वनके सदृश भूमि पर, देखा दृग-प्रिय शुभवन ।।६२।।

वन के निकट धरणि मालीगिरि, कितना अधिक सुहाता ।
अपने उन्नत बृक्ष करों से, हमको निकट बुलाता ।।
प्रिये ! बसा कर यही नगर हम, सुख से काल बितायें ।
रिपु से छिपकर के हम इस विधि, कितना समय गुमायें ।।६३।।

यह प्रदेश सब भांति सुरक्षित, रिपु का यहां न डर है ।
चारों ओर रम्य इस गिरि के, दिखता वन सुन्दर है ।।
कर निवास कान्ता सह उसने, अनुपम नगर बसाया ।
धरा नाम किहकन्ध प्रेम से, सबको वहां बुलाया ।।६४।।

श्रीमाला की दिव्य कुक्षि से, हुए पुत्र दो उत्तम ।
था उन में बल, रूप विश्व में, अनुपम देवों के सम ।।
रविरज और रक्षरज दोनो, रखते प्रेम परस्पर ।
थी रतिकमला बहन एक ही, सुन्दर रूप प्रभाकर ।।६५।।

मेघनगर के मेरु भूप के, पुत्र मृगारि दमन था ।
रवि कमला के यौवन तन से, चंचल उसका मन था ।।
तब किहकन्ध भूप ने उसको, दी निज बाला सादर ।
नव-वधु सहित मार्ग में उसने, रचा वहां कुण्डलपुर ।।६६।।

अलकापुर पाताल भूमि मे, रहें सुकेश निरन्तर ।
अशनिवेग के पुत्रों का पर रहता था मन में डर ।।
माली वीर, सुभाली जग प्रिय, माल्यवान थे ज्ञानी ।
इन तीनों पुत्रो से शोभित, थे सुकेश विज्ञानी ।।६७।।

देव सुतों सम जब ये तीनों, सुखसे क्रीडा करते ।
माता और पिताके मनमें, सद् भावोंको भरते ।।
जाकरके किह-कन्ध नगरमें, करता क्रीडा नाना ।
दक्षिण उदधि ओर हे पुत्रो, नहीं भूल कर जाना ।।६८।।

लगे पूछने पुत्र वे दोनों, क्या है इसका कारण ।
कहा पिताने वृत्त पूर्वका, होकर अति व्याकुल मन ।।
कुल क्रमसे लंका नगरी पर, था अधिकार हमारा ।
लेकिन हमसे अशनि-वेगने, छीन लिया है सारा ।।६९।।

अब निर्घात नाम विद्याधर, शासन वहाँ चलाता ।
रह कर इस पाताल भूमिमें, हमें कहां है साता ।।
वर्णन करते कथा दुःखकी, आया दृगमें पानी ।
करें न चिन्ता आप पूज्य अब, बोले वे सुत वाणी ।।७०।।

उस निर्घात दुष्ट खेचरका, सत्वर घात करेंगे ।
तात, आपकी हृदय व्यथा को, हम सब नष्ट करेंगे ।।
क्यो यह सब वृतान्त आपने, हमको नहीं बताया ।
सहन न करते कभी वीर गण, निज अरिगणकी छाया ।।७१।।

ले सेना राक्षस वंशी वे, निकले पुरसे बाहर ।
करते हुए शत्रु सह तत्क्षण, वे संग्राम भयंकर ।।
मालीने निर्घात वीरका, जीवन-दीप बुझाया ।
निज भुज बलसे उन वीरोंने, लंकाको अपनाया ।।७२।।

दैत्यवंशके योधा सारे, तज नगरीको भागे ।
टिक सकते क्या कभी हिरणगण, सिंहराजके आगे ।।
कर प्रवेश लंकामें सबने, उत्सव अधिक मनाया ।
कुलक्रमसे आगत लका पर, निज अधिकार जमाया ।।७३।।

चन्द्रमती मालीकी रानी, मनकों आनन्दकारी ।
प्रीतिमती कान्ता सुमालिकी, पतिको अतिशय प्यारी ।।
माल्यवानने कनकाबलिसे, अपना हस्त मिलाया ।
पूर्व-पुण्यके वशसे उनने, मनमाना सुख पाया ।।७४।।

मालीने विजयार्द्ध शैलकी, दोनों श्रेणी जीती ।
सब ही खेचर-पतियोंकी थी, इस पर अतिशय प्रीती ।।
हो विरक्त भवसे सुकेशने, मालीको दे शासन ।
ले दीक्षा एकान्त भूमिमें, करें धर्मका सेवन ।।७५।।

खेचर पति किहकन्द पुत्रको, राज्यपाट सब देकर ।
तज आरम्भ परिग्रह ममता, विचरें अभय मुनिश्वर ।।
दोनोंने निज ध्यान अग्निसे, जला कर्मकी फाँसी ।
अजर, अमर, सुखरूप सर्वथा, पाया पद अविनाशी ।।७६।।

❑ ❑ ❑

रथनूपुर है नगर स्वर्ग-सा, वहाँ भूप खेचर सहस्रार ।
सदा चमकती रहती इसकी, विद्युत-सी भीषण तलवार ।।
मान सुन्दरी प्राण वल्लभा, थी सब विधि पतिके अनुकूल ।
'इन्द्र' नामका था इनके सुत, रिपुओंकी आंखो का शूल ।।७७।।

मान आपको इन्द्र अनोखा, की रचना सब स्वर्ग समान ।
इन्द्र-भवन-सा बनवाया निज, उसने सुन्दर सदन महान ।।
शची नाम रखकर रानीका, कहे पुत्रको आप जयन्त ।
हाथी को ऐरावत माना, विद्याधर सुर-सम अत्यन्त ।।७८।।

सोम, कुबेर, वरुण, यम उसने, लोकपाल स्थापे ये चार ।
मानी सभा सुधर्मा अपनी, स्वर्गलोक-सा सब संसार ।।
पुण्योदयसे मनुज इन्द्रने, की सुरपति सम निज सम्पत्ति ।
बारबार उसे लखकरके, प्रभुदित होती थी मनवृत्ति ।।७९।।

लंकापति माली अब तक तो, करता था जो जो आदेश ।
बिना विलम्ब पालते थे सब, विद्याधर धर मान विशेष ।।
किन्तु इन्द्र के आश्रय को पा, गिनें न माली का आदेश ।
शनैः शनैः यह पहुंच चुका था, मालीके सन्निधि सन्देश ।।८०।।

ले सेना विजयार्द्ध शैल पर, किया शीघ्र ही आप प्रयाण ।
आज्ञा-भंजक मनुजों को वह, निष्ठुर देगा दण्ड महान ।।
आया जान राक्षस-पति को, हुए अखिल खेचर भयभीत ।
जाकर मिले इन्द्र से सत्वर, झुका उसे मस्तक सप्रीति ।।८१।।

सुन उनकी दुःख कथा इन्द्र ने, वज्रायुध पर की निज दृष्टि ।
एक मात्र यह वज्र अकेला, नाश कर सके सारी सृष्टि ।।
माली यहां स्वयं आया है, बनने को यम का महमान ।
फिर दोनों में हुआ परस्पर उसी भूमि पर रण घमसान ।।८२।।

काट लिया माली का मस्तक, मनुज इन्द्र ने ले तलवार ।
भगी राक्षसवंशी सेना, सुन कर स्वामी का संहार ।।
राक्षस वानरवंशी दोनों, करते हुये विविध-सन्ताप ।
आये फिर पाताल भूमि में, सह न सके रिपुओं का ताप ।।८३।।

माली को करके परास्त यह, इन्द्र हुआ अत्यन्त प्रसिद्ध ।
बोल न सकता था कोई भी, सारे खेचर नाथ विरुद्ध ।।
पाकर विजय इन्द्र ने रिपु पर, पूज्य जनों को किया प्रणाम ।
कम्पित होते थे रिपुओं के, चित्त श्रवण कर उसका नाम ।।८४।।

कौतुक मंगल नगर मनोहर, व्योम बिन्दु थे पृथ्वीपाल ।
रति-सी मन्दवन्ती ललना थी, प्रिय जो भूपति को सबकाल ।।
दो बालायें थीं उनके घर, प्रथम कौमुदी रूप निधान ।
मत्तपुराधिराज विश्रव से, परिणय का शुभ हुआ विधान ।।८५।।

हुआ पुत्र वैश्रवण वीर जो, इन्द्र भूप का पा आदेश ।
रहे आप लङ्का में डर से, राक्षस नहीं कर सके प्रवेश ।।
इधर सुमाली की रानी से, रत्न श्रवा ने ले अवतार ।
अपने दिव्य शौर्यके बल से, किया स्वीयपुर पर अधिकार ।।८६।।

एक समय यह पुष्पक वन में, करता था विद्या को सिद्ध ।
व्योमबिन्दु की सुता केकसी, आ पहुंची सेवार्थ बिशुद्ध ।।
हुई सिद्ध विद्या कुछ दिन में, सिद्धों को कर नम्र प्रणाम ।
चलने को प्रस्तुत था ज्यों ही, देखी बाला सुषमा-धाम ।।८७।।

बोल उठा साश्चर्य वीर वह, मृगी सदृश तू वन में कौन ।
मन्द मन्द स्वर से वह बोली, तोड़ विजन में अपना मौन ।।
एक दूसरे के दर्शन से, बहा हृदय में प्रेम प्रवाह ।
रत्नश्रवा का उस कन्या से, वहीं शीघ्र हो गया विवाह ।।८८।।

इसी केकसी की सुकुक्षि से, हुआ प्रथम रावण उत्पन्न ।
शशी-सम सौम्य बदन लख उसका, अधिक हुआ परिवार प्रसन्न ।।
प्रथम दिवस ही पकड़ लिया था, सहसा उसने दैवी हार ।
देख शक्ति इस भाँति पुत्रकी, हुआ हृदय आश्चर्य अपार ।।८९।।

उसी हार ने प्रतिबिम्बित लख, बालक के दशमुख अभिराम ।
रत्नश्रवा ने इससे उसका, रक्खा, सौम्य दशानन नाम ।।
कुम्भकर्ण, विद्धान् विभीषण, थे रावण के उत्तम भ्रात ।
चन्द्रनथा इनकी भगिनीथी, चन्द्रकिरणसम शुभ अवदात ।।९०।।

प्रसू केससी निज पुत्रो युत, बैठी थी गृह मे सोल्लास ।
उसी समय आकाश मार्ग से, निकला वरुण सुधी सुविलास ।।
कहिये कौन गगनपति है यह, करे सैन्य कोलाहल घोर ।
इतने आडम्बर सह सम्प्रति, जाता है किस वनकी ओर ।।९१।।

बोल उठी गद् गद् हो माता, भर कर आंखो में दुख नीर ।
शूरवीर पुत्रो, लंका का अधिपति, यह "वैश्रवण सुवीर" ।।
व्योमयान में बैठ हर्ष से, भूपर करता आप विहार ।
आज हमारा ही भगिनी सुत, बना हमारा शत्रु अपार ।।९२।।

खेचरनाथ इन्द्र ने हम से, छीन लिया लङ्का का राज ।
किन्तु वैश्रवण इन्द्र कृपा से, बना हुआ लङ्कापति आज ।।
करूँ प्रतीक्षा उस दिनकी मैं, या जाऊ जब आत्म प्रदेश ।
मिटा सकोगे तुम ही जग में, पुत्रो, मेरा मन का क्लेश ।।९३।।

सूख रही चिन्ता में दिन-दिन, किन्तु तुम्हारा मुख अवलोक ।
होगी शीघ्र सफल आसा सब, यही सोच घटता है शोक ।।
आर्त्त वचन सुनकर माता के, कहें विभीषण हो विकराल ।
रंक वरुण है किस गिनती में, हम में शचपति तकके काल ।।९४।।

वीर प्रसवनी होकर के तू, करती क्यों रिपु का गुण गान ।
करके खेद व्यर्थ क्यों माता, करती तू व्याकुल निज प्राण ।।
यह रावण इस भरत क्षेत्र में हैं सब वीरों में बलवान ।
अर्ध भरत का अधिपति अद्भुत, निश्चयसे इसको तू जान ।।९५।।

किसमें इतनी शक्ति देखले, इसको जो तिरछी कर दृष्टि ।
पूर्व पुण्य के विवश हुई है, अपने गृह में इसकी सृष्टि ।।
बोल उठे रावण भी मुख से, करूँ न मुख से आप बखान ।
धरो किन्तु विश्वास हृदय में, सकल पुत्र तेरे बलवान ।।९६।।

करूँ कुलागत विद्याओं की, वन में जाकर के सिद्धि ।
मन्त्र-साधना बिना व्यर्थ, गगनचरों की सकल समृद्धि ।।
तीनो ने वन में जाकर के, साधी विद्यायें अत्यन्त ।
शनैः शनैः उन सबको अनुपम, प्राप्त हुआ यौवन मृदुकन्त ।।९७।।

विद्या सिद्धि जान रावण की, मुदित हुआ सारा परिवार ।
कहने लगे सुमाली तब यों, पुत्र वंश का तू आधार ।।
तुझे देख बलवान अधिक तर, हुआ आज चिन्ता से मुक्त ।
अब देखूं किसदिन में तुझको, लंकामें शासनसे युक्त ।।९८।।

बोले धीरवीर रावण तब, धरें धैर्य मनमें कुछ आप ।
रवि प्रकाश प्रगटित होते ही, कब तक टिकता तिमिर कलाप ।।
राक्षस, वानर बंशजनों का, दूर करूंगा मैं सब त्रास ।
पूज्य शांति से रहें भवन में, मुझ पर रख कर के विश्वास ।।९९।।

रम्य असुर संगीत नगर है, उसके पालक थे 'यम' वीर ।
इनके आश्रित जो विद्याधर, दैत्य कहाते थे वे धीर ।।
रावण के आश्रित सेवक गण, राक्षस कहलाते उस काल ।
मनुज इन्द्र के खेचर सब ही, देव कहाते थे सुविशाल ।।१००।।

हेमवती मय की महिषी थी, चलती जो पति के अनुरूप ।
मन्दोदरी सुता थी अनुपम, कला और विद्या की कूप ।।
अङ्ग अङ्ग इसके सुन्दर थे, मृग समान थे नेत्र विशाल ।
पूर्णचन्द्र सम मुख अनुपम था, चमक रहा था सुन्दर भाल ।।१०१।।

देख उसे यौवन में 'मय' नृप, चिन्ता से लेता था श्वास ।
कर सचिवों सह शुभ विचारणा, आया त्वरित दशानन पास ।।
जान उन्हें अतिथि रावण ने, उठकर किया अधिक सत्कार ।
सज्जन गृह आगत पुरुषों का, नहीं भूलते शिष्टाचार ।।१०२।।

जनक सहित लखकर बाला को, समझ गये दशमुख भी अर्थ ।
प्रबल मानसिक भाव समझने में होते हैं विज्ञ समर्थ ।।
मोहित हुए स्वयं रावण भी, बाला का लख रूप अपार ।
मन्दोदरी से कहा भूप ने, अब इन पर तेरा अधिकार ।।१०३।।

धूमधाम से इन दोनों का, हुआ हर्ष से हस्त मिलाप ।
निधि समान ललना को पाकर, रावण थे अति हर्षित आप ।।
कर अनेक कन्याओ के सङ्ग, दशमुख सुखसे आप विवाह ।
देवो सदृश भोगते थे नित, जगती भरका सौख्य प्रवाह ।।१०४।।

बनी तडिन्माला बाला शुभ, कुम्भकर्ण की जीवन-प्राण ।
थे अनुकूल परस्पर दोनों, भरा हृदयमें प्रेम निधान ।।
कुम्भकर्ण अत्यन्त दक्ष थे, अल्पमात्र था शुभ आहार ।
अल्पमात्र थी निद्रा इनके, मनुज योग्य सारा आचार ।।१०५।।

करते थे आहार अन्तमें, देकर सदपात्रो को दान ।
जिन प्रभुके चरणारबिन्दका, करते थे वे अतिशय ध्यान ।।
प्रिय राजीव सरसी कन्यामें, दिया बिभीषणने निज चित्त ।
करके ग्रहण पाणि पल्लव तब, हुए न विषयो में आसक्त ।।१०६।।

यथा समय मन्दोदरी रानी, धरती हुई गर्भका भार ।
ले आये उसको मय भूपति, आत्म सदन करके सत्कार ।।
उसकी दिव्य कुक्षिसे अनुपम, इन्द्रजीत सुत हुआ प्रसिद्ध ।
देवोंको अवनत करती थी, जिसकी अमृत रूप समृद्धि ।।१०७।।

मेघनाद भी सुत रावणका, सागर तुल्य महा गम्भीर ।
इन्द्र प्रतीन्द्र तुल्य शोभित थे, धरणी तल पर दोनों वीर ।।
जाकरके वैश्रमण पुरों में, कुम्भकर्ण करता उत्पात ।
हुआ कुपित वैश्रमण हृदयमे, जान दूत द्वारा सब बात ।।१०८।।

शीघ्र सुमालीके तट उसने, दूत साथ भेजा सन्देश ।
क्यों न रोकते कुम्भकर्ण को ? तुम हो तो नीतिज्ञ विशेष ।।
अपना जान तुम्हें उसने यह, कहलाया मुझसे सन्देश ।
इस अकार्यको रोको सत्वर, नहीं तो पाओगे तुम क्लेश ।।१०९।।

तुम ही तोड़ो न्याय नीतिजो, हो तो फिर कैसे उद्धार ।
किसी तरह पाताल भूमि से, बाहर तुम कर रहे विहार ।।
कर विरोध राजा मालीने, दिये युद्ध में अपने प्राण ।
करो आचरण वही विश्वमें, हो जिससे कलका कल्याण ।।११०।।

भूल गये क्या शक्र तेजको, तुम्हें पापका देगा दण्ड ।
भीति हृदयमें उसकी रखकर, बनो न निज पतनार्थ प्रचण्ड ।।
अहिको छेड़ दुष्ट दर्दुरनिश, कब तक रख सकता है देह ।
तुम्हे पीस डालेगा शचि पति, नहिं इसमे किंचित सन्देह ।।१११।।

उद्धत्ता जो नही तजोगे, तुम्हें शीघ्र बन्धनमें डाल ।
ऐसी दशा करेगा स्वामी, जिससे होगा दुःख कराल ।।
क्षमा कराओ निज दोषोंको, चल करके तुम मेरे सङ्ग ।
स्वामि पदोंमें टेको मस्तक, रहें सुरक्षित जिससे अङ्ग ।।११२।।

❑ ❑ ❑

(सर्ग ३)

निष्ठुर वचन दूतके सुनकर, हुआ दशानन मनमें क्षुब्ध ।
होगा बस रणमें ही निश्चय, अब हम दोनो का प्रारब्ध ।।
मात्र इन्द्रके बल पर इतना, करें वैश्रवण क्यों अभिमान ।
जान पडेगा बली कौन है, छूटेंगे जब रणमें बाण ।।१।।

सुखसे बैठ सकेगा कब तक, लंका पर करके अधिकार ।
व्याज सहित लंका लेनेको, बैठा हूँ मैं तो तैयार ।।
क्यो न लाज आती है तुझको, इस विधि कहते वचन कठोर ।
वध करने उस दुष्ट दूतका, हाथ बढाया असिकी ओर ।।२।।

रोक बन्धुको विज्ञ विभीषण, बोला रावणसे इस भांति ।
दूत सर्वथा वध अयोग्य है, सोच चित्तमें रखिये शान्ति ।।
यह क्या करें पराया चाकर, निज स्वामीका मुख साक्षात ।
अक्षरशः मुखसे बोले वह, स्वामी जो कहलाता बात ।।३।।

परवश मनुजोंके कब होता, मनमे योग्य-योग्य विचार ।
इनकी जिह्वा पर होता है, इनके मालिकका अधिकार ।।
कहा दूतने सत्वर जाकर, वीर वैश्रवणसे वृत्तान्त ।
क्षणभर कोपानल के वश ही, बन बैठा साक्षात कृतान्त ।।४।।

बजवादी रणकी भेरी झट, चले यक्षगण करते युद्ध ।
आता देख सामने इनको, हुए राक्षस गण भी क्रुद्ध ।।
देख दशाननको उस रणमें, छोड़ यक्ष रणकी अभिलाष ।
भ्रमर तुल्य फिरते थे यों ही, तजकर निज जीवनकी आश ।।५।।

रण कौशल लखकर रावणका, हुआ स्वयं वैश्रवण हताश ।
बोला रावणसे पृथिवीमें, क्षण भंगुर हैं भोग विलास ।।
करके हिंसा घोर समरमें, खोलो मत नरकोंका द्वार ।
चपलाके प्रकाश सम चंचल, यौवन, धन सारा संसार ।।६।।

रावण ने तब कहा है नहीं, धर्म श्रवण का अवसर वीर ।
युद्ध क्षेत्र में होते अतिशय अस्त्र शस्त्र से शोभित वीर ।।
रावण और वैश्रवण में तब होने लगा विकट संग्राम ।
घायल होकर गिरा वैश्रवण, मूर्छित उसने लिया विश्राम ।।७।।

वैद्यो ने जब यत्न किया तब आया वैश्रवण को चेत ।
भव तन भोग विरक्त हुआ वह भोगी को माना ज्यो रेत ।।
मुनि दिक्षा को धार वैश्रवण दुर्द्धर तप कर अङ्गीकार ।
आत्म ध्यान में लीन निरन्तर भवसागर के उतरूं पार ।।८।।

पुष्पक नाम विमान मनोरम रत्न जड़ित अतिशय अभिराम ।
जिसमें बैठ वैश्रवण सुख से करता था विहार अविराम ।।
रावण के सेवक उसको ले आये जब रावण के पास ।
बैरी भङ्ग प्रतीक मानकर ग्रहण किया उसको सोल्लास ।।९।।

मगर तुल्य वह सुन्दर पुष्पक विद्यामयी सुखों का साज ।
रत्नश्रवा केकसी माता सहित दशानन रहे विराज ।।
पटरानी मन्दोदरी विभीषण भ्राता कुम्भकरण इत्यादि ।
सेनापति मन्त्री युत रावण विचरण करता था निर्बाध ।।१०।।

एक दिवस रावण ने अपने पूछा पूज्य पितामह से ।
हे दादा इस पर्वत पर क्या पद्म खिले सुन्दर विलसे ।।
उत्तर दिया सुमाली ने तब कमल नहीं मन्दिर अभिराम ।
जिन मन्दिर अतिशय सुन्दर ये हरिषेणने किये ललाम ।।११।।

तब रावण अतिशय प्रसन्न हो उतरा जहाँ बने जिनधाम ।
जिन मन्दिर मे गया भक्ति से करी वन्दना नत निष्काम ।।
दक्षिण दिश के सभी नरेश्वर वश में उसने किये समस्त ।
दिग्दिगन्त में फैली उसकी उज्जवल अतिशय कीर्ति प्रशस्त ।।१२।।

चला अब रावण दिग्विजयार्थ, साथमें लेकर सैन्य विशाल ।
ठहर सम्मेदा-चलके पास, बिताया उसने रजनी काल ।।
गगन में हुआ प्रकाशित सूर्य, उठे सब सैनिक निद्रा त्याग ।
किये निज निज दैनिक सब कृत्य, लिया प्रभुका शुभ नाम सराग ।।१३।।

अचानक दिया सुनाई नाद, वहाँ पर तत्क्षण मेघ समान ।
हुआ सबका चित्त सशंक, त्वरित बोला दशमुख बलवान ।।
कौन मरनेको आया सद्य, डराता क्यों ? कर शब्द कठोर ।
देखने दौड़े वीर अनेक, शस्त्र ले पुरुष शब्दकी ओर ।।१४।।

देखकर द्विरद पर्वताकार, कहा रावणसे हो कुछ दीन ।
भयकर है अतिशय गजराज, सहजमें होगा कब आधीन ।।
पकड लाये गजको लंकेश, मनाया सेना सह आनन्द ।
वहां पर क्या है दुस्तर कार्य, जहां पर हो शुभ भाग्य अमन्द ।।१५।।

गगन-पथसे तब खेचर एक, त्वरित आ पहुंचा दशमुख पास ।
पोंछकर करसे मुख प्रस्वेद, अश्रु सह बोला ले निश्वास ।।
सूर्यरज और रक्षरज देव, विश्वमें हैं निजकुल आधार ।
प्रीति दोनो में है अत्यन्त, तुम्हारे बलसे तृण संसार ।।१६।।

निकलकर निजपुरसे वे बन्धु, गये 'किहकंधा नगरी ओर ।
इन्द्रके यमसे इनका युद्ध, हुआ कायर भयप्रद घनघोर ।।
दुष्ट यमने हो कोपाविष्ट, किया है लाखो का सहार ।
रक्ष रजको कर बन्दीवान, सूर्यरज पर भी किया प्रहार ।।१७।।

बात करते-करते वह दूत, चित्तमे सह न सका दुखभार ।
हुआ मूर्च्छित क्षणभरमे तत्र, कराया रावणने उपचार ।।
सान्त्वना देते वे लंकेश, स्वस्थ हो कहो सकल बृतान्त ।
हृदयमे डरते क्यों इस भांति, मरा समझो अब अधम कृतांत ।।१८।।

हुए तब वे कपि-नाथ अचेत, स्वजन रणसे ले गये तुरन्त ।
किये तब नाना विध उपचार, हुआ उनकी मूर्च्छा का अन्त ।।
दिखाता वह यमनाथ यमत्व, बनाया उसने कारागार ।
नरक रख करके उसका नाम, वहां है दुःखों का भण्डार ।।१९।।

पकड करके निज जीवित शत्रु, उसी में देता त्वरित धकेल ।
आप बन करके प्रेरक दुष्ट, देखता उन दुखियों का खेल ।।
देव ! अब रक्षक हैं बस आप, कीजिये उनकी रक्षा शीघ्र ।
बन्धु वे दोनों बन्धन बद्ध, भोगत हा ! हा !! पीडा तीव्र ।।२०।।

रक्षरजका हूँ मै प्रिय दास, शिखावलि है मेरा शुभ नाम ।
आपसे कहकर सब वृतांत, किया है स्वामीका सब काम ।।
सान्त्वना दे उसको दश शीश, चले मृगपति सम यमकी ओर ।
देख सकते क्या जगमें वीर, स्वजना यों अपमान कठोर ।।२१।।

पहुच कर किहकूपुरके पास, गगनसे देखी शोभा सर्व ।
दृगो से देख नगर सौन्दर्य, उतर जाता देवों का गर्व ।।
देख फिर यमका नरकागार, हुआ लंकापति मनमें खेद ।
नीच यम अपने को यम मान, जानता नहिं सुर-नरमे भेद ।।२२।।

देख रावण की मूर्ति कराल, भगे यमके किकर तज प्राण ।
नरकको छिन्न, भिन्न, कर शीघ्र, दिखा वह सबको चन्द्र समान ।।
नरक मे सहते थे जो कष्ट, दिया पलमें उन सबको छोड़ ।
गये बहु तेरे निज निज गेह, उसे देते आशीष करोड़ ।।२३।।

दशाननको तब आया जान, नगरसे निकला यम विकराल ।
विभीषण ने होकर तैयार, किया उससे संग्राम कराल ।।
दशानन आये बन्धु समीप, त्वरित ही रणसे उसे निवार ।
लगे करने यमसे अति युद्ध, हुई तब व्याकुल सैन्य अपार ।।२४।।

लडे वे दो मातङ्ग समान, चलाये रावणने निज बाण ।
गिराया शत्रु सारथी शीघ्र, और यमको भी मारा बाण ।।
गिरा वह भी रथसे तत्काल, जानकर रावण को बलवान ।
छोड़कर अपना दिग्पालत्व, इन्द्र तट आया पा अपमान ।।२५।।

देव है रावण बलका पुंज, जीतना उसको है दुस्साध्य ।
ग्रीष्म ऋतुका संतप्तादित्य, देखना जैसे दृष्टि असाध्य ।।
इन्द्र ने बंधा उसे अति धैर्य, भुलाया उसका सब दुःख, शोक ।
काल आने पर अपने आप, भूल जाता है सब कुछ लोक ।।२६।।

सूर्यरजको देकर 'किष्कन्ध', रक्षरजको देकर पुर और ।
गया रावण सेना सह धाम, बने दोनों खेचर शिरमौर ।।
चन्द्र-सी दशमुखकी शुभ कीर्ति, विश्व में पाती थी विस्तार ।
पुण्यका ऐसा वैभव देख, चित्र सम लखता था संसार ।।२७।।

सूर्यरजका था बाली पुत्र, विज्ञ, योधा, उपकारी धीर ।
दयालु, सम्दग्दृष्टि, दक्ष, चित्तमें सागर सम गम्भीर ।।
सहोदर था इनका सुग्रीव, भ्रात सम ही योद्धा, गुणवान ।
भगिनि थी इन दोनों के एक, नाम श्रीप्रभा रूपकी खान ।।२८।।

रक्षरजके थे सुत, नल, नील, सूर्य शशि हो मानों साक्षात ।
पूर्वजोंकी अति उत्तम नीति, हुई थी इन दोनोंको ज्ञात ।।
सूर्यरज भवसे हुए विरक्त, सौंप बालीको सारा भार ।
बनाकर लघु सुतकों युवराज, बनें मुनि तजकर सब संसार ।।२९।।

तोड़ करके कर्मोंका फन्द, किया शिवपुर प्रति आत्म प्रयाण ।
मोह माया तजते जो जीव, उन्हींका होता है कल्याण ।।
जगतमे है वे मानव धन्य, छोड़ते भोग जान उच्छिष्ट ।
नित्य रहकर तपमें आसक्त, साधते है जो अपना इष्ट ।।३०।।

मेघप्रभ-सुत खरदूषण वीर, देखकर चन्द्रनखाका रूप ।
मदन से हुआ व्यथित अत्यन्त, भुलाया योग्यायोग्य स्वरूप ।।
जानकर लङ्का रावण हीन, नगरमें पहुंचा वह निःशङ्क ।
उठाकर चन्द्रनखाको सद्य, गया नभमें मायावी बंक ।।३१।।

विभीषण, कुम्भकर्णने आप, सोच करके अन्तिम परिणाम ।
हुआ जानेको प्रस्तुत सैन्य, उन्होंने लिया उसे झट-थाम ।।
हरणका सुनकरके वृतान्त, कार्य तज आया झट लंकेश ।
हाथ में धारण कर तलवार, चला रिपुको करने निःशेष ।।३२।।

किन्तु मन्दोदरि निज कर जोड़, विनयसे बोली वाणी मिष्ट ।
नाथ, कन्या पर गृहका द्रव्य, उसे परको देना जब इष्ट ।।
योग्य खरदूषण तब सब भांती, श्रेष्ठ विद्याधर, वीर, समर्थ ।
उसे निज भगिनी देना योग्य, शत्रुता करना उनसे व्यर्थ ।।३३।।

जीतकर चन्द्रोदरको वीर, बना पातालपरी में धाम ।
तुम्हारी बहिन सहित निर्भीक, प्रेमसे करता है आराम ।।
प्रिये, हैं तेरे वचन सुयोग्य; नहीं डरता करने से युद्ध ।
बहिन जो हो मेरी पतिहीन, दु:खसे होगा मानस विद्ध ।।३४।।

हुई जब चन्द्रोदरकी मृत्यु, जना तब 'अनुराधा' ने पुत्र ।
मृगी सी फिरे वनों में आप, दु:ख में होता कोई न मित्र ।।
विराधित रखकर सुतका नाम, पालती उसको वह सानन्द ।
वहीं था आश्रम उसका एक, और आंखोंका अनुपम चन्द्र ।।३५।।

विराधित राज्य सम्पदा हीन, सुनाता फिरता अपना कष्ट ।
सहायक हुआ न कोई लेश, बलीका पक्ष करे सब सृष्टि ।।
विराधित सोचे विविध उपाय, किन्तु है खरदूषण बलवान ।
बिताता था वह अपना काल, चित्तमें धर अवसरका ध्यान ।।३६।।

❑ ❑ ❑

बलवान वाली वीर दशमुख, की न आज्ञा मानता ।
लकेश इससे चित्त में, अपमान अपना जानता ।।
तत्काल ही 'किष्कन्ध' में, सन्देश यह भेजा गया ।
हे वीरवर, तुम पर सदासे, है दशाननकी दया ।।३७।।

है विश्वमे बलवान रावण, क्या न तुम यह जानते ।
रक्षक तुम्हारे तातका, उपकार क्यों नहिं मानते ?
हमसे विमुख जो हो रहे हो, जो महा अनुचित तुम्हे ।
अभिमान अपना छोड़कर, वन्दन करो प्रमुदित हमे ।।३८।।

श्रीप्रभा अपनी बहिन, तुम, सानन्द हमको दीजिए ।
निज प्रेमका सम्बन्ध इससे, और दृढ़पर कीजिये ।।
आदेश रावणका सभी, तैयार पालनके लिए ।
अन्त:करण प्रस्तुत न होता, किन्तु वन्दन के लिए ।।३९।।

जिस शीशने आजन्म, श्री जिनदेवका वन्दन किया ।
वह अन्य मनुजों के चरणमें, क्या करे वन्दन-क्रिया ?
यों सोचते थे मौन रह, वह दूत फिर बोला यही ।
कर जोड़कर वन्दन करो, इसमे कुशलता है सही ।।४०।।

उसको नमाओ शीश तुम, क्या काम है अभिमानसे ।
सबको प्रयोजन विश्वमें, है सर्वथा निज प्रणसे ।।
ले हाथ में तुम दण्ड, उसकी प्रेमसे सेवा करो ।
या छोड़कर सब राज-वैभव, जंगलोमें ही फिरो ।।४१।।

निज स्वामिके प्रति दूतकी, सुनकर कटुक वचनावली ।
आवेशमें आ क्रोधके, कोई सुभट बोला बली ।।
रे दूत, जीवित इस समय, जानें न दूंगा मैं तुझे ।
उन्मत्त होकर बोलता तू, ज्ञात यों होता मुझे ।।४२।।

यों बोलते मुखसे वचन, आती न तुझको लाज है ।
इस पेट-पोषणके लिए, सेवक बना तू आज है ।।
असि खीचकरके मारने को, हो गया सहसा खड़ा ।
तब बालिको, निज भृत्यको, अत्यन्त समझाना पडा ।।४३।।

ले प्राण अपने दूत भयमे, शीघ्र रावण तट गया ।
तब क्रोध से लकेशका, सम्पूर्ण तन अति तप गया ।।
स्वाधीन करनेके लिए, निज सैन्य ले आया वहां ।
प्रस्तुत हुए संग्राम करने के लिये बाली महा ।।४४।।

तब मन्त्रियोंने यों कहा - इस युद्धसे क्या काम है ?
बलवान से कर शत्रुता, होता न शुभ परिणाम है ।
मानव-विनाशक युद्धकी, इच्छा न मन मे कीजिये ।
हित रूप वचनोंमें हमारे, चित्त अपना दीजिए ।।४५।।

वैराग्य मन बाली कहे - मै सत्य कहता हूँ यही ।
सेना सहित लंकेशका, मैं नाश कर सकता सही ।।
हिंसाजनक दुष्कर्मसे, बढ़ता अधिक संसार है ।
मिलता न मानव जन्म, फिर जो मुक्ति पथका द्वार है ।।४६।।

हैं भोग नश्वर सर्वदा, इनके लिए लड़ना वृथा ।
हूँगा मुनि मैं त्यागकर, सब राज वैभव सर्वथा ।।
जो हाथ देते दान वा, जिनराज पद स्पर्शन करें ।
वे हस्तयुग कैसे कहो, लंकेश पद मर्दन करे ।।४७।।

सुग्रीव, इस संसारकी मुझको, न है कुछ कामना ।
हो आजसे अधिराज तुम, सुखसे प्रजाको पालना ।।
जैसा उचित समझो यहां, निशंक तुम वैसा करो ।
लंकेश चरणोंमें धरो, निज शीश अथवा मत धरो ।।
तज राज्य से नाता सकल, दीक्षा धरी जैनेश्वरी ।।४८।।

ससार तरने के लिए, साक्षात जो अनुपम तरी ।
बाली तपस्वी ध्यानमें, अत्यन्त दृढ़ रहने लगे ।।
आगत परीषह दुःख, सारे शान्तिसे सहने लगे ।
एक दिवस लंकेश गगनमें, चले जा रहे सचिवो संग ।।४९।।

❑ ❑ ❑

हुआ विमान अचानक स्ताम्भित, पड़ा रंगमे सबके भंग ।
बोल उठे लंकेश सविस्मय, क्यों नहिं आगे चले विमान ?
रोक उसे इस समय यहां पर, किसने किया घोर अपमान ?
अपने तले देखकर तत्क्षण, तीर्थ भूमि पावन कैलाश ।।५०।।

बोला तब मारीच सचिव यों, गिरि पर है मुनियोका वास ।
देव मन्दिरोंसे शोभित है, यत्र-तत्र अनुपम गिरिराज ।।
करते बिकट तपस्या देखो, नीचे निर्भय श्री मुनिराज ।
निज शरीर का मोह त्याग कर स्व आतम मे रहे विराज ।।५०ए।।

साधु और जिनमन्दिर परसे, जा न सके यह दिव्य विमान ।
नीचे उतर वन्दना कीजे, धरकर मनमे प्रभुका ध्यान ।।
दिशा बदलिये अथवा अपनी, निष्फल आग्रह यहां प्रचण्ड ।
हठसे यदि गतिमान करेंगे, तो विमान होगा शत खण्ड ।।५१।।

उतरा रावण निज विमानसे, मुदित हुआ पर्वतको देख ।
हुआ किन्तु वाली मुनिको लख, निज विमानगति रोधक लेख ।।
थे एकाग्र ध्यानमें वे मुनि, समता इस जीवन आधार ।
मन माना वह लगा बोलने, उन मुनिवरको बारम्बार ।।५२।।

प्रथम किया था मुझे न वन्दन, खड़ा साधुका धर पाखण्ड ।
तेरी इस दुष्कृतिका भीषण, देगा यह रावण अब दण्ड ।।
क्षय करती मुनिता मनुष्यके, जीवनभरके सारे दोष ।
धर करके जिनवेश शांति प्रद, छोड़ा नहीं आजतक रोष ।।५३।।

घोला विष अमृतमे तूने, करे व्यर्थ ही बल अभिमान ।
फेकूं गिरिकों आज उदधिमें दिखलाऊं निज शक्ति प्रमाण ।।
मन्त्र शक्तिसे लंकापतिने, किया रूप अपना विकराल ।
किया दीर्घ हुंकार स्वमुखसे, फरकें ओंठ, नेत्र हैं लाल ।।५४।।

विचलित करने उस गिरिवरको, धसा भूमिमें वह लंकेश ।
इस प्रकार लख उसको उद्यत, उपजा वन पशुओको क्लेश ।
लगे टूटने जलके झरने, गिरने लगे वृक्ष सर्वत्र ।
हुआ तीव्र कोलाहल गिरिपर, क्या होगा हा ! सम्प्रति अत्र ।।५५।।

खण्ड खण्ड होकर पर्वतके, गिरने लगे अधः पाषाण ।
निर्मोही बाली मुनिवरके, मनमे आया कुछ शुभ ध्यान ।।
है पवित्र पर्वत पर अनुपम, चैत्यालय अत्यन्त उतंग ।
आकर यहां भक्त सुर, किन्नर, करते रहते भक्ति अभंग ।।५६।।

लंकापतिके दुष्प्रयोगसे, हो न किसीका यहां अनिष्ट ।
सोच यही योगी वालीने, दबा दिया निज पद अंगुष्ठ ।।
दवा भूमिमे तब खेचर पति, सह न सका वह उसका भार ।
टूट गया था मुकुट शीशका, तनसे बहता स्वेद अपार ।।५७।।

सकुच गये पलभरमे उसके कच्छप सम सारे ही अङ्ग ।
पड़े स्वात्म जीवन के लाले, हुआ मान रावणका भंग ।।
रोने लगा विकट दुःखसे वह, रावण नाम हुआ विख्यात ।
परिजन आया साधु निकट तब, करता आंखोंसे जलपात ।।५८।।

भगवन ! आप दयालु जगमें, हममें भरा महा अज्ञान ।
इस कारण हमसे होते हैं, साधुजनों-प्रति दोष महान ।
प्रबल आपकी दिव्य शक्तिका, नहीं दशाननको था ज्ञान ।
करके उसके दोष क्षमा सब, सद्य दीजिये जीवन-दान ।।५९।।

शिथिल किया निज पैर अंगूठा, निकला तब बाहर दश शीश ।
क्षमा कराया आत्म दोष सब, योगीश्वरको नमकर शीश ।।
धन्य धन्य हे योगीश्वर तुम, धन्य धन्य उत्तम परिणाम ।
श्री जिनेन्द्र बिन और किसीको, किया आपने नही प्रणाम ।।६०।।

नहीं किसी से वैर आपको, जीव मात्रसे समता भाव ।
समझ सका मैं नही मान वश, प्रभो ! आपका आत्म प्रभाव ।।
गया जिनालयमे सत्वर वह, करता दुष्कृत खेद अपार ।
देख शान्त प्रभुकी प्रतिमाको, हुआ भक्ति-रसका संचार ।।६१।।

देव, आपको वन्दन शतशः, आप सदा त्रिभुवन आधार ।
इस दुरन्त संसार-जलधिसे, नाथ कीजिये मुझको पार ।।
महा मोहको जीत पलकमे, हुए आप जिनवर कृतकृत्य ।
नर, किन्नर, विद्याधर, सुरगण, ध्यान तुम्हारा धरते नित्य ।।६२।।

मोक्ष मार्ग उपदेशक जगमे, नहीं कहीं है आप समान ।
पर देवोंको विस्मय कारक, देव आपका केवल ज्ञान ।।
है विरागता जैसी तुममे, वैसी दिखे कहां अन्यत्र ।
आत्म प्रदेश सर्वथा तेरे, निर्विकार अत्यन्त पवित्र ।।६३।।

उसने निज टूटी तन्त्री पर, किया भुजा नसका संधान ।
रम्य अपरिमित निज वचनोंसे, करता था प्रभुका गुणगान ।।
नाथ आप हैं वचन अगोचर, मोक्ष मार्ग उपदेशक आप ।
देख आपको करे पलायन, मेरे जन्मान्तरके पाप ।।६४।।

ध्यान अग्निसे जला दिया है, आत्म विराधक मोह समस्त ।
लख यह दृश्य काम भी सत्वर, चला गया होकर अति त्रस्त ।।
विश्व प्राणियोंको करते हैं, सदा आप ही मुक्ति प्रदान ।
नहीं अन्य देवों में दिखता, नाम मात्र भी अनुपम ज्ञान ।।६५।।

लंकापतिकी परम भक्तिसे, हो प्रमुदित आया धरणेन्द्र ।
बोला-लख प्रभु भक्ति तुम्हारी, मैं प्रसन्न अत्यन्त नरेन्द्र ।।
हे राक्षसपति धन्य आप हैं, गाये जो जिनवरके गीत ।
क्या सम्प्रति उपहार तुम्हें दूं ? बोला तब रावण सविनीत ।।६६।।

नागराज, जिन भक्ति जहां है, वहां नहीं रहती पर चाह ।
कल्पवृक्ष पाकर क्या कोई, करे तुच्छ तरुकी परवाह ।।
रख मनमें वैभव अभिलाषा, करते जो प्रभुका गुणगान ।
नही मुक्ति दायक हो सकता, उनका वह जिनवरका ध्यान ।।६७।।

दी अमोघ बिजया सु शक्ति तब, करके अनुनय अधिक विशेष ।
पुण्य-प्रगट होता जब भूपर, मिले स्वयं तब द्रव्य अशेष ।
प्रमुदित होता हुआ दशानन, गया शीघ्र लंका की ओर ।
कुसुम-चित्त था मित्रोंका वह, रिपुओ पर था महा कठोर ।।६८।।

ज्योतिपुर है नगर, अनोखा अग्नि-शिख उसका नायक ।
थी उसकी 'ह्रीं' प्रिया, उसे अति ही सुखदायक ।।
थी बाला गुणवती एक, शुभ नाम सुतारा ।
मानो थी प्रत्यक्ष रूप, सरिताकी धारा ।।६९।।

❑ ❑ ❑

साहस गति विद्येशने, एक दिवस देखा उसे ।
व्याकुल मनमे हो गया, काम नाग उसको डसे ।।
साहस गति तब करें, याचना दूत भेजकर ।
चाहे श्री सुग्रीव, उसी को आप निरन्तर ।।७०।।

दुविधामें पड़ गया, पिता यह वृत्त जानकर ।
पूंछा मनका भाव; दिव्य ज्ञानी तट जाकर ।।
करते संशय दूर सब, बोले वे मुनिवर वहां ।
साहस गति है अल्प वय, इसमें संशय है कहां ।।७१।।

दी नृपने सुग्रीव, भूपको सुता सुतारा ।
हर्षित अतिशय हुआ, प्राप्त कर सौख्य सहारा ।।
नर जीवनमे प्रिया, सर्वदा सौख्य सहेली ।
उस बिन लगता सदन, मनुजको दुःखकी थैली ।।७२।।

निष्फल अपनी आशसे, पीडित साहसगीत हुआ ।
दुष्कर विद्या साधने, पर्वत-तटमें रत हुआ ।।
करने दशानन दिग्विजय, तजकर नगर बाहर चला ।
गगनेश, भूचर भूप गण, समुदाय आ आकर मिला ।।७३।।

करके अनेकोंको स्ववश, दे राज्य उनके हाथ मे ।
विजयार्ध वह लेता हुआ, लंकेश सबको साथ में ।।
सुनकर त्रिखण्डाधीश का, शक्रेंद्र सम विक्रम महा ।
स्वीकारसे रिपु नम्र हो, उसका प्रबल शासन वहां ।।७४।।

अभिमान में आ भूप जो, आज्ञा न उसकी मानता ।
निःशंक हो वह वीर उससे, युद्ध भारी ठानता ।।
चलते हुए सैन्य-सह रावण, उतरा नदी नर्मदा तीर ।
माहिष्मति पुरीका पालक, था सहस्र रश्मी अति वीर ।।७५।।

❑ ❑ ❑

रोक नीर वह उस सरिताका, करे केलि गजराज समान ।
राज वल्लभाओंसे वह जल, हुआ वहां अतिशय द्युतिमान ।।
उस सरिताके रम्य पुलिनमें, बना उच्च रेणुका स्थान ।
कर स्थापन प्रभु मूर्ति वहां पर, धरे दशानन प्रभुका ध्यान ।।७६।।

बना हुआ था उत्तम मण्डप, लटक रहे पुष्पों के हार ।
चुरा रहे थे दर्शक मनको, सब प्रकार सुन्दर थे द्वार ।।
जल, चन्दन, अक्षत, प्रसून फल, धूप, दीप नैवेद्य अपार ।
यथास्थान रखकर इन सबको, प्रभु पूजार्थ हुआ तैयार ।।७७।।

किन्तु वहां पूजा सामग्री, हुई मलिन जलसे सब नष्ट ।
मुक्त बन्ध-जलसे यह सारा, हुआ अचानक महा अनिष्ट ।।
हुआ नीर-बाधक रावणको, उठा त्वरित कर आंखे लाल ।
कहके विघ्न उपस्थित इस विधि, किसका आ पहुंचा है काल ।।७८।।

कहा सेवकोंसे देखो तुम, किसका यह अविवेक विशेष ।
जान सकल वृत्तान्त शत्रुपर, आया रावणको अति द्वेष ।।
हुआ घोर संग्राम परस्पर, विजयी हुआ वहां दशशीश ।
जान सर्व यह वृत्त वहां पर, आये श्री शतबाहु मुनीश ।।७९।।

आसन से उठ, हाथ जोड़कर, दशमुख सविनय करे प्रणाम ।
करू आपकी क्या मैं सेवा, कहिये मुझसे हे गुणधाम ।।
देख आपको यहा मुनीश्वर, पुलकित होता मेरा गात्र ।
धन्य, धन्य हे विभो आपको, आप मुक्तिके उत्तम पात्र ।।८०।।

हे रावण, प्रति नारायण तू, शक्तिमान, गम्भीर महान ।
करता है तू सदा यथोचित, गुणीजनों का शुभ सन्मान ।।
सच्चा क्षत्रिय जीत शत्रुको, बने न उसके लिए कठोर ।
बन्धन मुक्त कीजिये रिपुको, ध्यान न दो दोषोकी ओर ।।८१।।

नहीं लेश अपराध हमारा, किया शत्रुने ही अपराध ।
होकर विवश युद्धमें उसको, लिया जीतकर हमने बॉध ।।
भगवन निस्पृह आप सर्वथा, मान्य आपका है आदेश ।
प्रणिमात्रको सच्चा क्षत्रिय, कभी न दे निष्कारण क्लेश ।।
मुक्त किया बन्धनसे उसको, आया वह दशमुखके पास ।
बोला हे लंकेश धन्य तुम, तोडूगा अब मैं भवपाश ।।८२।।

देख निकट मे दशमुखने भी, किया अधिक उसका सत्कार ।
राजन् दुखित न हो निज मनमे, जीत, हार मय हैं संसार ।।
कहे सहस्र रश्मि क्षितिपति तब, होकर विषयो में आसक्त ।
जान न पाया दुखद विश्वको, सम्प्रति है मन जगत विरक्त ।।८३।।

कहने लगा दशानन मुखसे, धर्म-क्रिया वृद्धोंका काम ।
भोगो भोग विश्वके सुखकर, तुममें है यौवन अभिराम ।।
हे राजन् यह काल कभी भी, नहीं देखता बालक, वृद्ध ।
हैं समान इसको जगमें सब, मूर्ख, विज्ञ क्या रङ्क समृद्ध ।।८४।।

श्री शतबाहु साधुके सन्निधि, क्षोणी पति मुनि बना पवित्र ।
था साकेत-नाथ पहलेसे, इस भूपतिका अतिशय मित्र ।।
वचन बद्ध हो चुके प्रथम थे, छोडे जो पहले संसार ।
भेजे वह यह समाचार शुभ, अपने पूर्व मित्रके पास ।।८५।।

सहस्र रश्मिकी दीक्षाको सुन, व्याकुल हृदय हुए अनरण्य ।
सोच जगतकी भंगुरताको, कहने लगे मित्रको धन्य ।।
मित्र आज तक विभव-जालमें, फंसा हुआ था पक्षि समान ।
छुड़ा उसे सम्प्रति रावणने, किया अहो ! उपकार महान ।।८६।।

राज्य सौंप दशरथको सारा, बनें दिगम्बर मुनि अनरण्य ।
त्याग वासनाओं को मनसे, आत्म ध्यानमें रहें अनन्य ।।
पुण्योदय प्रगटित होता जब, बनता है तब अन्य निमित्त ।
पापकर्म वश कारण पाकर, आती गृहमें स्वयं विपत्ति ।।८७।।

प्रेरित करता धर्म मार्गमें, वही विश्वमें सच्चा मित्र ।
करे प्रेरणा विषय भोगमें, नहीं सखा वह पूरा शत्रु ।।
इस भूपतिकी कथा मनोहर, सुखद शान्त रससे भरपूर ।
सुनता जो एकाग्र चित्तसे, होता कल्मष उसका दूर ।।८८।।

मान रहे थे अपनेको जो, नरपति भूपर महा प्रचण्ड ।
किया उन्हे आज्ञा पालक निज, करके उनका खण्ड घमण्ड ।।
करता था पूजा जिनेन्द्रकी, देता था मुनियोको दान ।
करुणा करता था दुखियों पर, विज्ञजनों प्रति था सन्मान ।।८९।।

सूर्य तुल्य रावण धरणीमें, हुआ पराक्रमसे विख्यात ।
शनैः शनैः बढ़ता जाता था, उसका अनुपम पुण्य प्रभात ।।
भक्तिभावसे करे मार्गमें, जीर्ण मन्दिरोंका उद्धार ।
करके सुखप्रद पुण्य क्रियायें, बांधे रावण पुण्य अपार ।।९०।।

❑ ❑ ❑

चतुर्थ सर्ग

चला विजय के लिये, लंक-पति दिश उत्तर में ।
भरा हुआ उत्साह, सभी वीरों के उर में ।।
नगर राजपुर है मरुत्व, नरपति अभिमानी ।
मिथ्यामत अनुरक्त, दुष्ट मन अति अज्ञानी ।।१।।

निज जीवन में नहीं, सत्य को उसने पाया ।
प्राणी वध भय, यज्ञ मार्ग मे चित्त लगाया ।।
रावण का आदेश गर्व वश, आप न माने ।
त्रिभुवन में बलवान्, आपको मन में मानें ।।२।।

बोले सत्वर सभा, मध्य श्रेणिक गौतम से ।
कैसे हुआ प्रवृत्त यज्ञ, यह कहिये हमसे ।।
आतुर सब वृत्तान्त, जानने को मेरा मन ।
हो विनष्ट सन्देह, सर्वथा जिससे इस क्षण ।।३।।

अवधपुरी नृप ययाति थे, इक्ष्वाकु वंशधर ।
सुरकन्या थी प्रिया, रूप में रति से बढ़ कर ।।
वसु नाम था पुत्र, हुआ जब पढ़ने लायक ।
पण्डित क्षीर कदम्ब, वहां था विद्या नायक ।।४।।

स्वस्तिमती थी सती, स्वामि-सेवा मे तत्पर ।
पर्वत पढता पिता पास, गृह में ही रह कर ।।
वसु, नारद भी वहां, सिखाते थे विद्यायें ।
गुरु तीनों को भेद भाव, बिन नित्य पढ़ायें ।।५।।

एक समय गुरु गये, सभी को लेकर बन में ।
चारण मुनि थे वहां, पाप नहिं जिनके मन में ।।
कहा शिष्य से चार जीव, जो यहां उपस्थित ।
दो की मति हैं शुद्ध और, दो हैं अति दुर्मति ।।६।।

सुनकर क्षीर कदम्ब हुआ, भयभीत जगत से ।
जाओ तुम निज सदन, कहा शिष्यों से, सुत से ।।
दीक्षा ले मुनि पास बना अध्यापक मुनिवर ।
स्वस्तिमती का हुआ हृदय, तब दुख का सागर ।।७।।

हुए ययाति साधु, राज्य वसु सुत को देकर ।
राज्य करे वह बैठ, स्फटिक के सिंहासन पर ।।
माने उसको सभी, सत्य वक्ता है भूपित ।
नभ में है आधार, बिना सिंहासन की स्थिति ।।८।।

अजैष्टर्क छिड़ा, अर्थ में बाद परस्पर ।
बकरों से हो यज्ञ, अर्थ करता पर्वत पर ।।
नारद कहता यहां अर्थ, यह अतिशय अनुचित ।
इसका ऐसा अर्थ नहीं, विज्ञों को अनुमत ।।९।।

उग न सके जो धान्य, अर्थ अज का है जानो ।
करके कल्पित अर्थ, पाप में मन मत लानो ।।
छोड़े पर्वत नही, कुमति वश दुष्ट कदा ग्रह ।
वसु भूपति जो कहे, अर्थ सच्चा होगा वह ।।१०।।

पर्वत ने सब बात कही, माता से जाकर ।
तूने किया अनर्थ घोर, बोली अकुलाकर ।।
अवसर अब भी पुत्र, चेत तू अपने मन में ।
मत बन पोषक पाप पंथ का, इस जीवन में ।।११।।

नारदोक्त है सत्य अर्थ, यह मैं भी जानूं ।
स्वर्ग मुक्ति का मार्गपुत्र, मैं भी पहचानूं ।।
पापी पर्वत नहीं छोड़ता, अपनी हठ जब ।
जननी पहुंची मोह विवश, वसु भूप निकट तब ।।१२।।

वसु ने कर द्वय जोड़, दिया उसको शुभ आसन ।
कहिये मुझसे आप शीघ्र, आने का कारण ।।
निज सुत का वृत्तांत सुनाया, उसने सारा ।
सम्प्रति राजन् मुझे एक, आधार तुम्हारा ।।१३।।

ले पर्वत का पक्ष पुत्र, तुम उसे जिताना ।
नारद का है अर्थ व्यर्थ सबको समझाना ।।
सुन गुरु-पत्नी वाक्य भूप, मन में घबराया ।
कैसे मैं कर सकूं माय, मैं मिथ्या माया ।।१४।।

एक वचन भी मृषा, जीव को देता दुर्गति ।
कैसे दू मैं घोर पाप में, सम्प्रिति सम्मति ।।
पर्वत का सब अर्थ उसे, स्वीकार करा कर ।
पहुंच गई निज सदन आप, अनजानी बन कर ।।१५।।

नारद, पर्वत बाद सहित, वसु के तट आये ।
दोनों ने निज अर्थ, प्रेम से वहां सुनाये ।।
'अजैर्यष्टव्यॅ' अर्थ यहां पर धान्य पुराना ।
हो उससे शुभ यज्ञ, अर्थ तुमने भी जाना ।।१६।।

अज का करता अर्थ, यहाँ बकरा, यह पर्वत ।
तो क्या सम्प्रति अर्थ आपको, है वह सम्मत ?
बोला वसु दुर्बुद्धि अर्थ, पर्वत का समुचित ।
सिंहासन गिर पड़ा, गगन मे था जो सुस्थित ।।१७।।

धिक् ! धिक् ! रे नर दैत्य, मचा कोलाहल भारी ।
है पापी वसु भूप, नरक गति का अधिकारी ।।
राजन् अब भी, सत्य बोलिये बोला नारद ।
नहिं तो निश्चित् जान लीजिये, दुर्गति दुख प्रद ।।१८।।

पुन: पुनः वह रहा, बोलता पर्वत वाणी ।
जाना सबने उसे, हटी, पापी, अभिमानी ।।
धरती मे धस गया, भूप का शुभ सिंहासन ।
गया महातम मध्य, भूप मर कर के तत्क्षण ।।१९।।

नगर वासियो से होकर, अतिशय अपमानित ।
चला गया परदेश, शीघ्र वह पापी पर्वत ।।
हिंसा पोषक बना, शास्त्र वह, पढ़े, पढ़ाये ।
हिंसा में हैं धर्म जगत् को, यों समझाये ।।२०।।

मन्त्र सहित जो यज्ञ, बीच मरते हैं प्राणी ।
सम्पति पाते स्वर्ग लोक में, वे मन मानी ।।
पाकर असुर सहाय, पाप का, पंथ चलाया ।
स्वर्ग लोभ वश इसे, अज्ञ जनने अपनाया ।।२१।।

मरुत कराता यज्ञ, वहां नारद जो आये ।
लख आडम्बर विकट, चित्त में वे चकराये ।।
उतर गगन से लगे बोलने, लख आडम्बर ।
क्यो एकत्रित किये गये, पशु मूक यहा पर ।।२२।।

बोला याजक धर्म कर्म को, क्या तुम जानो ?
यह पशु वध है स्वर्ग पथ, यो मन में मानो ।।
जो भी मरता यहां, स्वर्ग वह सीधा जाता ।
यही यज्ञ सर्वत्र, कष्ट से हमे बचाता ।।२३।।

बोले नारद दया धर्म, सुखकारक जग मे ।
हिसा है दुख रूप, सर्वथा सुख के मग मे ।।
जो दे पर को त्रास, मनुज वह बैर बढ़ाता ।
परका कर बध नही, स्वर्ग में कोई जाता ।।२४।।

नहीं देखता स्वार्थ, विवश पापो का मानव ।
हिंसा जैसे घोर, कृत्य कर बनता दानव ।।
छिडा द्विजो का बाद, वहा नारद से भारी ।
हुए निरुत्तर अल्प, समय में पापाचारी ।।२५।।

हुए कुपित अत्यन्त, कथन सब उसका सुनकर ।
हाथो से वे लगे मारने, उसे पकड़ कर ।।
आया रावण दूत, देख यह दृश्य भयङ्कर ।
समाचार सब कहे, त्वरित रावण से जाकर ।।२६।।

आ पहुंचा तत्काल, दशानन उसे बचाया ।
तोड़ा मण्डप सर्व प्राणि, समुदाय छुड़ाया ।।
फेंक दिया सामान यज्ञ का, द्विज गण भागे ।
टिक न सका क्षण मात्र, कोई भी उसके आगे ।।२७।।

गिरे बहुत से मनुज, मूर्च्छित हो पृथिवी पर ।
वृक्ष-तुल्य था कांप, रहा कोई नर डर कर ।।
कहा सकल वृत्तान्त, किसी ने नृप से जाकर ।
आया वह सक्रोध, सैन्य सह यज्ञ भूमि पर ।।२८।।

बोले नारद धन्य धन्य, तुम सदा दशानन ।
नहिं आते यदि आप, न बचता मेरा जीवन ।।
हिंसा है दुःख रूप, इन्हें मैंने समझाया ।
पर दुष्टों ने मुझे यहाँ, अत्यन्त सताया ।।२९।।

कीजे करुणा आप, इन्हे अब कष्ट न दीजे ।
सुन इनका आक्रन्द, घोर मम चित्त पसीजे ।।
करके सब को शान्त, शान्ति से रावण बोले ।
हिंसा में भी धर्म, मान बैठे नर भोले ।।३०।।

यदि हिसा में धर्म, मान ले यह जग सारा ।
तो होगा धर्मिष्ट, यहां पापी हत्यारा ।।
कर जीवो का घात, किसी को स्वर्ग न मिलता ।
जलज कमल क्या कभी, किसी पत्थर पर खिलता ।।३१।।

कहते जिसको यज्ञ नही, वह यज्ञ कहाता ।
कैसे हो वह यज्ञ, जहां दुःख प्राणी पाता ।।
सबको नज प्रिय प्राण, कोई नहिं चाहे मरना ।
उन्हें यज्ञ में होम व्यर्थ, क्यों हिंसा करना ।।३२।।

होता इससे पाप, जीव दुर्गति में जाता ।
होकर विवश अनेक, याचनाओं को पाता ।।
तुमको है यदि यज्ञ, इष्ट तो मन को मारो ।
तज माया, मद, लोभ, आत्म आचार सुधारो ।।३३।।

स्वर्ग, मुक्ति का दान, सदा देती है करुणा ।
केवल दुर्गति द्वार, जानिये परका हनना ।।
बोला तब वह मरुत, नम्र ही शीश झुकाकर ।
सेवक हूँ मैं सदा, आपका हे करुणा कर ।।३४।।

होगी ऐसी भूल नहीं, मुझसे अब आगे ।
समझ सके नहिं धर्म कार्य, हम लोग अभागे ।।
हम सबको स्वीकार, आज से है जिन शासन ।
दशमुख दूंगा कभी न, पशु यज्ञों में मैं मन ।।३५।।

मरुतल-सुता श्री कनक प्रभा से, करके परिणय ।
रहा दशानन वहा प्रेम से, सुख से निर्भय ।।
कनक-प्रभा के हुई वहां, कृतचित्रा कन्या ।
जो थी जग में रूप पूर्ण, गुणवती अनन्या ।।३६।।

आयी सुन्दर सुता समय पर, यौवन-बन मे ।
चिन्तित दशमुख हुआ, देख कर इसको मन में ।।
सोचे वह स्वयमेव सुता, जब घर जाये ।
तब चिन्ता से छूट, सकल कुल मोद मनाये ।।३७।।

❑ ❑ ❑

योग्य मन्त्रियों, करना मुझको, कृतचित्रा का, सद्य विवाह ।
इसके लिए आपदें सम्प्रति, मुझको सुखप्रद योग्य सलाह ।।
अल्प समय में करना होगा, हमें इन्द्र से दृढ़ संग्राम ।
नही जान सकते हम उसका, कैसा आयेगा परिणाम ।।३८।।

कर यह मङ्गल कार्य सुता का, होगा मन मेरा निश्चिन्त ।
हरिवाहन ने अपने सुत को, आप बुलाया वहां तुरन्त ।।
दशमुख हुआ प्रसन्न चित्त अति, देख राजसुत सुन्दर रूप ।
माना उसे सर्वथा उसने, अपनी कन्या के अनुरूप ।।३९।।

कहा मन्त्रियों ने भी उससे, शूर वीर यह राजकुमार ।
किसे नहीं मोहित करता है, काम तुल्य इसका आकार ।।
'मधु' है इसका नाम लोक में, मधुर गुणों का है यह धाम ।
विस्मयकारक है जनता को, इसके सारे ही शुभ काम ।।४०।।

हो प्रसन्न चमरेन्द्र असुर ने, दिया भेट में इसे त्रिशूल ।
जीवित वह रह सके नहीं रिपु, जिसे शस्त्र देता वह मूल ।।
धूम धाम से उत्सव पूर्वक, कर विवाह उस मधु के साथ ।
हुए मुक्त कन्या चिन्ता से, सब प्रकार वे लंका-नाथ ।।४१।।

लगे पूछने गणिसे श्रेणिक, कैसे मधु को मिला त्रिशूल ।
कहने लगे सभा में गणधर, बरसाते वचनों के फूल ।।
हे श्रेणिक हम - कहें हेतु सब, सुनो सर्वथा देकर ध्यान ।
शुभ चरितों के दिव्य श्रवण से, बढ़ता है मानवका ज्ञान ।।४२।।

शतदारापुर मे रहते थे, प्रभव सुमित्र नाम दो मित्र ।
प्रभव जन्म से ही निर्धन था, दिया मित्रने इसको वित्त ।।
निज समान कर लिया सहज में, कहे इसे जग सच्चा स्नेह ।
चित्त एक होता मित्रों का, पृथक् पृथक् होते पर देह ।।४३।।

थी सुमित्र पत्नी बनी माला, वन लक्ष्मी मानों साक्षात् ।
देख प्रभव उसकी सुषमा को, रहने लगा दुखित दिनरात ।।
कहे सुमित्र मित्र से प्रियवर, किस कारण रहते तुम खिन्न ।
कहो हृदय की बात अभय हो, होकर अब अत्यन्त प्रसन्न ।।४४।।

कह डील सब कथा प्रभव ने, तजकर के लज्जा संकोच ।
बोला तब सुमित्र दृढ़तासे, करते हो क्यों इतना सोच ।।
चिन्ता छोड़ मित्र तू सत्वर, है मेरे जो यहां पदार्थ ।
सदा उन्हें समझो तुम अपना, कहूँ बात मैं यहां यथार्थ ।।४५।।

प्रभव भवन भेजा पत्नी को, कर पूरी तू उसकी आश ।
रहा देखता स्वयं गुप्त हो, करे न पत्नी उसे निराश ।।
निकट देख पत्नी स्वमित्र की, प्रभव करे इस भांति विचार ।
परदारा अभिलाषी मुझको, बार बार सम्प्रति धिक्कार ।।४६।।

दुर्विचार आया क्यों मन में, छोड़ूँ मैं अपने प्रिय प्राण ।
मरने को तैयार हो गया, लेकर कर में निशित कृपाण ।।
छुड़ा हाथ से शस्त्र मित्र का, आलिङ्गन करके अत्यन्त ।
आत्मघात से सहने पडते, जगती में हा ! कष्ट अनन्त ।।४७।।

करो न मन में खेद लेश तुम, है विचित्र सारा संसार ।
अपने परिणामों के वश से, जन्म मरण हो लाखों बार ।।
किसका कौन मित्र है जग में, तथा यहां है कौन अमित्र ।
कर्म विवश आकर गतियों से खग समान होते एकत्र ।।४८।।

यों विचार जग की विचित्रता, बना साधु श्रीमान् सुमित्र ।
करे तपस्या रह कानन में, हुआ हृदय अत्यन्त पवित्र ।।
मुनि सुमित्र ने तजकर तन को, प्राप्त किया ईशान विमान ।
च्युत होकर मथुरा नगरी मे, हुआ वीरवर मधु मतिमान् ।।४९।।

मिथ्या दर्शन विवश प्रभव ने, किया लोक मे भ्रमण महान ।
पूर्व जन्म के आत्म मित्र को, अवधि ज्ञान से सत्वर जान ।।
या मानव भव द्रव्य लिङ्गधर, दे काया को अतिशय क्लेश ।
निज निदान से अन्त समय में, हुआ भवन पति मे असुरेश ।।५०।।

भया जाति सुमरण गत भव का मधु ने किया मेरा कल्याण ।
तत्कृत उपकारों का सम्प्रति, करूं हृदय से मैं सम्मान ।।
आ समीप मधु के तब सौंपा, अनुपम उसने एक त्रिशूल ।
सदा रहूँगा इस जीवन में, हे राजन् तेरे अनुकूल ।।५१।।

पूर्व जन्म में सुहद् आपने, किया प्रबल मेरा उपकार ।
दबा रहा है पल पल उसका, मित्र आजतक भारी भार ।।
धन्यवाद देता वह मधु को, गया सुरपति अपने सुस्थान ।
रखता था आपत्ति समय में, मधु भूपति का मन मे ध्यान ।।५२।।

आ कैलाश निकट गङ्गातट, दिये सैन्य ने तम्बू तान ।
पथश्रम सकल दूर करने का, किया सुशीतल जल मे स्नान ।।
हय, गज, और मनुज ही वन मे, दिखते थे अब चारो ओर ।
निज-निज प्रिय आवास छोड़कर, भागे पशु सुनशब्द कठोर ।।५३।।

बाली का वृत्तान्त याद कर, निज भवनों को किया प्रणाम ।
दशमुख के आने की चर्चा, पहुंची नलकूवर के धाम ।।
उसने लिखकर पत्र शीघ्र ही, भेजा दूत इन्द्र के पास ।
आया है रिपु निकट सैन्य ले, करने सकल हमारा नाश ।।५४।।

शत्रु-चमू सागर से अतिशय, चारों ओर प्रजा भयभीत ।
देव आप आदेश त्वरित दें, चलें कौन-सी उत्तम नीति ।।
जाता था उस समय इन्द्र वह, सुरगिरि जिन विन्दन के अर्थ ।
नलकूवर सब करे व्यवस्था, सब प्रकार वह कुशल समर्थ ।।५५।।

निज वन्दन कर आता हूँ मैं, गया मेरु पर किया प्रणाम ।
की न राज्य की चिन्ता उसने, धर्म लगा उसको सुखधाम ।।
की विचारणा निज सचिवों से, नलकूवर ने पुर रक्षार्थ ।
विद्याबल से खड़ा कर दिया, विषम शाल निज शत्रुभयार्थ ।।५६।।

इस दुर्लंघ नगर मे रहता, नलकूवर नामा दिग्पाल ।
चिन्तित हुआ दशानन मनमे, लखकर उसका ठाट विशाल ।
देख कोट की रचना भय प्रद, सोचे बारम्बार उपाय ।
पुनः पुनः पूछे सचिवों से, कोट पतनका दिव्य उपाय ।।५७।।

उपरंभा नलकूवर रमणी, करे दशानन की अभिलाष ।
होकर व्यथित काम वाणों से, लेने लगी उष्ण निश्वास ।।
मनुज मुखों से श्रवण किया था, प्रथम दशाननका गुणगान ।
हृदय हो उठा मिलने आतुर, आया निकट यहां यों जान ।।५८।।

बुला सखी को कहे प्रेम से, मुझे तुम्हारा है विश्वास ।
प्रगट कर रही हूँ इससे मैं, तुमसे निज जीवन अभिलाष ।।
लोक निन्द्य मम कार्य सर्वथा, किन्तु हुई हूँ मैं लाचार ।
सह न सकूं क्षणभर भी मैं अब, दुष्ट मदनका प्रबल प्रहार ।।५९।।

मिले एक पल जो लङ्कापति, बुझे हृदय की अग्नि समस्त ।
उस बिनसमझ रही हूँ क्षण-क्षण, मैं अपना जीवन विध्वस्त ।।
बोली सखी धैर्य देती अति, करो न तुम चिन्ता लवलेश ।
करू प्रयत्न प्रेम से ऐसा, मिले स्वामिनी को लंकेश ।।६०।।

जाकर सखी चित्रमाला ने, लंकापति को किया प्रणाम ।
सिद्ध हस्त होती महिलायें, करने में दूती का काम ।।
सुनिये मेरी बात चित्त दे, आप सदा हैं कृपानिधान ।
बचा लीजिये उपरँभा को, देकर दिव्य प्रणय का दान ।।६१।।

सुन उसके पापिष्ठ वचन वह, देता हुआ उसे धिक्कार ।
है सर्वत्र लोक में दुख प्रद, परनारी सह दुष्टाचार ।।
अधम कृत्य रहते जी में जी, करें नहीं उत्तम कुलवान ।
अनाचार द्वारा होता है, धर्म नीति का भी अपमान ।।६२।।

पाप कर्म से विमुख सदा मै, परदारा मुझको उच्छिष्ट ।
इन पापों से ही मनुजों को, यहा भोगना पड़ता कष्ट ।।
बोला सद्य विभीषण मुख से, पा करके निर्जन एकान्त ।
सदा बन्धुवर आप जानते, राजनीति का सब वृत्तान्त ।।६३।।

राजाओ के दाव-पेच भी, विदित आपको है निःशेष ।
स्वीकृति कीजे आप बात सब, समय देखकर आज विशेष ।।
कार्य सिद्ध कर लेना अपना, राजनीति का है आधार ।
एक बार उस उपरंभा के वचन आप कीजे स्वीकार ।।६४।।

बोला दासी से दशमुख तब, रखकर मन मे अन्य विचार ।
उपरम्भा आदेश मुझे है, स्वीकृत अधुना लाखो बार ।।
सखी साथ ले करके आई, उपरम्भा को दशमुख पास ।
बोल उठा रावण रमणी से, करते हुए मधुर मृदु हास ।।६५।।

हम दोनो दुर्लंघ नगर में, होकर निर्भय करें विला ।
देख नहीं सकती ये आंखें, सुन्दरी तेरा हार्दिक त्रास ।।
मायामयी शाल-भंजन का, बतलाओ कुछ हमें उपाय ।
दी 'आसाल' दिव्य विद्या तब, तथा शस्त्र का भी समुदाय ।।६६।।

त्वरित दिव्य विद्या प्रभाव वश, कोट मेघ सम हुआ विलीन ।
नगर ले लिया है विपक्ष ने, नलकूवर मन था तब दीन ।।
करने लगा अन्य शस्त्रों से, फिर भी रिपुसह वह संग्राम ।
वहां सफलता मिलती है कब, जहां दैव हो जाता वाम ।।६७।।

पकड़ा उसे विभीषण ने तब, लात मार कर दृढ़ रथ तोड़ ।
तितर बितर हो गई सैन्य सब, भगी युद्धकी धरणी छोड़ ।।
दशमुख की आयुध शाला में, प्रगटित हुआ सुदर्शन चक्र ।
होते सिद्ध सभी हित मन के, होता है जब भाग्य अवक्र ।।६८।।

उपरम्भा से कहा शान्त हो, दिया मुझे विद्या का दान ।
इससे मेरे लिए हो चुकीं, तुम तो उत्तम गुरु समान ।।
स्वर्ग मुक्ति दाता है संयम, करो न तुम मन में कुविचार ।
पराधीन होकर पापों से मरना पड़ता बारम्बार ।।६९।।

सुन्दरि विषय वासना वशहो, मलिन करोमत निज अवतार ।
प्रिय पतिसह भोगो सुख सारे, करो और अपना उद्धार ।।
नलकूबर को बुला निकट में, देकर उसको सुख प्रद बोध ।
यथा योग्य आदर के द्वारा, कर डाला सब शान्त विरोध ।।७०।।

दशमुख का आगमन श्रवण कर, मन में इन्द्र विचारे ।
होगे सफल मनोरथ मेरे, इस ही रण से सारे ।।
अब तक कर संग्राम अनेकों, अरि गण हरिण भगाये ।
जीवित रह सकता वह कैसे, जो हरि सुप्त जगाये ।।७१।।

शस्त्र सज्ज हो जाओ देवो, यो आदेश सुनाया ।
लेने योग्य सलाह इन्द्र तब, पिता पास मे आया ।।
नवा विनय से शीश जनक को, बोला कोमल स्वर मे ।
आ पहुंचा है आज विपक्षी, लडने अपने घर मे ।।७२।।

उसे बढ़ा करके मैंने ही, की है भूल भयङ्कर ।
अल्प रोग भी इस शरीर को, कभी न होता सुखकर ।।
राक्षस पति के पूर्ण नाश का, प्रथम किया था निश्चय ।
रोक दिया था किन्तु आपने, कहा रहो तुम निर्भय ।।७३।।

नही तात रण से डरता है, उचित बात सब कहिये ।
युद्ध करू मै उस पापी से, आप सदन मे रहिए ।।
हे सुत ले तू काम शान्त से, कर मत अधिक उतावल ।
दे सकता सर्वत्र सिद्धि क्या, केवल अपना ही बल ।।७४।।

रूपवती निज कन्या देकर मैत्री आप बढाओ ।
रण के खटपट मे पड़ कर के, हिंसा नहीं कराओ ।।
बोला इन्द्र रोष में आकर, सुन कर जनक वचन को ।
कैसे दे सकता कन्या मैं, अपने उस दुश्मन को ।।७५।।

आने से वृद्धत्व आपने, अनुचित वचन उचारे ।
सुना आपने कभी आज तक, देव हमारे हारे ।।
आप पिताजी समझ रहे हैं, क्या मुझको कायर नर ।
आने पर मैं समय-करूंगा, युद्ध भयंकर डट कर ।।७६।।

दिया युद्ध आदेश इन्द्र ने, वाणी जनक न मानी ।
होते सदा समर से सीधे, मानव अति अभिमानी ।।
मचा घोर संग्राम परस्पर, देव राक्षसो का तब ।
दिखते थे सर्वत्र समर मे, अगणित वीरों के शव ।।७७।।

वह अनन्त आकाश पलकमे, सुर यानों से छाया ।
देवो ने राक्षस समूह को, पीछे सहज हटाया ।।
लख स्वपक्ष को पीछे हटते, दशमुख के विद्याधर ।
आये शस्त्र सुसज्जित होकर, निज यानो पर चढकर ।।७८।।

हटी देव सेना तब क्षण मे, इन्द्र युद्ध में आया ।
मार राक्षसो को बाणो से, रण में क्षोभ मचाया ।।
श्रीमाली प्रस्तुत हो करके, लगा बाण वरसाने ।
सुर-सेना विध्वंसक उसको, इन्द्र हृदय में माने ।।७९।।

ले आदेश जयन्त इन्द्रसुत, आया शीघ्र वहां पर ।
करने लगा कराल युद्ध वह, श्रीमाली पर धसकर ।।
श्रीमाली ने मार दण्ड तब, तोडा उसका अखंडन ।
भूल मान तन मनका सारा, गिरा इन्द्रका नन्दन ।।८०।।

हो सचेत उठा बैठा सत्वर, फेके बाण भयंकर ।
श्रीमाली का टूट गया रथ, गिरा मूर्च्छित होकर ।।
करने से उपचार वहां पर, शीघ्र भान में आया ।
लडनेको जयन्तको उसने, सन्मुख त्वरित बुलाया ।।८१।।

करें बिकट संग्राम परस्पर, मानों वन कुञ्जर हैं ।
दोनों हैं बलवान् एक से, दोनों हृदय निडर हैं ।।
मारी गदा इन्द्रसुत ने यों, उसके वक्षः स्थल में ।
श्रीमाली चल बसे स्वर्ग में, तजकर तनको पलमें ।।८२।।

उस जयन्त ने शंख नाद कर, अपना हर्ष बताया ।
किन्तु दशाननकी सेनामे, शोक भयंकर छाया ।।
इन्द्रजीत तब धैर्य बंधाकर, आया उसके सन्मुख ।
लडे रहे सिंह सम दोनों, हुआ न एक पराङ्मुख ।।८३।।

इन्द्रजीत ने उस जयन्तका, ऋणमय किया सकल तन ।
तब उसके सन्मुख झट आया, इन्द्र स्वयं ही तत्क्षण ।।
कहा सारथीने रावणसे, सुरपति ऐरावत पर ।
चढकर आया समर भूमिमे, बनकर काल भयंकर ।।८४।।

करें युद्ध उससे स्वामी ही, इन्द्रजीत है बालक ।
मालीका मारक है यह रिपु, हुई यह स्मृति अचानक ।।
रक्त हो गया आनन सारा, रिपुको त्वरित पिछाना ।
घिरा देखकर इन्द्रजीतको, निश्चित किया बचाना ।।८५।।

भिड़ा इन्द्रसे रावण योद्धा, ज्यों गजराज परस्पर ।
प्रलयकाल आया है मानों, धरकर रूप भयंकर ।।
रुण्ड-मुण्ड बहु उछल रहे थे, सरिता बहे रुधिरकी ।
काट रहे थे रिपुओंको भट, चिन्ता तजकर घरकी ।।८६।।

देख इन्द्रको समर भूमिमें, रावणने ललकारा ।
देखेगा अपनी आंखोसे, मेरा बल तू सारा ।।
चर्म-अस्थिवाला मानव हो, सुरपति नाम धराया ।
स्वर्गलोक का अधिपति हूँ मै, लोगोंको बहकाया ।।८७।।

देख दशाननके विक्रमको, इन्द्र अमर सब भागे ।
टिक सकते क्या कभी वन्य पशु, बली सिंहके आगे ।।
होकर कुपित इन्द्रने उस पर, लाखों बाण चलाये ।
पर उसके बाणोंसे दशमुख, नहीं लेश घबराये ।।८८।।

जान असाध्य अन्य शस्त्रोंसे, अग्नि विशिष्ट चलाया ।
रावणने जल बाण छोड़कर, क्षणमें उसे बुझाया ।।
तामस बाण छोड़ सुरपतिने, फैला दिया अन्धेरा ।
दिखता था उस समय नही, कि यह तेरा-यह मेरा ।।८९।।

तब रावण ने फेंका सत्वर, तेज प्रकाशक निज शर ।
तिमिर हो गया दूर सर्वथा, मानों उससे डर कर ।।
नागबाण छोड़ा रावणने, मची सैन्यमें हल-चल ।
देख भयानकता नागोंकी, हुआ इन्द्र मन चंचल ।।९०।।

होता रहा युद्ध यों भीषण, नाना शस्त्रों द्वारा ।
रहे देखते देव गगनमें, कोई वहां न हारा ।।
निज निज गजराजो पर चढ़कर, बिकट समर वे फिरते ।
क्षय करते अपने विपक्षका, नहीं कालसे डरते ।।९१।।

गिरा महावतको, रावणने, उछल इन्द्र को पकड़ा ।
बड़ी कुशलता से पलभरमें, दृढ़ बन्धनमे जकड़ा ।।
इन्द्रजीतने भी जयन्तको, बांध लिया जब सत्वर ।
रावण बोला युद्ध बन्द हो, क्या करना अब लड़कर ।।९२।।

बजे दशाननकी सेनामें, अगणित ढोल नगारे ।
भूल गये जयसे समस्त श्रम, प्रमुदित मुखसे सारे ।।
लेके साथ इन्द्रको रावण, निज लंकामें आया ।
मिलकर सकल प्रजाने सुखसे, उत्सव वृहद् मनाया ।।९३।।

आकर भिन्न भिन्न देशोंसे, उससे भूपति मिलते ।
दशमुख-सूर्य देखके उनके, हृदय-कमल थे खिलते ।।
इन्द्र जनक 'सहस्रार' सदनमे, उदासीन हो रहता ।
आके रावणके समीपमें, इस विधि उससे कहता ।।९४।।

हे लंकेश, भाग्यशाली तुम, जीते रहो जगत में ।
पडा हुआ है इन्द्र यहां पर, सम्प्रति निकट विपद मे ।।
छोड दीजिये आप उसे अब, सेवक सदा तुम्हारा ।
है इस वृद्ध अवस्थामें वह, मेरा एक सहारा ।।९५।।

पूज्य आप चिन्ता न कीजिये, सब कुछ होगा सुखकर ।
मुझे इन्द्रसे प्रेम सर्वथा, आत्म बन्धुसे बढ़कर ।।
आप हमारे लिये तात-सम, सुखसे रहें यहां पर ।
सभी समान जानियें मनमें, या रथनूपुर जाकर ।।९६।।

होकरके सन्तुष्ट हृदयमें, बोला इन्द्र जनक तब ।
विनय आदि उत्तम गुण तुममें, आकर अहो वसे सब ।।
करके बन्धन मुक्त इन्द्रको, अपने पास बुलाया ।
इन्द्र, करो मत खेद चित्तमें, सर्व कर्म की माया ।।९७।।

पुण्य पापका खेल समझिये, निज जय और पराजय ।
दृष्टि दीजिये प्रभु-चरणोमें, है विचित्र कर्मोदय ।।
देकर प्रेमपूर्ण सान्त्वन वह, सादर किया रवाना ।
किन्तु विश्वके सत्य रूपको, सुरपतिने पहचाना ।।९८।।

मान-भंगका दुःख सर्वदा, देता उसको पीड़ा ।
देवों के सन्मुख आनेमे, आती उसको व्रीड़ा ।।
नही प्रेमथा निज नगरीसे, मुदित न था वह लख जन ।
प्रेत-भूमिसे भास रहे थे, उसको अपने उपवन ।।९९।।

नत मस्तक वह रहे सोचता, हुआ सर्व यह कैसे ?
फल पाता मनुष्य नित वैसा, कर्म करे वह जैसे ।।
राज-पाट भोग स्वतन्त्र हो, रहा शुभोदय जब तक ।
रह सकते है विपुल गगनमे, बादल सुस्थित कबतक ।।१००।।

धरा आज तक अन्य जनोने, मेरे चरणों मे सिर ।
कैसे करू प्रणाम आज मैं, अन्य मनुजको जाकर ।।
इन्द्रिय जन्य भोग तज सब मैं, साधू शिवपद प्यारा ।
हार-जीतका नही जहां पर, किंचिन्मात्र पसारा ।।१०१।।

विषयो मे आसक्त आज तक, मैं अपने को भूला ।
पाकर के सन्मान लोकका, हृदय कुसुम था फूला ।।
शत्रु नहीं है दशमुख मेरा, सुहद् सदन था आया ।
सोता था मै मोह नीद में, उसने मुझे जगाया ।।१०२।।

वह न हराता मुझे युद्धमें, मैं विरक्त कब होता ।
प्रगट न होता हृदय कूपमें, सदभावोंका स्रोता ।।
उसी समय जिनराज भवनमें, चारण मुनिद्वय आये ।
कर जिन प्रतिमाके शुभ दर्शन, हृदय कमल विकसाये ।।१०३।।

किया इन्द्र ने सविनय वन्दन, धन्य भाग्य निज माना ।
निश्चय किया छोड़ सब ममता, वनको ही अपनाना ।।
दिग्पालों सह उस सुरपतिने, ली जिनदीक्षा उत्तम ।
करने लगा घोर तप निशिदीन; होकर तनसे निर्मम ।।१०४।।

शुक्ल ध्यानकी प्रबल अनलमें, कर्म समूह जलाया ।
अजर, अमर, अविनाशी, अनुपम, सुखदायक पद पाया ।।
हे श्रेणिक, विज्ञोंका जीवन, होता विस्मयकारी ।
उनकी सुन्दर कथा विश्वमें, श्रोताको सुखकारी ।।१०५।।

❑ ❑ ❑

कर सुमेरु जिन-भवन वन्दना, आता था दशमुख गृह ओर ।
पूंछा उसने तब मरीचिसे, सुन स्वर बाजोंका घनघोर ।।
बोला सचिव केवली जिनकी, गंधकुटी है यहां पवित्र ।
भक्ति विवश धर्मार्थ शीघ्र ही, हुए अधिक सुरगण एकत्र ।।१०६।।

अनन्तवीर्य मुनिको उपजा है, विश्व प्रकाशक केवलज्ञान ।
पहुंचा दशमुख मुनि समीप तब, धरता मनमें उनका ध्यान ।।
सविनय अन्जलि जोड़ भावसे, धरा चरणमें उनके शीश ।
सुनने लगा धर्म वाणीको, उत्कंठासे लंकाधीश ।।१०७।।

पूंछा उसने विश्वनाथसे, भगवन् क्या है धर्म अधर्म ?
जान सकें जिससे जगतीमें, प्राणी सच्चे सुखका मर्म ।।
भूल धर्मको ही यह प्राणी, सहता रहता नाना त्रास ।
सत्य धर्मके बिना ज्ञानके, नहीं छूटता है भववास ।।१०८।।

करते दूर अज्ञता तुमको, बोले वे केवलि भगवान् ।
हे जीवो ! जीवों को जगमें, दुखदायक अपना अज्ञान ।।
कर पर में आसक्ति भयंकर, छोड़ बैठता शुभ आचार ।
इन्द्रिय विषय विवश होकरके, करता नाना अत्याचार ।।१०९।।

भक्ष्या-भक्ष्य भूल सब जाता, कैसे हो उसका उद्धार ?
लोक कार्य में फंसा रहे नित, आता लेश न आत्म विचार ।।
है लक्षण 'उपयोग' हमारा, हुई न इसकी शुद्ध प्रतीति ।
रागी, द्वेषी, मोही बनकर, करता रहता सतत अनीति ।।११०।।

सम्यग्दर्शन बिना कभी भी, आता नही दुखों का अन्त ।
उसके ही अभावमें अब तक, सहे जीव नित कष्ट अनन्त ।।
सत्य देव, गुरु, आगम श्रद्धा, कहलाता सम्यक्त्व पवित्र ।
इस गुणके प्रगटित होते ही, परम शांति पाता है चित्त ।।१११।।

नय, प्रमाण, निक्षेप सहित जब, हो जिनोक्त तत्त्वों का ज्ञान ।
टल अनादि अज्ञान भयंकर, हो उद्भव तब सम्यग्ज्ञान ।।
तज देता है सर्व परिग्रह, होकर आप निराकुल चित्त ।
होता है तप प्राप्त जीवको, सुखदायक सम्यक्चारित्र ।।११२।।

इस रत्नत्रय का आराधन, धरणी में है शिव-सुख का पंथ ।
कर्म नाशसे मोक्ष प्राप्त हो, आ जाता कष्टोका अन्त ।।
भूल धर्म को तन सुखार्थ, जग करता है बहुधा व्यापार ।
होता नही किन्तु उससे कम, जन्म मरणका भीषण भार ।।११३।।

धर्माराधन द्वारा मानव, पाता जगमे सौख्य विशेष ।
क्षणभर में मिट जाते सारे, कर्म-जन्य उसके सब क्लेश ।।
हुए साधु कितने ही मानव, ममता का बन्धन दृढ तोड ।
हुए देश संयम धारक वे, नही सके गृहस्थाश्रम छोड ।।११४।।

कहा किसी पति ने दशमुखसे, है रावण क्या आप विचार ।
अधुना करो त्याग तुम भी कुछ, महा कठिन मानव अवतार ।।
पाकर इसे नहीं करते जो, यथाशक्ति पर प्रत्याख्यान ।
वे मानव भूभार रूप हैं, तथा अज्ञ तिर्यंच समान ।।११५।।

करूं यहां मैं नियम कौनसा, व्रत न पालने की है शक्ति ।
बनी हुई है पूर्व कर्म वश, मेरी भोगो में आसक्ति ।।
है मुनिव्रत अत्यन्त कठिन तर, अग्निज्वाल के पान समान ।
इस व्रतको धारण करते हैं, जगमें विरले ही बलवान ।।११६।।

कामदेव के सदृश सर्वथा, मेरा है सुन्दर आकार ।
कौन कामिनी कर सकती है, मेरी इच्छाका परिहार ?
सोच यही बोला वह रावण, हे भगवन् अनुपम बड़भाग ।
चाहे जो न कामिनी मुझको, करता मै उसका परिहार ।।११७।।

बलात्कार मैं नहीं करूगा, बोला कुम्भकर्ण तब तन्त्र ।
चार शरण आधार मुझे हैं, जगतीमें जो महा पवित्र ।।
कर जिनेन्द्र की पूजा विधिवत, दे मुनियों को शुभ आहार ।
तत्पश्चात करूंगा सुख से, भक्ष्य वस्तुका अल्पाहार ।।११८।।

श्री हनुमान, बिभीषण ने भी, देशविरति ली प्रभुके पास ।
अल्प मात्र भी विरति नियम नित, करता है कर्मोंका ह्रास ।।
सुन हनुमान नाम श्रेणिकने, पूंछा उसका दिव्य चरित्र ।
हे भगवन उस भाग्यवानने, किया कौन-सा वंश पवित्र ।।११९।।

इसका विमल चरित सुननेको, अति आतुर है मेरे कान ।
संशय-तिमिर दूर करते सब, बोले श्रीगौतम भगवान् ।।
गिरि विजयार्द्ध नाम श्रेणीमें, है आदित्य नगर सुख धाम ।
खेचर पति प्रह्लाद वहां थे, केतुमति रानी सुललाम ।।१२०।।

रूप, कला, विनयादि गुणो युत, था उसके सुत वायुकुमार ।
धन्य मानते वे अपने को, देख पुत्र को बारम्बार ।।
इस विशाल धरिणी के ऊपर, है महेंद्रपुर नगर विशाल ।
श्री महेद्र अधिपति उस पुरके, थे रिपुओंके काल कराल ।।१२१।।

सती हृदयवेगा महिषी थी, अरिंदमादि थे इक शत पुत्र ।
एक अन्जना कन्या नृपके, उसमे रूप हुआ एकत्र ।।
अङ्ग अङ्ग की उसकी सुषुमा, देख जगतजन करे विचार ।
अन्य नारियों को ब्रह्माने, रूप दिया है, इसे निहार ।।१२२।।

यौवनवय मे देख सुताको, चिन्तित मन में हुए खगेर ।
बुला सर्व सचिवों को बोले-सुता योग्य है कौन नरेश ?
देकर उसे सुता मै अपनी, होऊं गृह-चिन्ता से मुक्त ।
योग्य स्थान में कन्या देना, जनक योग्य है कार्य प्रशस्त ।।१२३।।

कहने लगा अमर सागर तब, सुता योग्य वर है लंकेश ।
देनेसे निज सुता उसे यह, होगा दृढ़ सम्बन्ध विशेष ।।
बोला वहाँ अन्य मन्त्री यों, रावणके बहु नारी समाज ।
देने से उसको कन्याको, नहीं सधेगा अपना काज ।।१२४।।

है हिरण्यप्रभके सुन्दर सुत, शूर-वीरता का भण्डार ।
दीजे सुता प्रेमसे उसको, होगा सुख प्रपूर्ण संसार ।।
बोला अन्य सचिव यो सत्वर, विद्युत्प्रभ यद्यपि गुणखान ।
लेकिन उसके हृदय कमलमें, बसा हुआ है शुभ निर्वाण ।।१२५।।

नहिं जाने कब राज पाट तज, बन जायेगा वह निर्ग्रन्थ ।
योग, भोग के इस जगती मे, भिन्न भिन्न रखते हैं पन्थ ।।
है प्रह्लाद पुत्र पवनंजय, सर्व भाति कन्या अनुरूप ।
राजनीतिमे महादक्ष वह, मदन समान मनोहर रूप ।।१२६।।

एक समय कैलाश गये थे, जिन वन्दन करने प्रह्लाद ।
कर दर्शन प्रभु के भावों से, आया उनको अति अह्लाद ।।
मिले महेन्द्र वही पर उनको, पूछा सकल कुशल वृत्तांत ।
पूंछा तब प्रह्लाद भूपने, देख वदन कुछ चिन्ता क्रान्त ।।१२७।।

❑ ❑ ❑

चिन्तातुर दिखते हो क्यों तुम ? शान्त भूमि मे मेरे मित्र ।
कहो मानसिक चिन्ता मुझसे, नहीं योग्य है चिन्ता अत्र ।।१२८।।

देव, अन्जना आत्म सुता है, रूपवती अतिशय सुकुमार ।
पवनजय के लिये मित्रवर, करे आप उसको स्वीकार ।।
दोनो हैं सम्पन्न कला से, दोनों ही हैं रूप निधान ।
उत्तम वर मिलता है तब ही, हो शुभ दैव यदी बलवान ।।१२९।।

बोले तब प्रह्लाद प्रेमसे, सखे, तुम्हारा वचन प्रमाण ।
अस्वीकृत कर नहीं चाहता, सम्प्रति निज प्रियका अपमान ।।
इससे त्वरित उभय पक्षो में, व्याप गया आनन्द अपार ।
योग्य हुआ सम्बन्ध, मनुज यह, करे प्रशंसा बारम्बार ।।१३०।।

मानसरोवर के तट पर ही, निश्चित हुआ ब्याह का काम ।
इसी कार्य के लिये उन्होंने, किये सुसज्जित निज निज धाम ।।
सुन कन्या की रूप प्रशंसा, मन में वह पवनंजय वीर ।
लखने उसकी रूप मधुरता, तत्क्षण अतिशय हुआ अधीर ।।१३१।।

लज्जावश परिवार जनों से, कर न सका निज मनकी बात ।
कहा प्रहस्त मित्रसे उसने, सुख मुझको उपजे साक्षात ।।
मित्र दिखादो उस बाला को, देख हृदय हो मेरा शान्त ।
करो उपाय शीघ्र ही ऐसा, ज्ञात न हो परको वृत्तान्त ।।१३२।।

देख मित्र की आतुरता को, बोला उससे मित्र प्रहस्त ।
करें खेद मत आप हृदयमे, होगी इच्छा पूर्ण समस्त ।।
सुनकर सुहृद सान्त्वना वाणी, पवनंजय मन हुआ प्रसन्न ।
दोनो मिलकर निशा समय में, गये अन्जना गृह प्रच्छन्न ।।१३३।।

एक ओर छिपकर पवनंजय, लगे देखने कन्या रूप ।
होते थे प्रसन्न वे मनमे, लोभी ज्यों पाके धन-कूप ।।
बोली सखी अन्जनासे तब, सखी तुम्हारा भाग्य अपार ।
तुम्हे मिला है जीवन साथी, गुणी, बली श्री वायुकुमार ।।१३४।।

रहकर प्रिय-सह तुम भोगो की, सदा सुख स्वर्गों के भोग ।
जन्मान्तर के कोटि शुभो से, मिलता है ऐसा सयोग ।।
लज्जा वश वह राजकुमारी, बोली नहीं वदन से बैन ।
किन्तु प्रशंसा सुनकर पतिकी, हर्षित हुआ हृदय सह नैन ।।१३५।।

कहने लगी मिश्रकेशी तब, विद्युत्प्रभ जग मे बलवान ।
हो विवाह इसका जो उससे, तो हो जीवन सफल महान ।।
हे वसन्तमाले ! विद्युत्प्रभ, और पवन मे भेद अपार ।
उदधि और गोष्पदका अन्तर, क्या न जानता है संसार ।।१३६।।

गिने न जा सकते ज्यों नभके, विद्यमान अगणित नक्षत्र ।
विद्यमान त्यों विद्युत्प्रभमें, सभी नरोचित गुण सुपवित्र ।।
होगा मुनि सत्वर विद्युत्प्रभ, तेरे सुख का कर सुविचार ।
किया नहीं सम्बन्ध जनकने, है इसका दुःख मुझे अपार ।।१३७।।

अल्पकाल भी उस नृप सुतका, था सुखमय सुन्दर संयोग ।
नहीं योग्य है क्षुद्र मनुजका, दीर्घकाल तकका भी योग ।।
सुन अपमान जनक वचनोंको, कुपित हुआ वह वायुकुमार ।
अरे! मित्र इस गृह आने में, की है मैंने भारी भूल ।
सुनती रही दुष्ट यह बाला, मेरी निन्दा बन अनुकूल ।।१३८।।

निन्द्य वचन बोले इसकी सखि, सुनें अन्जना यों चुपचाप ।
इन दोनोंका वध करनेसे, नहीं लगेगा मुझको पाप ।।
इसका नही प्रेम है मुझ पर, विद्युत्प्रभ की मन में चाह ।
चलो यहां से शीघ्र सदन पर, नहीं करूंगा मैं अब ब्याह ।।१३९।।

देख मित्रको रोषातुर यो, बोला मुख से सखा प्रहस्त ।
अन्य भवन आ क्रोधित होना, नहीं मित्रवर तुम्हें प्रशस्त ।।
अबलाओ का वध करने से, देगा तुम्हें विश्व धिक्कार ।
नहीं योग्य यह कार्य यहां पर, करिये मनमें तनिक विचार ।।१४०।।

प्रबल शत्रुओ पर पडते हैं, जग मे वीरो के हथियार ।
करो न अबला हत्या द्वारा, मित्र, मलिन अपनी तलवार ।।
नही दोष कन्या का उस में, व्यर्थ आपका उस पर कोप ।
होगा गृह पर ही विचार सब, हो न वंश पद्धतिका लोप ।।१४१।।

समझाने से मित्र सहित झट, पवनंजय आया स्वस्थान ।
बोले कुपित कण्ठ से सबसे, करो यहां से अब प्रस्थान ।।
नहीं करूंगा मै विवाह अब, सुता हृदय जब है पर ओर ।
सुनती रही शान्त मम निन्दा, दिखती इससे अति कठोर ।।१४२।।

मचा विकट कोलाहल क्षणमें, सुनी सर्व बाला ने बात ।
हुई व्यथित अतिशय वह मनमे, हुआ हृदयमें अशनि निपात ।।
देने लगी दोष वह विधिको, कैसा दुख आ पडा अपार ।
कटुक भाषिणी दुष्ट सखीको, देती हुई सतत धिक्कार ।।१४३।।

तेरी वाणी ने ही सम्प्रति, मचा दिया भीषण उत्पात ।
दु:ख निशा हो दूर शीघ्र ही, कैसे प्रगटे सौख्य प्रभात ?
विकसित उस हृदयार विन्द पर, पड़ा भयंकर विकट तुषार ।
लज्जावश कुलवंती सुतावर, करे न मुखसे शब्द उच्चार ।।१४४।।

❑ ❑ ❑

(सर्ग ५)

लगे पूछने मनुज परस्पर, क्यों कुमार करते प्रस्थान ।
अविवाहित जाते क्यों सम्प्रति? आया कोई विघ्न महान ।।
हंसता हुआ बोलता कोई, पवन तुल्य यह पवनकुमार ।
गुप्त नहीं उसकी चंचलता, प्रगट जानता है संसार ।।१।।

रूपवती कन्या को तजकर, व्यर्थ जा रहा है वह गेह ।
है अनभिज्ञ जगत सुखसे नित, नहीं इसे बाला से नेह ।।
कन्या जनक महेन्द्र वेग से, आया पवन पास सुन वृत्त ।
नाना शंकाओ से आकुल, था भूपतिका तत्क्षण चित्त ।।२।।

हे कुमार क्या आप कर रहे, नही हमारा कुछ भी दोष ।
पाणि ग्रहण कीजिये सुखसे मान पिताका वचन अदोष ।।
होते वचन अमिट गुरु जनके, मान, पवनने किया विवाह ।
नहीं किन्तु उसके मनमे था, सुखद कार्यमें कुछ उत्साह ।।३।।

कर विवाह उससे कुमारने, किया न अपना प्रेम प्रदान ।
छोड़ा सती अन्जनीको यो उसने भीषण व्याधि समान ।।
मुखसे वचन न बोले उससे, वह बोले तो करता रोष ।
पूर्व पाप वश भोगे चेतन, जगमे हाथ पराये दोष ।।४।।

देख न पतिकी कृपा दृष्टिको, शुष्क-लता सम हुआ शरीर ।
विरहानलसे तन जलता था, आंखोंसे बहता था नीर ।।
मना चुकी बहु वार नाथको, पर न हुआ वह लेश प्रसन्न ।
इस दु:खसे उस राजसुताको, नहीं सुहाता था शुभ अन्न ।।५।।

❑ ❑ ❑

रावण का आदेश, न मानें वरुण गगनचर ।
लंकापति ने आत्म-दूत, भेजा तब सत्वर ।।
बोला वह-हे वरुण, शरण लो तुम रावण की ।
अथवा सत्वर करो, निकट तैयारी रण की ।।६।।

आ, आ उसको नमे, आज जग के विद्याधर ।
मिला नहीं क्या समाचार, तुमको यह सुखकर ।।
कर प्रणाम सानन्द सौख्य, तुम भोगो दूना ।
चल विरुद्ध तुम नहीं, घाव पर सींचो चूना ।।७।।

इन्द्र और यम आदि, वीरवर जीते उसने ।
उसका भयप्रद नाम, सुना नहिं जगमे किसने ?
हसा, वरुण उस समय, दूतकी वाणी सुनकर ।
सुना न देखा कभी, आज तक रावण का घर ।।८।।

कहो कौन-सी दिशा, मध्य उसका है रहना ।
मानूं मैं उन्मत्त तुल्य, मेरा सब कहना ।।
यहाँ नहीं वह इन्द्र और, यम भी मत जानो ।
आकर रण मे शीघ्र, वर्ण को तुम पहिचानों ।।९।।

वह अभिमानी बना, दिव्य रत्नों को पाकर ।
यदि कुछ है सामर्थ, यहा बतलावे आकर ।।
नहीं देखता गरुड़, तभी तक भीषण फणिधर ।
कौन बली है उसे, ज्ञात होगा अब डटकर ।।१०।।

कहा सकल वृत्तांत, दूतने आकर सारा ।
नही मानता नाथ ! वरुण आदेश तुम्हारा ।।
सागर सी सुविशाल, सैन्य ले रावण धाया ।
पुरके चारो ओर, मनुज मय जाल बिछाया ।।११।।

नगर घिरा अवलोक, वरुणके योधा आये ।
करके कठिन प्रहार, दशानन सुभट भगाये ।।
निज सेना को हटी देख, दौड़ा तब रावण ।
भुजबल से मैं करूं, शत्रुका शीघ्र निवारण ।।१२।।

आ पहुंचा विकराल, वरुण शस्त्रों सह रण में ।
हुआ घोर संग्राम, वरुण-मानो-रावण में ।।
वरुण पुत्र ने पकड़ लिया, रण में खरदूषण ।
रावण के संग्राम, देहका था जो जीवन ।।१३।।

रोक दिया संग्राम, शीघ्र ही तब रावणने ।
व्याकुलता उत्पन्न हुई, अति उसके मनमें ।।
भेज दूत सर्वत्र, नृपति समुदाय बुलाया ।
एक दूत प्रह्लाद, निकट चल सत्वर आया ।।१४।।

लका पति का पत्र, दिया झुक करके करमें ।
आयें अपना सैन्य, साथ ले आप समरमें ।।
अधम वरुण आदेश, हमारा लेश न माने ।
जग में सच्चा शूरवीर, अपने को मानें ।।१५।।

खरदूषण को पकड़ लिया, है जीवित उसने ।
मृत्यु-भीति से रोक, दिया रण सम्प्रति हमने ।।
चलने को प्रह्लाद हुआ, सेना सह प्रस्तुत ।
बोला पवनकुमार, विनय से हो करके नत ।।१६।।

रहते मुझ-सा पुत्र, आपका जाना अनुचित ।
दे मुझको आदेश, युद्ध के लिए यथोचित ।।
दिखलाऊं मैं देव, आपको आत्म पराक्रम ।
सिह पोत क्या कभी, जगत में ही उससे कम ।।१७।।

गुरुजन की आशीष, प्राप्त कर, वह था प्रमुदित ।
देख रही थी उसे अन्जना प्रेम प्रपूरित ।।
बोले पवनकुमार, देखती क्या तू मुझको ।
रोम रोम में लगे आग, लख करके तुझको ।।१८।।

हे दुरीक्षणे दुःख, रूप है तेरा दर्शन ।
देख तुझे हो रहा, मुझे सम्प्रति हा ! अशकुन ।।
सहकर निज अपमान, अन्जना बोली मुख से ।
हे स्वामिन जल रही, हृदयमें मैं अति दुःख से ।।१९।।

दर्शन करके सदा, तृप्त रहता था यह मन ।
दूर जा रहे आप, जायेंगे कैसे मम क्षण ।।
आप मुझे जब तजें, मरण ही मुझे शरण है ।
नाथ प्रेम बिन सदा, व्यर्थ नारी जीवन है ।।२०।।

बोला कुपित कुमार, घृणा से मुख टेढ़ा कर ।
मुझे प्रयोजन नही, कही भी तू जाकर मर ।।
लंकापति के निकट चला, वह सेना लेकर ।
निशा समय विश्राम, जहां है मानसरोवर ।।२१।।

सुन वियोगिनी चकवी की, आवाज पवनंजय ।
समझ सके वह सती, अन्जना का दुख अतिशय ।।
है चकवी निज नाथ, विरह से व्याकुल भारी ।
होगी कितनी दुखित, हृदय मे मेरी नारी ।।२२।।

प्रिय-वियोग सह सके, न खगगण भी जगमें जब ।
प्रेम-मूर्ति वह रम्य, कामिनी उसे सहे कब ?
निरपराधिनी राजसुता को, मैंने छोड़ा ।
क्रूर हृदय हो सब प्रकार से, नाता तोड़ा ।।२३।।

कटुक वचन उस समय, न उसने लेश उचारे ।
करते दुःख प्रद कार्य, अज्ञ जन बिना विचारे ।।
क्रोधित होकर दिया उसे, मैने अतिशय दुःख ।
करू प्रेम भरपूर, मिल जाये उत्तम सुख ।।२४।।

बुला मित्र को कहा, चित्त का सर्व शुभाशय ।
प्रिया बिना है मित्र, आज जीवन शकामय ।।
बोला मित्र प्रहस्त, गुप्त हो सत्वर चलिये ।
आकर प्रात:काल यहा, फिर सबसे मिलिये ।।२५।।

पहुचे पवनकुमार, सती के दिव्य भवन मे ।
देख अचानक हुई, अन्जना प्रमुदित मन मे ।।
आखों मे भर नीर, स्नेह से शीश नमाया ।
दे उच्चासन विनयसहित, निज पास बिठाया ।।२६।।

पवनंजय सप्रेम उसे, देकर आलिंगन ।
क्षमा करो हे प्रिये ! दुखाया मैंने तब मन ।।
परकृत सारा दोष, भूलसे तुम पर डाला ।
तुम तो हो निर्दोष, पुनः पवनंजय बोला ।।२७।।

सती कहे हे नाथ, कर्मवश ही दुःख आता ।
जब दुष्कृत हो अल्प, जीव पाता है साता ।।
नहिं स्वामिन् अपराध, आपका मेरा सारा ।
धन्य धन्य मैं आज, दुःख का भार उतारा ।।२८।।

पाकर दर्शन नाथ, आपका हर्षित है मन ।
भाता मन में मोद नहीं, इससे पुलकित तन ।।
सुख से जगत रहे, रात भर नींद न आई ।
मानों अद्भुत वस्तु, आज दोनो ने पाई ।।२९।।

अपना अपना हृदय, रहे वे खाली करते ।
करके मधुरालाप, प्रेम मन में थे भरते ।।
निशा अन्त मे उन्हें, अल्प निद्रा ने घेरा ।
आकर मित्र, प्रहस्तवीर ने उनको टेरा ।।३०।।

उठो मित्र इस भांति, रहोगे कब तक सोते ?
जाना है लंकेश, निकट अवसर क्यो खोते ?
लेकर प्रभु का नाम, उठा वह शय्यापर से ।
बोली तब वह सती, लोक निन्दा के डर से ।।३१।।

मेरा है ऋतु समय, रहेगा गर्भ सुनिश्चित ।
माताजी से गुप्त मिलन, यह कीजे प्रगटित ।।
दीर्घ दृष्टि हैं आप, कीजिये शीघ्र यथोचित ।
बिना प्रगट यह लोक, करेगा बाते अनुचित ।।३२।।

बोले वे हे प्रिये, चित्त में धीरज धारो ।
सम्प्रति माता पास, न जाना योग्य हमारो ।।
पहनो मेरी नाम-मुद्रिका अपने कर में ।
हुआ कष्ट सब दूर, मुदित तुम रहना उर में ।।३३।।

मेरे करके कड़े निकट में, अपने धरियो ।
रखना प्रभु में चित्त, लोक से तुम मत डरियो ।।
प्रिया सखी को बुला, प्रेम से बोले उससे ।
करना वैसा काम सौख्य, हो इसको जिससे ।।३४।।

आने का वृत्तान्त सभी, माता से कहना ।
अपनी स्वामिनि साथ, सर्वदा सुथ से रहना ।।
आऊंगा मैं शीघ्र युद्ध में, विजय प्राप्त कर ।
पहुंचे मानस तीर, यानमें सत्वर चढकर ।।३५।।

यह सयोग-वियोग, कर्म के द्वारा होता ।
मूर्ख जीव उस समय, मुदित होता यो रोता ।।
दोनो शाश्वत नहीं, पलटते, रहते सुख-दुःख ।
रहता है विद्वान् इसी से, पाप पराङ् मुख ।।३६।।

देख गर्भ के चिह्न, अन्जना के शुभ तन पर ।
लगी पूछने सास कार्य, किसका यह दुखकर ।।
कर प्रणाम वृत्तांत, गर्भ का उसे सुनाया ।
केतुमती को लेशमात्र, विश्वास न आया ।।३७।।

हो अतिक्रोधित बोल उठी, वह निष्ठुर वाणी ।
किन कानों से सुनूं, तुम्हारी पाप कहानी ।।
किया कलंकित शुभ्र वश, तूने अब मेरा ।
क्षण भर भी मुख नहीं, देखना चाहूँ तेरा ।।३८।।

दिखलाई पति-दत्त, सास को सर्व निशानी ।
तो भी उसकी बात, सत्य लवलेश न मानी ।।
तेरे लिये न ठौर, आज से राज-सदन मे ।
करके यह दुष्कृत्य, लगादी आग भवन मे ।।३९।।

सखी सहित तू निकल, बास कर मातृ भवन मे ।
रहना तेरा पापरूप है, पुर उपवन में ।।
रथ मे उसको बिठा, नगर से किया रवाना ।
सौ सौ खाई शपथ, किन्तु नहिं उसने माना ।।४०।।

पिता नगर के निकट, छोड़कर बोला किंकर ।
पराधीनता विवश, कर रहा मैं यह दुष्कर ।।
मान स्वामिनी वचन, छोड़ता हूँ इस वन में ।
होता है विकराल, कष्ट पर मेरे मन में ।।४१।।

क्षमा करो तुम मुझे, पूर्व कृतका है यह फल ।
कीजे प्रभु का ध्यान, चित्त में अपने पल पल ।।
राज सुते, मत करो शोक, धीरज तुम धरना ।
दुख से होकर व्यथित, घात मत अपना करना ।।४२।।

देख आपकी दशा, कष्ट होता है भारी ।
क्या दुख के ही लिये, जन्म धरती है नारी ।।
छोड गया असहाय, विपिन में उसको अनुचर ।
आई तब वह सती, जनक-गृह पैदल चलकर ।।४३।।

सुन सारा वृत्तान्त, हुआ नृप लज्जित भारी ।
बोल उठा सक्रोध, नहीं वह सुता हमारी ।।
सखी सहित इस समय, द्वार से इसे निकालो ।।४४।।

समझा, समझा थकी, सखी नृप लेश न माना ।
जननी ने भी उचित, न समझा उसे बसाना ।।
देता था धिक्कार उसे, सारा ही परिजन ।
जान सका नहिं कोई, मनुज उसका पावन मन ।।४५।।

मिला नही जब उसे, पिता के घर ही आश्रय ।
दे सकता तो कौन, उसे अवलम्बन निर्भय ।।
सबने ही पाषाण, हृदय हो उसे विसारा ।
पर दुःखको अवलोक, न निज कर्तव्य विचारा ।।४६।।

❑ ❑ ❑

मिला न उसको जब नगरी में, न्याय चित्त कोई आधार ।
गई राजबाला तब बन में, देती कर्मों को धिक्कार ।।
नलिनी दल सम मृदुल पदों में, चुभते थे पथके पाषाण ।
बह उठती थी व्यथासहित तब, वहां रुधिरकी धार महान ।।४७।।

तब वसन्तमाला समझाती, करो न तुम मनमें दुःख लेश ।
सरित पूर सम चला जायगा, दो दिनका मानों यह क्लेश ।।
मैं हूं तेरे साथ सर्वदा, लो मुखसे जिन प्रभु का नाम ।
अशुभ बन्ध होता है भारी, हो जब क्लेश पूर्ण परिणाम ।।४८।।

देख विपिनकी विपुल गहनता, व्याकुल हृदय हुआ अत्यन्त ।
यत्र-तत्र दिखते थे उसमें, सिंहादिक पशु क्रूर अशांत ।।
शनैः शनैः चलकर वे दोनों, आई एक गुफा के द्वार ।
बैठी वहां अन्जना श्रम वश, था मनमें दुःख पारावार ।।४९।।

उसी समय दृग् पथ मे आये, ध्यान-स्थित योगीन्द्र महान ।
भूल गई वह अपने दुःखको, था उनका दर्शन बलवान ।।
जा समीप में भक्ति भाव से, दे प्रदक्षिणा, किया प्रणाम ।
भगवान क्षेम कुशल तो हो तुम, आप विश्वमे तपके धाम ।।५०।।

अमृत-तुल्य वचन मुनि बोले, सुख-दुख सभी कर्म अनुसार ।
अपने कर्म विवश ही चेतन, भ्रमता रहता है ससार ।।
व्यथित न बाले, तू मन में, हो, प्रभु स्मरण कर बारम्बार ।
धीरज धर, तेरा अवश्य ही, दुःखों से होगा उद्धार ।।५१।।

बोली वह बसन्तमाला झट, प्राप्त हुआ क्यों यह सन्ताप ।
पूर्व-जन्ममें भगवन् इससे, हुआ कौन-सा भीषण पाप?
जिन-प्रतिमाका पूर्व जन्म मे, किया अन्जना ने अपमान ।
उसी कर्म के फलसे इसको, प्राप्त हुआ यह कष्ट महान ।।५२।।

पटरानी पद पा परभव मे, कर उस पदका मान कराल ।
सोतों पर क्रोधित हो गृह से, जिन प्रतिमाको दिया निकाल ।।
भोजन समय आर्यिका कोई, आ पहुंची गृह में तत्काल ।
चली गई आहार बिना ही, सुन लोगोंके मुख दुख हाल ।।५३।।

देख तुझे उपदेश दिया कुल, जिन-प्रतिमाका कर अपमान ।
प्रगट किया है तूने अपना, अन्तरङ्गका तम अज्ञान ।।
पटरानी पद पाकर के यह, मत निकाल यो तू जिनमूर्ति ।
प्रसरित होगी धर्मज्ञों मे, जगह जगह तेरी अपकीर्ति ।।५४।।

विपुल पुण्य से मिले जीवको, कभी कभी शुभ मनुज शरीर ।
क्यों अपने हाथों के द्वारा, मोल ले रही है भव-पीर ।।
देव, शास्त्र, गुरु का अविनिय है, मोह कर्म का प्रबल निमित्त ।
क्या अनर्थ कर डाला मदमें, होकर रोष विविश उन्मत्त ।।५५।।

सावधान हो तुरत हृदय मे, करके श्रवण आर्थिक बोध ।
पुनः प्रतिष्ठित की जिन प्रतिमा, दूर किया सब वैर विरोध ।।
तीव्र प्रमाद विवश जो तुझसे, हुआ भयङ्कर था यह पाप ।
उसका बारम्बार खेद युत, किया हृदय से पश्चाताप ।।५६।।

स्वर्गलोक पाया तब तूने, श्री सर्वज्ञ धर्म को पाल ।
च्युत हो हुई महेन्द्र बालिका, मिला विभव सब ही सुविशाल ।।
पापोदय वश रहा निरन्तर, तुझे नाथ का महा वियोग ।
स्वस्थ चित्त भज प्रभु को बाले, नदी नाव का यह संयोग ।।५७।।

हुई स्वान्त मे शान्त अंजना, करके मुनि बोधामृत पान ।
मुनि भी गगन मार्ग से सत्वर, सूर्य तुल्य कर गये प्रणाम ।।
अब वे दोनों भवन वासिनी, करे कन्दरा मे निज वास ।
कठिन चित्त कर लिया उन्होंने, सहे सभी आगत दुख त्रास ।।५८।।

देख सका रवि दुःख न उसका, गया शीघ्र अस्ताचल आप ।
प्रगटित हुई तिमिर मय रजनी, मानों देने को सन्ताप ।।
जहां तक भी घातक पशुगणसे, सब प्रकार वन था विकराल ।
गुहा द्वार पर आया मृगपति, जो मानव जीवन का काल ।।५९।।

लाल लाल दृग उसके भीषण, चमक रहे अङ्गार समान ।
देख अंजना उसे द्वार पर, समझा अपने को गत प्राण ।।
तज बैठी आहार नियम ले, जपती प्रभु का नाम अपार ।
सखि बसन्तमाला निज कर में, खड़ी हो गई ले तलवार ।।६०।।

निश्चय उसने किया हृदय में, रक्षा यहां करूंगी आज ।
इस कृपाण के रहते करमें, क्या कर सकता है वनराज ?
देख रहा था दृश्य दुःखद यह, गुफा निवासी सुर मणिचूल ।
बोली देव-कामिनी उससे, क्यों कर्तव्य रहे हो भूल ।।६१।।

ये भयभीत सिंह से सम्प्रति, कीजे सत्वर इनका त्राण ।
यम समान भक्षण करने को, आ पहुंचा केहरि बलवान ।।
तब करुणार्द्र देव ने तत्क्षण, धर कर अष्टापद आकार ।
किया युद्ध केहरि से भीषण, होता था तब शब्द अपार ।।६२।।

धरती हुई अंजना मन मे, श्री जिनेन्द्र प्रभुवर का ध्यान ।
पुनः पुनः व्याकुल हो उठती, सखी देखकर सिंह महान ।।
क्षण भर में उस अष्टापद ने, मार भगाया सिंह कराल ।
स्वप्न समान सिंह, अष्टापद, चले गये दोनों तत्काल ।।६३।।

जाते ही कुछ निशा, विपिन में, दिया सुनाई मधुमय गान ।
जिसको सुनकर के वे दोनों, हुई हृदय मे मुदित महान ।।
बोली सखी किसी सुरवर ने, आज बचाये अपने प्राण ।
उस ही द्वारा किया जा रहा, भक्तिभावसे श्री जिन गान ।।६४।।

पुण्यवान जीवों के जग में, सुर तक करते हैं दुख दूर ।
है तेरी सुकुक्षि में कोई, दिव्य पुण्य से अति भरपूर ।।
साधु वचन होते ना मिथ्या, कर उन पर पूरा विश्वास ।
अल्प समय में ही हे स्वामिनी, दूर समझिये अपना त्रास ।।६५।।

श्री मुनिसुवृत बिम्ब वहा रख, करें प्रार्थना वे सानन्द ।
प्रभु आराधन से जाते है, जीवों के भीषण दुख द्वन्द ।।
तरु-पत्रो की मृदुल सेज पर, जन्मा सुत आदित्य समान ।
देख अजना क्षणभर उसको, पंकज तुल्य हुई अम्लान ।।६६।।

बार बार उसको विलोकती, भूल गई अपन दुख शोक ।
हुआ हृदयमें खेद किन्तु कुछ, नही उपस्थित परिजन लोक ।।
यहि होता है पुत्र सदन तू, होता जन्मोत्सव सर्वत्र ।
मन्द भागिनी आज अकेली, मौन मनाती उत्सव अत्र ।।६७।।

चिरजीव हो हे सुत मेरे, तू मेरे प्राणो का प्राण ।
तेरे ही प्रभाव से वन मे, मुझे मिला है जीवित दान ।।
कहने लगी सखी सुन्दर शुभ, प्रेम वचन उसके अनुकूल ।
अहो! मनाने ही जन्मोत्सव, विकसित दिखते हैं वन फूल ।।६८।।

देख सामने कमलों पर ये, मधुप कर रहे हैं गुंजार ।
मानों यह वन सुतोत्पत्तिका, व्यक्त कर रहा हर्ष अपार ।।
हिल हिल करके वन्य लतायें, क्षण क्षण में करती हैं नृत्य ।
मना रही है प्रकृति महोत्सव, शेष रहा क्या कोई कृत्य ।।६९।।

एक दिवस गगनस्थ यान लख, हुई अंजना शंकित आप ।
शत्रु पुत्र को हरने आया, या देने आया सन्ताप ।।
करने लगी विलाप मृगी सम, सुन उसको तत्काल खगेश ।
त्वरित उतर आया विमान से, लख न सका अबलाका क्लेश ।।७०।।

यह नारी किसकी कन्या है ? किस कारण है यहां निवास ।
कहो सखी निशंक वृत्त सब, रखकर मुझ पर विश्वास ।।
तब वसन्तमाला बोली यों, भर कर आंखों में बहु नीर ।
हे राजन् सारे ही प्राणी, कर्म-विवश पाते है पीर ।।७१।।

क्या हम अपनी कथा सुनायें, यह महेन्द्र कन्या सुकुमार ।
रहकर इस विकराल विपिनमें, सहती है दुख सभी प्रकार ।।
कहा सभी वृत्तान्त खेद युत, हुआ इसी वन में यह पुत्र ।
मै इसकी सेवा मे रह कर, मानूं अपने को सुपवित्र ।।७२।।

सुनकर सारी कथा प्रेम से, बोला विद्याधर इस भाति ।
लेश मात्र चिन्ता न करो अब, धरो हृदय मे सुखसे शान्ति ।।
मै 'प्रतिसूर्य-हनूरुह अधिपति, नही सका तुमको पहचान ।
सती अंजना भगिनि-सुता मम, सुन वृत्तान्त हुआ यह ज्ञान ।।७३।।

पा मातुल को कष्ट समय में, उभरा आया मन का शोक ।
इष्ट जनो के सन्मुख अपना, रोक न सकता दुखको लोक ।।
रानी की आंखो से भी तब, हुआ खेद से जल का पात ।
जैसे पर्वत मेरू गिराता, वर्षा ऋतु में नीर प्रपात ।।७४।।

बोल तब प्रतिसूर्य शान्ति से, वत्से, चलो हनूरुह द्वीप ।
वही करेंगे जन्मोत्सव हम, जला कनकमय सुन्दर दीप ।।
भाग्यवान् यह पुत्र तुम्हारा, समझो अब कष्टों का अन्त ।
अल्प समय में तुम्हें ढूंढता, अयेगा तब सन्निधि कन्त ।।७५।।

बैठ सभी ने तब विमान में, किया हनूरुह प्रति प्रस्थान ।
खेल रहा था उसमें बालक, शोभामय, द्युति बल की खान ।।
उछल अंजना की गोदी से, गिरा शैल पर वह सुकुमार ।
क्षणभर में मच गया गगन में, हृदय विदारक हा-हाकार ।।७६।।

करने लगी विलाप अंजना, जाता देख आत्म आधार ।
पृथिवी तल पर आये सत्वर, मातुल करते खेद अपार ।।
देखा उसे शिला पर सुस्थित, सब प्रकार सुन्दर आकार ।
चूंस रहा अगुष्ठ चरण का, हुआ न तन में लेश प्रहार ।।७७।।

उठा उसे प्रतिसूर्य प्रेम से, चूम रहे मुख बारम्बार ।
हुआ उन्हें आश्चर्य चित्त में, देख अलौकिक पुण्य अपार ।।
गिरा पुत्र था जिस पत्थर पर, हुआ अधिकतर उसका भङ्ग ।
अतिशय पुण्यवान उस सुतके, रहे सुरक्षित सब ही अङ्ग ।।७८।।

मामा ने तब कहा अंजने, यह सुत चरम शरीरी जान ।
कर्म नाशकर मुक्ति बन्धु का, कन्त बनेगा यह हनुमान ।।
सावन्सर दैवज्ञ साथ था, जन्म समय कर उसने ज्ञात ।
चैत्र वदी अष्टम की तिथि है, सब गृह शक्ति भान अवदात ।।७९।।

निज निज सुन्दर क्रीडाओं से, करता था सबको सन्तुष्ट ।
लगी बिताने वहां अंजना, सुत सह अपना काल विशिष्ट ।।
नही भूलती क्षण प्रिय पतिको, मिलने की अतिय अभिलाष ।
रहती हुई वहीं पर मुख से, धर कर कर्मों पर विश्वास ।।८०।।

❑ ❑ ❑

हे भूप क्षणिक पुण्य वश, सब दुःख होते दूर हैं ।
होते सहज ही शान्त वे, जो दूसरो को क्रूर हैं ।।
पाषाण भी बनता अहो ! मृदु पुष्प सम उनके लिये ।
तज वासनाये चित्त से, शुभ कर्म जिसने हैं किये ।।८१।।

हो शीघ्र शीतल अग्नि भी, असि पुष्प माला सी बने ।
विकराल अति वनराज भी, मृग तुल्य उसके सामने ।।
प्रभु-धर्म जिसके चित्त में, क्या क्या न अतिशय हो वहां ।
हो धर्म का आधार ही, संसार में मुझको महा ।।८२।।

❑ ❑ ❑

जीत वरुण को विषम युद्ध में, पवनँजय गृह आये ।
स्वागतार्थ उनके सत्वर ही, पथ सब गये सजाये ।।
मिल करके उस वीर पुत्र से, मुदित हुआ सब परिजन ।
आनन्दित दिखते थे उस क्षण, दिव्य विजय से पुरजन ।।८३।।

करके सबसे भेट विनय से, आये प्रिया भवन पर ।
जीव रहित तन सम गृह लखके, व्याकुल हुए भयङ्कर ।।
कहो मित्र क्यों रिक्त भवन है, कहां प्रिया है मेरी ।
दिखती मुझे न क्यों आंखों से, क्यों करते हो देरी ? ।।८४।।

उस बिन राजभवन यह सारा, मुझे न किंचित् भाता ।
मृगनयनी छिप रही कहां पर, क्यों नहीं मुझे बताता ।।
अन्य जनों के मुख से उसने, प्रिया वृत्त जब जाना ।
ससुर नगर की ओर वेग से, वह हो गया रवाना ।।८५।।

पवनँजय आगमन श्रवण कर, किया ससुर ने स्वागत ।
होते हुए बाह्य सुख साधन, अन्तरङ्ग था दुःखित ।।
सुना यहा भी सेवक मुख के, कान्ता गई निकाली ।
लगी हृदय में ठेस भयङ्कर, डस बैठी या व्याली ।।८६।।

प्रिया कथा पूछे वह किससे, जिसने जो बतलाया ।
उसी ओर प्रेमातुर होकर, अपने को दौड़ाया ।।
करने पर अत्यन्त खोज भी, मिली न राजदुलारी ।
सोचे वह स्वयमेव चित्त में, क्या परलोक सिधारी ? ।।८७।।

निधि समान अन्वेषण करता, आ पहुंचा वह वन में ।
वहाँ न देख मित्र से बोला, सार न कुछ जीवन में ।।
मित्र मिलूंगा मर अब उससे, तुम अपने गृह जाओ ।
मेरा दृढ़ निश्चय जा करके, सबको सद्य सुनाओ ।।८८।।

योगी सादृश प्रिया चिन्तन में, अपना चित्त लगाया ।
अन्य पदार्थ जन्य सुख उसको, मन मे तनिक न भाया ।।
माता पिता ग्रहस्त बचन से, सुत का निश्चय सुन कर ।
केतुमती मन ही मन में तब, व्याकुल हुई भयङ्कर ।।८९।।

क्या कर डाला कार्य लोक में, मैने बिना विचारे ।
बरस रहे हैं मेरे सिर पर, निन्दा के अङ्गारे ।।
बिना विचारे जो करता है, पीछे वह पछताता ।
है पछताना व्यर्थ सभी ही, नहीं काम में आता ।।९०।।

❑ ❑ ❑

चले गये पति सदन छोड़कर, मेरे लिये विपिन में ।
सुनकर वह वृत्तान्त अजना, हुई व्यथातुर मन में ।।
नही छोड़ता पिण्ड जगत मे, यह दुर्भाग्य हमारा ।
मिलकर बिछुड़ गये हा ! प्रियतम, कठिन महा दुःखधारा ।।९१।।

सभी खोजते वन मे उसको, दिया न किन्तु दिखायी ।
तब प्रल्हाद भूप के मुख पर, विकट उदासी छायी ।।
भेज सेवकों को भूपों तट, निज सन्देश पठाया ।
बीत गये यों कितने ही दिन, पता न सुत का पाया ।।९२।।

सुन प्रतिसूर्य भृत्य मुख से यह, चला खोजने सत्वर ।
देखे उसने निज विमान मे, पृथिवी के सब ही पुर ।।
वह प्रतिसूर्य खोजता आया, अनुपम भूपर वन में ।
दिखा वहां अम्बर गोचर गज, किया तर्क तब मन मे ।।९३।।

जब गज यहां अवश्य राज-सुत, होगा वहीं कहीं पर ।
लगे देखने सूक्ष्म दृष्टि से, चारों ओर वहीं पर ।।
सुन खेचर कोलाहल भारी, प्रकुपित था वह गजवर ।
सूँड मध्य लेकर कृपाण वह, दौड़ा उनके ऊपर ।।९४।।

कर वश तब विंकराल द्विरद को, पवनंजय तट आये ।
था विमग्न चिन्ता में अतिशय, मुनि-सम ध्यान लगाये ।।
आये तत्क्षण मात-पिता भी, बोले वे-पवनँजय ।
क्यों न बोलता है तू मुख से, करता है क्यों अविनय ।।९५।।

तज बैठा था प्रिया विरह से, सारा खाना पीना ।
प्राण वल्लभा बिना वीर वह, नहीं चाहता जीना ।।
तब अंजनि मातुल ने मुख से, कथा सुनायी सारी ।
पुत्र सहित मेरे गृह पर है, सकुशल प्रिया तुम्हारी ।।९६।।

चले आप हनुरुह मेरे संग, करे प्रिया अवलोकन ।
तत्क्षण गया साथ मे उसके, होकर आनन्दित मन ।।
पहुंचा प्राणेश्वरी पास झट, सुत को लेकर कर में ।
पुनः पुनः मुख सोम्य देख के, हर्षित होता उर मे ।।९७।।

वह पवनजय वीर वहां पर, पाकर अतिशय आदर ।
शोभे प्रिया सहित नित ऐसे, ज्योत्स्ना सहित निशाकर ।।
भूल गई दुःख सती सर्वथा, प्रीति नाथ की पाकर ।
दुःख पश्चात् सौख्य मिलता है, कर्मोदय वश आकर ।।९८।।

❑ ❑ ❑

आज्ञा-लोपक जान वरुण को, क्रोधित हुआ दशानन ।
आओ सत्वर सैन्य सहित तुम, भेजे कह यों निजजन ।।
हनुरुह द्वीप भूप के सन्निधि, रावण सेवक आया ।
सविनय निज स्वामी का उसने वह सन्देश सुनाया ।।९९।।

पवनंजय, प्रतिसूर्य युद्ध के लिए, हुए झट प्रस्तुत ।
बोले तब श्री शैल भक्ति से, होकर के अतिशय नत ।।
पूज्य, आपका रण में जाना, मुझे उचित नहिं भाता ।
मैं जाऊँगा समर भूमि में, रण करना है आता ।।१००।।

बांध "वरुण" को लाऊंगा मैं, रहें आप अब घर पर ।
देखेंगे सब आप दृगों से, नहीं मुझे रिपु का डर ।।
मना किया सबने ही उसको, लेकिन लेश न माना ।
ले अरहन्त नाम निज मुख से, तत्क्षण हुआ रवाना ।।१०१।।

आया सुन हनुमान वीर को, पुलकित हुआ दशानन ।
गया प्रेम से उसके सन्मुख, तज कर निज सिंहासन ।।
लगा हृदय से बड़े प्रेम से, पूछे सबकी साता ।
बैठा वह हनुमान वहां पर, सुरपति तुल्य सुहाता ।।१०२।।

आ पहुंचा है शत्रु निकट मे, यह सुन वरुण भयङ्कर ।
क्रोध सहित सेना लेकर तब, निकला पुर से बाहर ।।
उसके शत सुत शस्त्र सुसज्जित, समर भूमि मे आये ।
देख उन्हें अवतीर्ण युद्ध में, रावण भट घबराये ।।१०३।।

जान सैन्य को व्याकुल रावण, आया आप समर मे ।
शत पुत्रों से लड़ा धैर्य धर, विकट शस्त्र ले कर मे ।।
मेघ पटल से हो जाता है, जैसे रवि आच्छादित ।
वरुण सुतों ने ढांका उसको, छोड़ निशित शर अगणित ।।१०४।।

दौडा तब हनुमान वेग से, रिपु के शत पुत्रों पर ।
लगे बिखरने क्षण भर मे वे, ज्यो समीर से जलधर ।।
बांध लिया उस पवन पुत्र ने, अरि पुत्रों को क्षण मे ।
फिरता था वह वीर सिंह सम, निर्भय सारे रण में ।।१०५।।

निज पुत्रो को वीर वरुण ने, जाना जब बन्धन मे ।
मोह विवश उस समय वहाँ पर, हुआ व्यथित निज मन में ।।
भूल गया सम्पूर्ण कला वह, पकड़ लिया रावण ने ।
बरसाये तब पुष्प विजय के, नभ से मिल सुर गण ने ।।१०६।।

सत्वर ही भयभीत सैन्य को, उसने धैर्य बन्धाया ।
बन्धनबद्ध वरुण को सादर, अपने निकट बुलाया ।।
नत मस्तक वह वरुण खड़ा था, लंकापति के सन्मुख ।
बोला तब लंकेश प्रेम से, करो न तुम मन में दुःख ।।१०७।।

वीरों का आचार वीर सम, तुमने सकल निभाया ।
पुनः करो तुम राज्य प्रेम से, सुखी रहे तब काया ।।
नही चाहिए राज-पाट कुछ, आज्ञा मेरी पालो ।
हुआ अधम अपमान भाव यह, हृदय-भवन से टालो ।।१०८।।

हुआ प्रफुल्लित हृदय वरुण का, पीकर अमृत वाणी ।
वचनों के द्वारा कर सकता, जग को वश में प्राणी ।।
हे लंकेश, आपका हमने, आज पराक्रम जाना ।
युद्ध-भूमि मे पवन पुत्र के, बल को भी पहचाना ।।१०९।।

क्षमा कीजिए मन उदार कर, सब अपराध हमारे ।
होगा अनुचित कार्य न अब कुछ, सेवक सदा तुम्हारे ।।
सत्यवती निज सुता वरुण ने, व्याही उसको साग्रह ।
लेकर उसको साथ प्रेम से, आये दशमुख निज गृह ।।११०।।

पवन-पुत्र का शौर्य देखकर, हर्षित हुआ दशानन ।
श्री अनङ्ग कुसुमा दी उसको, जिसका रति-सम है तन ।।
चन्द्रनखा की वह बाला भी, गुण में सबसे बढ़कर ।
थे प्रसन्न हनुमान वीर भी, प्रेम सहित अपना कर ।।१११।।

श्री सुग्रीव वीर ने भी दी, उसको अपनी कन्या ।
थी साक्षात् भूमिपर लक्ष्मी, अदभुत रूप अनन्या ।।
हो निश्चिन्त सभी ही सुख से, निज निज शासन करते ।
देव तुल्य थी प्रजा सुखी सब, थे अनीति से डरते ।।११२।।

❑ ❑ ❑

(सर्ग ६)

नगरी अयोध्या मे तदा, रघु-पुत्र वीर 'अरण्य' था ।
नृप योग्य गुण उसमें सभी, उस सम न कोई अन्य था ।।
उस भूपके रवि, चन्द्र से, दो वीर उत्तम पुत्र थे ।
अवलोक उनके रूपको, अति तृप्त होते नेत्र थे ।।१।।

था आद्य पुत्र अनन्त रथ, दशरथ गुणी था दूसरा ।
श्रीमान् भूपसुत अरण्य ने, सह सुखदतम मुनिव्रत धरा ।।
उस काल दशरथ ने ग्रहण की, राज्यकी भारी धुरा ।
पाके उसे सुप्रसन्न थी, अत्यन्त ही यह उर्वरा ।।२।।

कर कर्म दग्ध अरण्य श्री पाया विमल निर्वाणको ।
मुनिराज पूज्य अनन्तरथने, दिव्य केवल ज्ञानको ।।
छद्मस्थता मे इन मुनि ने दुःख समता से सहे ।
तब लोक गुण अनुसार इनको, अनन्तवीर्य सब कहें ।।३।।

दशरथ नृपति 'अपराजिता' का, कर ग्रहण करते हुये ।
आनन्द से अपने हृदय को, वे अधिक भरते हुये ।।
कौशल क्षितीश्वर की सुता, अतएव कौशल्या यही ।
शुभ इन्द्र-इन्द्राणी सदृश वे, शोभते दोनों सही ।।४।।

रति-सी सुमित्रा, सुप्रभाको, भी बनाया निज प्रिया ।
लावण्य निधि पा रमणियों का, था खिला पंकज-हिया ।।
सम्यक्त्व पा दशरथ धरापति, राज्य भी करते हुए ।
अन्याय, अत्याचार से, निज चित्त मे डरते हुए ।।५।।

यह राज्य वैभव तृण सदृश था, धर्म की थी मुख्यता ।
करता सतत धार्मिक क्रिया, हो मानसिक सु विशुद्धता ।।
पाके विपुल ऐश्वर्य जो, उससे न मुखको मोड़ते ।
हा ! वे नराधम विश्व में, सम्बन्ध दुःखसे जोड़ते ।।६।।

जो भोग की आशा तजे, धर चित्त में सुविरक्तिको ।
वह जीव पाता है सहज में, स्वर्ग अथवा मुक्तिको ।।
धर धर्म में परिणति सदा, नरपति बिताता काल है ।
है सत्य का रक्षक सदा, दुष्कर्म का जो काल है ।।७।।

उसके मनोहर राज्य में, किंचित न पर को त्रास था ।
था मानवों में प्रेम मन में, और शुभ विश्वास था ।।
हिंसा, मृषादिक पातकों से, दूर थे मानव वहाँ ।
रवि तेजको अवलोक के भी, क्या तिमिर रहता यहां ।।८।।

करते प्रभु गुण-कथा सभा में, शोभित थे दशरथ जब ।
करते हुये प्रकाशित नभ को, आये नारद मुनि तब ।।
उठ करके सादर भूपति ने, दिया उन्हें सिंहासन ।
देव, देखकर आज आपको, पुलकित हो आया तन ।।९।।

आप कुशलतापूर्वक तो है, कुछ वृत्तान्त सुनायें ।
करते रहते आप भुवन में, यत्र-तत्र यात्रायें ।।
प्रभु प्रसाद से कुशल क्षेम है, जिनवर मेरे मन में ।
घूम-घूमकर उनके करता, दर्शन इस जीवन में ।।१०।।

ले जाकर एकान्त भूमि में, बोले नारद वाणी ।
गुप्त बात कहने आया हूँ, जैसे मैंने जानी ।।
लका में मैं गया, वहां है, शान्तिनाथ चैत्यालय ।
जिसके दर्शन से होता है, पुण्य कर्म का संचय ।।११।।

वहां विभीषण के मुख से मैं, जो कुछ सुनने पाया ।
जान तुम्हें धर्मिष्ठ जीव में, सत्वर कहने आया ।।
एक समय 'बुधिसार' विज्ञसे, पूंछे आप दशानन ।
होगी मेरी मृत्यु कहो तुम, जग में किसके कारण ।।१२।।

दशरथ पुत्र, जनक कन्या के, कारण मृत्यु तुम्हारी ।
चिन्तित हुआ हृदय में रावण, सुन वाणी दुःखकारी ।।
शोकातुर-सा देख बन्धु को, बोला विज्ञ बिभीषण ।
दशरथ और जनकका जग में, नहीं रहेगा जीवन ।।१३।।

कर दोनों का घात गुप्त रह, चिन्ता मुक्त करूंगा ।
बन्धु प्रेम के वश होकर मैं, सब दुष्कृत्य करूंगा ।।
ज्ञात हो गया नाथ, ठाम सब, गुप्तचरों के द्वारा ।
आते ही वह यहाँ करेगा, सत्वर नाश तुम्हारा ।।१४।।

रख मुझ पर विश्वास बिभीषण, बोला मुख से निर्भय ।
दशरथ और जनकका साधों ! तुमको क्या कुछ परिचय ?
मिला न उनसे बहुत दिनों से, आऊंगा मैं मिलकर ।
दूंगा फिर मैं समाचार सब, कह यों आया सत्वर ।।१५।।

रहें आप प्रच्छन्न सर्वथा, करें वेश परिवर्तन ।
उन पर मेरी धर्म प्रीति है, जो हैं श्रद्धालु-जन ।।
नारद ने जा जनक पास भी, सब वृत्तान्त सुनाया ।
करो शीघ्र सदुपाय यत्न से, बचे जगत में काया ।।१६।।

बुला सचिव को दशरथ नृपने, बात सुनाई सारी ।
ऐसे बिकट समय में सचमुच, क्या है राय तुम्हारी ।।
भयप्रद सुनकर समाचार वह, स्वामि-भक्ति मे तत्पर ।
बोला सम्प्रति वेश बदलकर, करें गमन देशान्तर ।।१७।।

दशरथ और जनक भयवश हो, निज निज नगरी तजकर ।
लगे बिताने दिवस कष्ट के, तुच्छ मनुज-सम फिरकर ।।
इधर-उधर वे घूम-घामकर, अपना समय बिताते ।
राजा, रङ्क, सभी को जग में, पापी कर्म सताते ।।१८।।

इधर सचिव ने दशरथ नृपका, पुतला शुभ बनवाया ।
जिसे देख सब ही नृप मानें, समझे कोई न माया ।।
रखकर उसको एक भवन में, व्याधि-ग्रस्त है भूपति ।
मिलता नहीं किसी से सम्प्रति, हुई बात यह प्रसरित ।।१९।।

विश्वासी दो चार मनुज ही, इस रहस्य के ज्ञाता ।
राज-भवन में कोई, भी नर नृप-तट पहुच न पाता ।।
दशरथ सम ही जनक नृपतिका, पुतला गया बनाया ।
रोगी भूप न आता बाहर, यों जग को समझाया ।।२०।।

चन्द्र, सूर्य ज्यों मेघ पटल से, छिप जाते हैं नभ में ।
गुप्त वेश धर फिरते दोनों, पुर में अथवा वन में ।।
हे मगधेश भाग्यशाली ये, राज-भवन के वासी ।
देवों तुल्य विश्व के अनुपम, सुख के परम विलासी ।।२१।।

सेवक आज न एक साथ में, भ्रमते नित्य अकेले ।
कर्मोदय वश जीव जगत में, खेल निरन्तर खेले ।।
लंकेश्वर के सुभट मारने, घूमें नृपके पुर में ।
कर न सके लेकिन प्रवेश वे, वहां सुरक्षित घर में ।।२२।।

आया तब स्वयमेव बिभीषण, घुसकर राज-भवन में ।
कटवा डाला निज सेवक से, नृप मस्तक को क्षणमें ।।
उसी प्रकार जनक का भी हा ! सिर उसने कटवाया ।
यह अनर्थ अवलोक प्रजा ने, भारी शोक मनाया ।।२३।।

रोने लगी रानियाँ दु:ख से, रोयें सभी भयङ्कर ।
हुए अन्त में शान्त भी वे, अपना दु:ख विसरा कर ।।
मोह मन्द होते ही मन में, सोचे विज्ञ बिभीषण ।
बन्धु-मोह ने हाय कराया, मुझसे दुष्कृत इस क्षण ।।२४।।

पश्चात्ताप अग्नि से उसका, जलता था मन भारी ।
होगा कौन जगतमे मुझसा; अविवेकी अविचारी ।।
क्या कर सकते भूमि गोचरी, रावण इन्द्र सदृश है ।
किन्तु पाप से जगमें मेरा, फैल गया अपयश है ।।२५।।

होनहार होती है जैसी, वैसे मिलें सहायक ।
मोहाधीन हाय, कर बैठा, अनुचित कृत्य अचानक ।।
दुष्टों की संगति मानव से, क्या क्या नहीं कराती ।
सज्जन भी बन जाता उससे, तस्कर, पापी, घाती ।।२६।।

पाप-शुद्धि के लिए भक्ति से, प्रभु में चित्त लगाया ।
शनै: शनै: जगती ने भी सब, यह वृत्तान्त भुलाया ।।
पुण्य-पापकारक की चर्चा, कुछ दिन रहती भूपर ।
काल-विवश भूले यह मानव, अन्य कथा अपनाकर ।।२७।।

❑ ❑ ❑

कौतुक मङ्गल नगर मनोहर, गिरि-सम कोट जहाँ पर ।
　　'शुभमति' नाम नरेश्वर सुख से, करता राज्य वहाँ पर ।।
'पृथुश्री' उसकी प्राणवल्लभा, गुण-भूषण से मण्डित ।
　　सुता कैकेई उन दोनों के, 'द्रोण' पुत्र था पण्डित ।।२८।।

कैकेयी का सुवर्ण समान अङ्ग सुन्दर शशि सम मुख था ।
　　देख देख उसकी सुषुमा को, होता सबको सुख था ।।
सर्व कला में निपुणमती वह, शास्त्र मर्म की ज्ञाता ।
　　नृत्य और श्रृङ्गार कला में, उस सम नहीं दिखाता ।।२९।।

काव्य शास्त्र, साहित्य निपुण थी, श्रेष्ठ रही गाने में ।
　　अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान अधिक था, कुशल सभी कामों में ।।
परिणय योग्य देखकर उसको, कैसे मिले सुभग वर ।
　　सोच यही भूपतिने मनमें, सत्वर किया स्वयंवर ।।३०।।

हरिवाहन इत्यादि राजसुत, उस मण्डप में आये ।
　　जनक सहित दशरथ भी पहुंचे, उसमे बिना बुलाये ।।
यद्यपि नहीं निकट वैभव है, लेकिन आकृति सुन्दर ।
　　चित्त गुमा बैठी तब केकई, उनको सन्मुख लखकर ।।३१।।

तजकर सकल राज पुत्रों को, केकई राजकुमारी ।
　　खड़ी हो गई सन्मुख उसके, गमन शक्ति सब हारी ।।
निज हाथों से राज-सुताने, डाली जब वरमाला ।
　　दशरथ हृदय हर्ष से तत्क्षण, हुआ अधिक मतवाला ।।३२।।

न्यायी नृप सब बोल उठे यो, सुता योग्य वर है यह ।
　　कितने ही ईर्ष्यालु नृपों को, रुचा नही सुकृत वह ।
लगे बोलने क्रोधित हो वे, राज-सुतो को तजकर ।
　　अनुचित किया भूप-कन्याने, परदेशी को वर कर ।।३३।।

केश पकड़ कन्या को ले लो, और अधम को मारो ।
　　हुआ घोर अपमान तुम्हारा, इसको हृदय विचारो ।।
ले ले शस्त्र हाथ में अपने, वे लड़ने को आये ।
　　दशरथ देख सामने उनको, लेश नही घबराये ।।३४।।

कहा श्वसुर से शस्त्र दीजिये, देखूं मैं इनका बल ।
रह सकते हैं कब तक मेरे, सन्मुख ये सब अविचल ।।
एक कंकरी से ज्यों कौवे, होते तितर-बितर हैं ।
लड़ न सकेंगे समर भूमि में, काक-तुल्य ये नर हैं ।।३५।।

रथ चढ़ केकई सहित भूप वह, आया त्वरित समरमें ।
रथ-संचालन विकट समय में, था कैकेयी कर में ।।
जिस जिस ओर वीर कन्या वह, रथ अपना ले जाती ।
दशरथ के बाणों से घायल, होती थी रिपु छाती ।।३६।।

भूप हेमप्रभ रण अधिपति था, उस पर दशरथ आये ।
खींच कान तक उस पर उसने, अपने बाण चलाये ।।
टूट गया रथ, मरे अश्व सब, भागा तब रण तजकर ।
राज सदन में आये दशरथ, अनुपम विजयी बनकर ।।३७।।

राज-सुता से कर विवाह वे, आये आत्मनगर में ।
क्षेम सहित उनके आने से, उत्सव हों घर घर में ।।
जनक भूप भी धूमधाम कर, पहुंचे मिथिलापुर में ।
क्षेम-कुशल अवलोक नाथको, हुआ हर्ष पुर-भर मे ।।३८।।

एक समय केकई से बोले, दशरथ मुखसे वाणी ।
है प्रशस्य है प्राणवल्लभे, तेरी शौर्य कहानी ।।
घोर युद्ध में उस दिन तूने, रथ को उचित चलाकर ।
भली बनी तू वीर कामिनी, हमको युद्ध जिताकर ।।३९।।

जो न सहायक तू होती तो, जय पाना था दुस्तर ।
मैं प्रसन्न तेरे सुकार्य से, मांग आज तू कुछ वर ।।
सुकनर अपनी गुण प्रकर्पता, किया वदन निज नीचा ।
पुनः पुनः आग्रह पति का लख, बोली कर मुख ऊंचा ।।४०।।

रहे आपके निकट प्राण पिया, मम वरदान धरोहर ।
मांगू जब उस समय आप दे, योग्य कार्य पड़ने पर ।।
हो प्रसन्न बोले दशरथ नृप, मृगनयनी हे प्यारी ।
अङ्कित-सी ही गई हृदय में, मेरे बात तुम्हारी ।।४१।।

रत्न-जड़ित निज दिव्य भवन में, कौशल्या भी सोती ।
है सौन्दर्य पिण्ड अनुपम यह, ऐसी शोभित होती ।।
देखे उसने चार स्वप्न शुभ, रजनी अन्त प्रहर में ।
ऐरावत समान उत्तम गज, सिंह प्रबल पशुवर में ।।४२।।

देखा तृतीय स्वप्न में रवि को, चौथा स्वप्न निशाकर ।
उठ प्रभात में स्वप्न कहे सब, प्राणेश्वर तट जाकर ।।
जान हृदय में स्वप्नों का फल, बोले वे शुभ वाणी ।
तुझे प्राप्त होगा सुत अनुपम, जगमें हे कल्याणी ।।४३।।

जीत बाह्य रिपुओं को बलसे, राज्य करेगा सुखसे ।
अन्त समय में मार मोह को, छूटेगा भव दुःख से ।।
पुलकित था कौशल्या तन सब, सुनकर सुखकर वाणी ।
प्रभु पूजार्थ गई जिन गृह में, लेकर केकई रानी ।।४४।।

प्रभु पूजन से कष्ट दूर हो, इष्ट सिद्धि झट होती ।
क्रोध, मान, माया की सेना, रहती सारी सोती ।।
पूर्व दिशा से प्रगटतित होता, जैसे दिव्य दिवाकर ।
प्रगट हुआ कौशल्या से त्यों, जग में पुत्र मनोहर ।।४५।।

राम-जन्म के समय भूपने, उत्सव अधिक मनाया ।
दे उदारता से निज धन, को याचक भाव मिटाया ।।
धरा नाम तब 'पद्म' हृदय हर, सब ही उसे खिलाते ।
देख पुत्र की क्रीड़ाओं को, मात-पिता सुख पाते ।।४६।।

सती सुमित्रा ने भी सुख से, देखे स्वप्न मनोहर ।
हर्षित हुई हृदय में अतिशय, पति-मुखसे फल सुनकर ।।
हुआ सुमित्रा की सुकुक्षि से, लक्ष्मण अति बलधारी ।
प्रमुदित होते हुये उसे लख, पुरवासी नर नारी ।।४७।।

राम और लक्ष्मण दोनों ये, चन्द्र-सूर्य से भाते ।
इन्हें देखकर मानव-लोचन, पुनः पुनः सुख पाते ।।
पूर्व-जन्म संस्कार विवश था, इनमें प्रेम परस्पर ।
होते थे आनन्दित सब ही, वचन सुधा-रस पीकर ।।४८।।

शूरवीरता की प्रतिमा ये, भाग्यवान थे जग में ।
सुखदायक अत्यन्त हुए ये, दशरथ जीवन मग में ।।
'राम' श्रेष्ठ बलभद्र कहाये, लक्ष्मण श्री नारायण ।
थे दोनों ही वीर जन्मसे, श्री जिन धर्म परायण ।।४९।।

यथा समय केकई ने सुन्दर, पुत्र भरत को पाया ।
पुत्र सुप्रभा का जग विश्रुत, श्री शत्रुघ्न कहाया ।।
जलधि सदृश गम्भीर सभी सुत, पर्वत-तुल्य अचल थे ।
विनयवान् गुरु आज्ञा पालक, धर्मी हृदय विमल थे ।।५०।।

सभी कुमारों को दशरथ ने, पाठक पास पढ़ाया ।
अल्प समय में सब प्रकारका, ज्ञान उन्होंने पाया ।।
रहकर शस्त्राचार्य निकट में, अस्त्र शस्त्र संचालन ।
सीखा इस धरती पर उनसा, वीर न कोई तत्क्षण ।।५१।।

पुत्रों सहित नृपति दशरथ का, जाता सुख से जीवन ।
सुखका सतत लाभ उसको हो, जहां शुभोदय प्रियधन ।।
सुख के समय कभी भी नृप ने, धर्म न लेश विसारा ।
तुच्छ सकल भौतिक पदार्थ हैं, श्री जिन धर्म सहारा ।।५२।।

❑ ❑ ❑

हे श्रेणिक कुछ सुनें आप अब, भामण्डल, सीता का वृत्त ।
वीतराग-वाणी से होता, प्राणि-मात्र का शुचितर चित्त ।।
होगा पुत्र विदेहाके जो, सम्प्रति मातृ कुक्षि में वास ।
हरण करूंगा उसका मैं झट, किसी देवने की अभिलाष ।।५३।।

गौतम से पूंछा श्रेणिक ने, क्यों यह भाव हुआ उत्पन्न ।
पूर्व-जन्म का वैर हेतु है, सुनें सफल हो चित्त प्रसन्न ।।
एक चक्रपुर नगर मनोहर, वहां चक्रध्वज था नरपाल ।
भूप भामिनी थी मनस्विनी, चित्तोत्सवा सुता गुणमाल ।।५४।।

राज-पुरोहित धूम्रकेश के, पिंगल नामक पुत्र कुमार ।
दोनों ही अपने कुटुम्ब को, देते थे सुख नित्य अपार ।।
शाला में मिलकर दोनों वे, करने लगे ज्ञान अभ्यास ।
वहां परस्पर की संगति से, प्रगट हुआ हा ! काम-विलास ।।५५।।

छोड़ छोड़ करके पढ़ना सब, चले गये दोनों परदेश ।
इस प्रकार के दुराचार से, हुआ सभीको क्लेश विशेष ।।
पहुंच विदग्ध नगर में उसने, बना बाह्य में एक कुटीर ।
काष्ठादिक विक्रय द्वारा वे, भरें पेट, सहते सब पीर ।।५६।।

एक दिवस 'कुण्डल मण्डित' नृप, देख विप्र-भार्या सौन्दर्य ।
कहाँ रत्न यह भिक्षुक गृह मे, हुआ अधिक मनमे आश्चर्य ।।
चित्तोत्सवा रूप लख करके, व्याप गया तन भर में काम ।
बुला दूती द्वारा प्रलोभ दे, दिया राज-मन्दिर में ठाम ।।५७।।

राज-सदन में सुख से दोनों, लगे भोग ने नाना भोग ।
हुआ असह्य विप्र पिंगलको प्रिय रमणीका प्रबल वियोग ।।
विरह व्यथा से पीड़ित होकर, गया राज्य में वह न्यायार्थ ।
सुनता कौन जगत में सचमुच, दीनजनों की बात यथार्थ ।।५८।।

करके बहु उपहास जनों ने, दिया वहां से उसे निकाल ।
रात-दिवस अतिशय प्रयत्न कर, इधर-उधर खोजे कङ्काल ।।
वन, उपवन, चैत्यालय खोजे, पड़ी नहीं लेकिन वह दृष्टि ।
प्राण-वल्लभाके वियोग में, उसे भयङ्कर लगती सृष्टि ।।५९।।

रमणी के वियोग से उसका, क्षीण हो गया सारा गात ।
तृषित द्रव्य मानव सम उसकी, व्यथा पूर्ण जाती थी रात ।।
किसी समय मुनि आर्यगुप्तिका, करके श्रवण मधुर उपदेश ।
जान जगतको वह विचित्रमय, भूल गया रमणीका क्लेश ।।६०।।

हो अशान्त मैं भूल रहा था, परम शान्ति का अनुपम पंथ ।
ले गुरु आज्ञा, त्याग परिग्रह, बना विप्र पिंगल निर्ग्रन्थ ।।
तज करके ममता शरीर की, भूमण्डल में करे विहार ।
बैठ कन्दराओं में मनमें, करता रहता तत्व विचार ।।६१।।

कुण्डल मण्डित नृप अरण्य के, नगरों में करता उत्पात ।
देख विपक्षी सुभटोंको वह, गढ़में त्वरित छिपाता गात ।।
इस पापी कुण्डल-मण्डित का, था पाषाणमयी दृढ़ दुर्ग ।
उसके बल पर ही वह पापी, करे मानवों पर उपसर्ग ।।६२।।

रक्त रहे नूतन रमणी में, करे तथा नाना अपराध ।
तब 'अनरण्य' के सेनापति ने, लिया एक दिन उसको बांध ।।
छीन लिया सब राज-पट तब, दिया देश से और निकाल ।
भ्रष्ट बुद्धि हो जाता मानव, आता जब पापोदय काल ।।६३।।

किसी समय मुनि के आश्रममें, फिरता हुआ गया वह आप ।
कर प्रणाम मुखसे बोला वह, कर पापों का पश्चाताप ।।
भगवन्, धर न सके जो मुनिव्रत, उस मानवका फिर क्या कार्य ।
भय, मैथुन, आहार परिग्रहवश, हो, किये अधिक दुष्कार्य ।।६४।।

मुक्ति मिले कैसे पापों से, मुझे आपका है आधार ।
सोचूं जब जग के स्वरूप को, तब वह दिखता महा असार ।।
देख भावना धार्मिक उसकी, बोले वे मुनिवर हे भव्य ।
सकल लोक में जीव मात्र का, धर्माराधन है कर्तव्य ।।६५।।

सबसे प्रथम मद्य, आमिष, मधु, इनका करो सर्व परिहार ।
धर्म नहीं टिक सकता मनमें, शुद्ध न हो जब तक आचार ।।
हिंसक यही कष्ट पाता है; मरकर पाता कुगति निवास ।
स्वयं सुखी हो सकता कब वह, जो देता जीवों को त्रास ।।६६।।

निंद्य वस्तुओं के सेवन में, होती है हिंसा अत्यन्त ।
वधकर्त्ता जीवों के दुःख का, कभी नहीं आता है अन्त ।।
हाथ जोड़ मुनिको वन्दन कर, किया कथन उनका स्वीकार ।
चला शीघ्र मातुल गृह सन्मुख, मान उसे अपना आधार ।।६७।।

किन्तु मार्ग में व्याधि वेदना, से जीवन का अन्त हुआ ।
कुण्डल मण्डित यों मर करके, मातृ विदेहा तनय हुआ ।।
उसी गर्भ में तप-प्रभाव से, चित्तोत्सवा जीव आया ।
जनक-राज के राजमहल में, युगल जन्म मंगल छाया ।।६८।।

पिंगल ब्राह्मण तप प्रभाव से, भवन वासि था देव हुआ ।
कुण्डल मण्डित से जिसका था पूर्व जन्म में वैर हुआ ।।
जनक राज के राज महल में आया वह निर्जरसत्वर ।
जनक पुत्र को हरा दुष्ट ने गया गगन के मार्ग अमर ।।६९।।

पहले तो उस देव के मन में, हत्या के परिणाम हुए ।
फिर विवेक ने साथ दिया तो, रक्षा के परिणाम हुए ।।
कानो में कुण्डल पहनाये, पूर्ण लब्धि विद्या के साथ ।
छोड़ दिया आकाश मार्ग से, बालक पूर्ण दया के साथ ।।७०।।

चन्द्रगति विद्याधर ततक्षण, रात्रि काल में बैठ विमान ।
जाता था कि अकस्मात ही, उसे दिखा यह ज्योतिनिधान ।।
सत्वर जाकर के समीप जब, देखा तब बालक पाया ।
उठा गोद में शीघ्र लिया तब, हुई पुलकित उसकी काया ।।७१।।

लेकर पहुंचा राज महल में, रानी पुष्पवती के पास ।
जिसके कोई पुत्र नहीं था, इससे रहती सतत उदास ।।
सोती थी वह राजमहल में, उसकी जघाओं के मध्य ।
उस बालक को रखा नृपति ने, सन्मुख ले जाकरके सद्य ।।७२।।

राजा कहने लगा रानी से, उठो उठो रानी तुम धन्य ।
पुत्र जन्म है हुआ तुम्हारे, अतुलित पुण्यवती तुम धन्य ।।
रानी बोली बन्ध्या हूँ मैं, नाथ करो मत मम उपहास ।
राजा बोला गूढ गर्भ था, मनको तुम मत करो निराश ।।७३।।

रानी बोली नाथ मानती, कानो में कुण्डल कैसे ।
बतलाओ हे स्वामी कहाँ से, आये ये उज्जवल ऐसे ।।
तब राजा ने सब अतीत की, घटना उसको बतलाई ।
पुत्र प्राप्ति की सब यथार्थता, रानी को तब जतलाई ।।७४।।

पुष्पवती रानी उसको ले, अधिक मानती निजको धन्य ।
बालक पर प्रतिदिन बढ़ती थी, उन दोनों की प्रीति अनन्य ।।
बध्या पुष्पवती सुतको पा, माने अपने को कृतकृत्य ।
खेचरपतिने प्रगट किया तब, प्राप्त बालका सच्चा वृत्त ।।७५।।

धरा नाम भामण्डल उसका, करे बाल चेष्टा सुख रूप ।
खेचर का परिवार सभी ही, था उस बालकके अनुरूप ।।
उसकी मधुर बाल लीलायें, भर देती थी मन में मोद ।
पाकर पुण्यवान उस सुत को, पूर्ण भरी रानी की गोद ।।७६।।

पुत्र-हरण को जान विदेहा, रुदन युक्त हा ! करे विलाप ।
हर मेरे कोमल कुमार को, किसने किया भयंकर पाप ?
कौन ले गया राज-भवन से, मेरा सम्प्रति जात कुमार ।
राजमहल रक्षक पुरुषों को, पुन: पुन: देती धिक्कार ।।७७।।

बोले जनक सान्त्वना देते, प्रिये ! करो मन में मत खेद ।
समझ नहीं पड़ता है मुझको, पुत्र-हरण का भारी भेद ।।
पूर्व-कर्म वश हुआ हमें हा, दुखदायी यह पुत्र-वियोग ।
खोज करेंगे प्रिये शीघ्र ही, दशरथसे मिलकर हम लोग ।।७८।।

शोक न कर धर धैर्य हृदय में, यदि होगा अपना सौभाग्य ।
करने पर अति खोज सहज मे, होगा प्राप्त पुत्र बड़ भाग ।।
ढूंढा उस नव जात बालको, सबने वन, गिरि में तत्काल ।
दुखित सभी आये निज निजगृह, मिला न उसका कोई हाल ।।७९।।

पुत्र विरह से दुखित विदेहा, बाला सीता को अवलोक ।
घटा रही थी क्षण क्षण अपना, कर्म-जन्य मनका सब शोक ।।
था माधुर्य सुता वचनों में, वदन-प्रफुल्लित पद्म-समान ।
ढूंढे नहीं कहीं मिलता था, उसकी आंखों का उपमान ।।८०।।

दर्शनीय अतिशय सुन्दर था, गौरवर्ण सुषमामय गात ।
देख उसे कहते थे पुरजन, यह कन्या देवी साक्षात् ।।
परिणय योग्य देख सीता को, जनक हृदय में करें विचार ।
दशरथ पुत्र राम को देकर, सुखी करू इसका संसार ।।८१।।

देख राम के किस प्रभाव को, मुदित हुए उन पर मिथिलेश ?
कहिये हे करुणा-सागर अब, श्रेणिक पूंछे वृत्त विशेष ।।
मेघ-तुल्य ध्वनि से गुरु गौतम, बोले हे श्रेणिक भूपाल ।
कहें सद्य आगे हम सुखप्रद, रामचन्द्रका पुण्य विशाल ।।८२।।

है 'मयूरमाला' म्लेच्छों की, नगरी पृथिवी पर विकराल ।
'अन्तरगत' अधिपति उन सबका, धन-जनका जो भारी काल ।।
ले विकराल सैन्य सब अपनी, आ पहुंचा जब मिथिला पास ।
सुनकर उनके दुष्कृत्योंको, हुआ प्रजाको भारी त्रास ।।८३।।

जान उन्हें बलवान जनक ने, भेजा दूत शीघ्र साकेत ।
पुर रक्षार्थ मित्रवर दशरथ, आये सत्वर सैन्य समेत ।।
जाकर कहा दूतने सत्वर, दशरथ से सारा वृत्तान्त ।
हे राजन्! हैं म्लेच्छ सर्वथा, धर्म-कर्म के महाकृतान्त ।।८४।।

धरती को वे लूट रहे हैं, करें धर्म का और विनाश ।
नहीं उन्हें संकोच लेश भी, देते हुए लोक को त्रास ।।
वे पापी हत्यारे अतिशय, दुष्ट काम में, हैं आसक्त ।
इधर आ रहे यम किंकर से, नाना हथियारोसे युक्त ।।८५।।

अस्त्र-शस्त्र से सज्जित होकर, मिथिला में आयें झट आप ।
आने से हे मित्र आपके, सकल शान्त होगा मन-ताप ।।
जान मित्र को विकट कष्ट में, दशरथ आप हुए तैयार ।
देख न सकता मनुज कष्टको, जहां मित्रताका संचार ।।८६।।

बुला राम को कहा नृपति ने, करो प्रजा पालन अवरुद्ध ।
सैन्य सहित जाता सम्प्रति मैं, करने को रिपुओ से युद्ध ।।
दुष्टो से मिथलेश प्रजा का, अन्तःकरण महा भयभीत ।
करूं स्वस्थ सम्पूर्ण प्रजा को, पल भरमें अधर्मी को जीत ।।८७।।

हाथ जोड़कर नम्र हृदय हो, कहने लगे पिता से राम ।
नहीं समर में आप जाइये, यह सब हम लोगों का काम ।।
उसके लिय आपका जाना, उचित नही जग में हे तात ।
कौन क्षेत्र की हैं वे मूली, अधमाधम अति दुष्ट किरात ।।८८।।

राज भवन में आप विराजें, मैं देखूं उनकी सब शक्ति ।
हो प्रसन्न बोले दशरथ नृप, धन्य धन्य हे सुत तब भक्ति ।।
जीत सकोगे कैसे उनको, तुम तो अभी महा सुकुमार ।
सहन करोगे कैसे भीषण, समरभूमि में शस्त्र-प्रहार ।।८९।।

तात आप चिन्ता न कीजिए, दग्ध करे वन की अङ्गार ।
सूर्योदय होते ही क्षणभर, टिक सकता क्या तिमिर अपार ।।
चले राम लक्ष्मण युत पुर से, पाकर के दशरथ आदेश ।
हुए प्रसन्न देव दोनों को, यथा समय मन में मिथलेश ।।९०।।

म्लेच्छ सैन्य को निकट जानकर, जनक चले करने संग्राम ।
बिन सहाय उस बिकट युद्धका, आ न सका सुन्दर परिणाम ।।
म्लेच्छ शरों से टूट चुका था, जनक राज का कवच विशेष ।
धैर्य बन्धाया त्वरित राम ने, हरकर के मन का सब क्लेश ।।९१।।

दुखित हुआ सब शत्रु सैन्य तब, देख राम का उत्तम छत्र ।
दिखता था उस समय भयङ्कर, हिंसा का तांडव सर्वत्र ।।
तितर-बितर हो जाते हैं गम, क्षणभरमें ज्यों लख वनराज ।
देख राम को समर भूमि में लगी बिखर ने भील समाज ।।९२।।

सूर्य-तेज के सन्मुख जग मे, टिक सकता क्या तिमिर अपार ।
राम और लक्ष्मण ने उन पर, किये तीक्ष्ण तर शस्त्र प्रहार ।।
जीता बल से म्लेच्छ राज को, मुनि ज्यों जीतें मोह कराल ।
आये म्लेच्छ राम के आश्रय, एक ओर शस्त्रों को डाल ।।९३।।

बन्धु युगल का जनकराजने, किया अधिक आदर सत्कार ।
शुभ वा अशुभ सभी कुछ होता, सदा कर्म के ही अनुसार ।
आये राम अयोध्या पुर में, हुआ प्रजा को अतिशय हर्ष ।
देता है आनन्द जगत को, पुण्यजनों को गुण उत्कर्ष ।।९४।।

आप्त पुत्र का देख पराक्रम, हुये अयोध्या नाथ प्रसन्न ।
दिन दिन बढा बली पुत्रो पर, मात-पिता का प्रेम अनन्य ।।
रामचन्द्र के इस प्रभाव से, हुए प्रभावित जनक विशेष ।
दे सीता को इन्हें प्रेम से, होना चाहें ऋण निःशेष ।।९५।।

सुनकर राम पराक्रम नारद, करे सदा उनका गुणगान ।
जनक राम को देंगे सीता, मुदित हुये वे यह सब जान ।।
प्रगट हो चुका था सीता का, धरती पर सुखमय लावण्य ।
चले देखने नारद उसको, निर्विकार मन होने धन्य ।।९६।।

जनक सदन पहुंचे मुनि नारद, करती थी सीता श्रृङ्गार ।
नारद-मूर्ति देख दर्पण में, हुई आप भयभीत अपार ।।
कौन मनुज यों चिल्लाकर के, दौड़ गई अन्दर की ओर ।
जाते रोक दिया नारद को, पुरुषों ने कह वचन कठोर ।।९७।।

मचा कलह दोनों का गृह में, आ पहुंचे सत्वर सामन्त ।
छुड़ा पिण्ड उनसे वे नारद, गये गगन में आप तुरन्त ।।
आकर के कैलाश शैल पर, करते थे इस भांति विचार ।
पूज्य मान कर मुझे विनय से, आदर देता है संसार ।।९८।।

किया राज-पुरुषों ने मेरा, जानबूझ करके अपमान ।
उनका यह व्यवहार हृदय को, देता है दुख शल्य समान ।।
है यह कन्या दुष्ट सर्वथा, गया देखने मैं निर्दोष ।
हाय ! अकारण कर बैठी है, शत्रु तुल्य मुझ पर अतिरोष ।।९९।।

दुष्ट सुता ने इस नारद का, हाय! कराया है जो हाल ।
स्वस्थ चित्त होऊंगा अब मैं, विकट कष्ट में इसको डाल ।।
स्वयं नाचता है जगती में, बिना बजाये भी वादित्र ।
क्यों न वहां नाचू मैं सुख से, बजते हो बाजे जब अत्र ।।१००।।

बना चित्र सीता का अनुपम, रथनूपुर आये आनन्द ।
वही चन्द्रगति सुत भामण्डल, वनमें क्रीडा करे अमन्द ।।
डाल चित्र उसके समीप मे, लगे देखने वे परिणाम ।
चित्र देख कर भामण्डलके, हृदय-भवन मे आया काम ।।१०१।।

यह सीता है भगिनी मेरी, नहीं उसे था इसका ज्ञान ।
हुआ चित्र पर इतना मोहित, भूल गया जिससे सब ज्ञान ।।
शिथिल हो गया गात्र सर्वथा, लेने लगा दीर्घ निश्वाश ।
योगी-सा मन धरे चित्र मे, अशन-पानसे हुआ उदास ।।१०२।।

वह कुमार चित्रस्थ सुता का, करता बारम्बार विचार ।
जहां चित्र इतना सुन्दर है, हो प्रत्यक्ष का कैसे पार ?
उस कुमार के महा मोह की, प्रसरित हुई जगत में बात ।
आये राज-भवन में नारद, बन करके बिलकुल अज्ञात ।।१०३।।

लगे पूंछने राज पुत्र से, क्यों बैठा तू व्याकुल चित्त ।
कहो व्यथा तुम अपनी सारी, दूर करूंगा मैं सब अत्र ।।
लगा पूंछने भामण्डल तब, किस की बाला, है क्या नाम ।
मिथिला अधिपति जनकराजकी, यह सीता कन्या गुणधाम ।।१०४।।

शत जिह्वा द्वारा भी इसका, कहा न जा सकता है रूप ।
हे सुत यह कन्या जगती में, सब प्रकार तेरे अनुरूप ।।
उसका रूप देखकर क्षणभर, त्रिदशनाथ भूलें निज मान ।
बना चित्र सीता का मैंने, प्रगट किया अपना अज्ञान ।।१०५।।

उस बाला को प्राप्त करोगे, है ऐसा मेरा अनुमान ।
मोहित कर उसको विशेष वे, नभ-पथ से कर गये प्रयाण ।।
अब भामण्डल व्यथित हुआ अति, धरेचित्रमें ही निज दृष्टि ।
विह्वल रहने लगा निरन्तर, शून्य भासती सारी सृष्टि ।।१०६।।

व्यथित जान उसको माता ने, कहा पिता से सारा हाल ।
दिखा चित्र उसको नारदने, किया व्यथित संप्रति विकराल ।।
बन निर्लज्ज पुत्र विनयी वह, चित्र देखता सौ सौ बार ।
पुनः पुनः करता रहता है, सीता सीता ही उच्चार ।।१०७।।

हे प्रियतम सत्वर ही इसका, सीता से करके शुभ व्याह ।
करकेखोज जनक कन्याकी, शान्त कीजिये मनकी दाह ।।
सुन सब बात चन्द्रगति बोले, हो हे सुत तू सुस्थिर चित्त ।
पूर्ण करूंगा सकल शक्ति से, तेरा मन वांछित शुभकृत्य ।।१०८।।

बोले पुनः प्रिया से अपनी, विद्याधर कन्याये छोड़ ।
भूमि गोचरीके संग अपना, उचित नहीं जचता है जोड़ ।।
करें प्रार्थना जनक राज से, और न दे वे कन्यादान ।
सर्व खेचरों के सन्मुख निज, होगा तब भीषण अपमान ।।१०९।।

किसी तरह भी बुला जनक को, यहां करें हम सारी बात ।
जिससे मङ्गलमय सुकार्यमें, हो न कभी भी विघ्न प्रपात ।।
जनकराज अपनी आंखों से, देख राज का अति विस्तार ।
हो प्रसन्न अपनी वाणी को, कर लेंगे सत्वर स्वीकार ।।११०।।

❑ ❑ ❑

खेचरपति ने बुला, एक सेवक विद्याधर ।
भेजा मिथिला ओर, प्रेम से सब समझाकर ।।
'चपलवेग' तत्काल, वेग से मिथिला आया ।
धर तुरङ्ग का रूप, महा उत्पात मचाया ।।१११।।

दिखला अपनी शक्ति, जनक ने उसको साधा ।
ले जाकर पुचकार, अस्तबल में दृढ़ बांधा ।।
एक दिवस उस जनक, भूप से बोला सेवक ।
प्रगट हुआ है विपिन, मध्य गज दिव्य अचानक ।।११२।।

उपवन के सुविशाल वृक्ष, वह क्षण में तोड़े ।
आता सन्मुख मनुज, उसे नहिं जीवित छोडे ।।
उसी अश्व पर हों सवार, आये नृप वन में,
मायावी वह अश्व, ले गया उन्हें गगन में ।।११३।।

करने लगे विलाप, शोक से सारे पुरजन ।
निज पुर आया जनक, राज को ले वह तत्क्षण ।।
आया ज्यों ही अश्व एक, तरुवर के नीचे ।
पकड़ी शाखा एक, जनक ने कर कर ऊंचे ।।११४।।

चला गया वह अश्व, नृपति आये तब भूपर ।
विस्मित मन में हुये, दृश्य उपवन का लखकर ।।
चले नगर की ओर, सोचते हैं क्या यह सब ?
जीवित ही क्या स्वर्ग लोक में, आ पहुंचा अब ।।११५।।

सन्मुख लख जिन भवन, गये वे उसमें सादर ।
हुआ प्रमोद अपार, चित्त में प्रभु दर्शन कर ।।
जान सर्व वृत्तान्त, चन्द्रगति जिनालय आया ।
आकर उसने प्रथम, ईश को शीश नवाया ।।११६।।

हे जिनेन्द्र हैं आप, विश्व के रक्षक भूपर ।
नहीं आप-सा अन्य देव, है इस जगती पर ।।
बिना शस्त्र विकराल, मोह को तुमने मारा ।
चखी आपने देव, ज्ञान-रस अमृत धारा ।।११७।।

शान्त और निर्दोष, देख आकार तुम्हारा ।
बढ़ता है आनन्द, उदधि अत्यन्त हमारा ।।
करके यों प्रभु स्तवन, जनक को सन्मुख लखकर ।
पूंछा तुम हो कौन, और किस लिये यहां पर ।।११८।।

निर्भय होकर जनकराज ने, वृत्त सुनाया ।
राजन् मायामयी, अश्वद्वारा मैं आया ।।
सुनकर सारी कथा, प्रेम से मिले परस्पर ।।११९।।

हे राजन् मैं धन्य, आपसे सम्प्रति मिलकर ।
सुना आपके, सुता, एक है रूप सुधाकर ।।
भामण्डल मम पुत्र, स्वकन्या उसको दीजे ।
स्वीकृत कर यह कार्य, आप यश जग में लीजे ।।१२०।।

सुन खेचर पति बात, जनक नृप मुख से बोले ।
कहते थे सब वचन, आप दिखते हैं भोले ।।
दशरथ सुत श्री रामचन्द्र, बलवान् अपरिमित ।
सीता उनके लिये कर चुका हूँ मै निश्चित ।।१२१।।

देने का विद्येश आप, सुनिए शुभ कारण ।
म्लेच्छों ने कर दिया, देश भरका व्याकुल मन ।।
आकरके तब उसी वीर ने, उन्हें भगाया ।
देती हैं सुख शांति, लोकको सज्जन छाया ।।१२२।।

बोले तब निकटस्थ, अन्य विद्याधर मुखसे ।
उचित आप सम्बन्ध, यहां पर कीजे सुखसे ।।
जीतें वे श्री राम म्लेच्छ, कौन-सी यहां प्रशंसा ।
की उनने बस एक, मात्र पशुओं की हिंसा ।।१२३।।

क्या है इसमें, शूरवीरता आप विचारें ?
और हमारे वाक्य, चित्त में सुख से धारें ।।
कहां विपुल बलवान, चन्द्रगति प्रिय विद्याधर ।
इनके सन्मुख तुच्छ, जानिये ये पृथिवीचर ।।१२४।।

है ऐश्वर्य अपार, यहां विद्याधर गण में ।
सुख से हम सब लोग, विचरते रहें गगन में ।।
बोले फिर मिथिलेश, राम हैं गुण के भाजन ।
उन समान नहिं यहां, दीखता है कोई जन ।।१२५।।

❑ ❑ ❑

करके मन्त्र परस्पर खेचर, बोले उनसे फिर इस भांति ।
रामतुल्य बलवान न कोई, यदि हो सत्य तुम्हारी बात ।।
वज्रावर्त धनुष है अनुपम, अन्य सागरावर्त अनूप ।
चढ़ा चाप दें शौर्य-परीक्षा, राम और लक्ष्मण बलकूप ।।१२६।।

चढा सकें यदि राम धनुष को, पाणि ग्रहण करें निशंक ।
हुए विफल तो सीता होगी, राजपुत्र भामण्डल अङ्क ।।
सुर प्रदत्त धनुषों को लखकर, हुआ जनक मनमे सन्देह ।
फिर भी वे सब स्वीकृत करके, आ पहुंचे चिंतित निज गेह ।।१२७।।

चिन्तातुर उनको लख करके, बोली प्रिया वचन सप्रेम ।
मुख पर से मैं जान रही हूँ, नहीं आपके मन में क्षेम ।।
कौन दु.ख आपड़ा आप पर, जिससे अधिक व्यथित है आप ?
कह कर हृदय-भाव सब अपना, दूर करे मेरा सन्ताप ।।१२८।।

तब सप्रेम प्रिया को उनने, सुना दिया सारा वृत्तांत ।
कर विचार वह आगत भयका, क्षणभरमें अति हुई अशांत ।।
उदित शुभाशुभ इन कर्मों पर, चलती नही मनुजकी शक्ति ।
लिखा भाग्यमें होगा जो कुछ, होगा वह, कीजे जिन भक्ति ।।१२९।।

पुर बाहर उपवन में सुन्दर, रचा स्वयंवर भवन विशाल ।
पत्र प्राप्त कर मिथिला-पतिका, राजपुत्र आये तत्काल ।।
पाकर पत्र नृपति दशरथ भी, आये निज पुत्रो के साथ ।
सन्मुख जाकर जनकराजने, किया अधिक आदर निज हाथ ।।१३०।।

दशरथ के चारो सुत सुन्दर, हैं अनुपम गुणके भण्डार ।
अन्य राज-सुत उनकी सुषुमा, देख रहे थे बारम्बार ।।
आये और अन्य देशों से, आशा धर कर राजकुमार ।
हरिवाहन, जय, भानु, भद्रबल, बैठे आसन, कर श्रृङ्गार ।।१३१।।

बोला राज पुरुष उन सबसे, दें मेरे वचनों पर ध्यान ।
हुए यहां पर एकत्रित जो, आप लोग सुन्दर, गुणवान ।।
'वज्रावर्त' चढावे जो नर, उसे मिलेगा कन्या रत्न ।
क्रम पूर्वक उठ एक एक जन, करें चढ़ाने अतिशय यत्न ।।१३२।।

देवदत्त विकराल चापसे, निकल रही थी ज्वाला घोर ।
करते थे फुंकार सर्पगण, दृष्टि न टिकती थी उस ओर ।।
चाप निकट आते ही कितने, देख उसे थे अधिक हताश ।
आगत राज-सुतों ने छोड़ी, स्वयं श्रेष्ठ कन्याकी आश ।।१३३।।

उठे राम भगवान नाम ले, पहुंचे अभय धनुष के पास ।
शांत हो गया चाप तेज सब, प्रगटा उनका पुण्य प्रभाव ।।
खीचा धनुष हाथ से उनने, हुआ शब्द तब महाप्रचण्ड ।
हुए सभी चकित निज मनमें, गिरा शैल क्या होकर खण्ड ।।१३४।।

किया शब्द देवों ने नभ मे, धन्य धन्य तुम हो हे वीर ।
धन्य धन्य है पुण्य आपका, सागर तुल्य आप गम्भीर ।।
पुष्प वृष्टि भी हुई गगन से, करने लगे देवगण नृत्य ।
हुआ सभी को विस्मय भारी, देख अलौकिक अनुपम कृत्य ।।१३५।।

आकर राम निकट सीता ने, पहरा दी निज करकी माल ।
देख दृश्य रिपुओंके मुखपर, पड़ा दिव्यताका दुष्काल ।।
चढा दिया लक्ष्मण ने सुख से, चाप कराल सागरावर्त ।
देख पराक्रम उस कुमारका, जय जय शब्द करें तब सर्व ।।१३६।।

देख रहा था लक्ष्मण का बल, वहां चन्द्रवर्धन विद्येश ।
अष्टादश खेचर कन्याये, दीं उसको उसने सविशेष ।।
राम और लक्ष्मण दिखते थे, वहां सौम्य शशि सूर्य समान ।
सुनकरके वृत्तांत सर्व यह, हुआ चन्द्रगति चिन्तावान ।।१३७।।

वचन बद्ध हो चुका प्रथम था, इससे रहा चित्त में शांत ।
विस्मित हुए भरत भी मन में, पूर्व पुण्य फल देख नितान्त ।।
हो न विर्कत भरत इस जग से, रखकर मन में यह अभिलाष ।
व्याही कनक-सुता केकई ने, सत्वर निज सुत से सोल्लास ।।१३८।।

रामचन्द्र का सीता के सह, उत्सवपूर्वक हुआ विवाह ।
सुखकारक इस राज कार्य से, प्रजा चित्त में था उत्साह ।।
मिथिलापति ने आगत सबका, किया हृदय पूर्वक सन्मान ।
करके मंगल कार्य पूर्ण तब, गये भूप गण अपने स्थान ।।१३९।।

❑ ❑ ❑

दशरथ निज पुत्रों को लेकर, अवधपुरी में आया ।
देख नरेश-पुत्र वैभव को, हर्ष सभी में छाया ।।
स्वागतार्थ उन सबके सत्वर, बजे मनोहर बाजे ।
नगर स्वयं बन करके सागर, मानों सुख से गाजे ।।१४०।।

सीता, लोक सुन्दरी को लख, सब ही पुण्य सराहें ।
योग्य वधू को अपने गृह में, यही मनुज क्या चाहें ?
निज गृहकी अमूल्य निधि जग में, होती कुल ललनायें ।
उपवनको शोभित करती हैं, कोमल सुमन लताये ।।१४१।।

एक समय अष्टाह्निक उत्तम, उत्सव गया मनाया ।
श्री जिनेन्द्र पूजा का नृपने, मण्डप रम्य रचाया ।।
आठ दिवस नित कर प्रभु अर्चा, अतिशय पुण्य कमाया ।
इस उत्सव के कारण नृपने, सबको दान दिलाया ।।१४२।।

भाव सहित अति धूमधाम से, प्रभु अभिषेक कराया ।
सभी रानियों निकट प्रेम से, गन्धोदक भिजवाया ।।
तीन प्रियायो पास त्वरित ही, तरुणी आई लेकर ।
वृद्धा एक सुप्रभा सन्निधि, पहुंची समय बिताकर ।।१४३।।

हुई व्यथित भूपति की पत्नी, आप विचारे मन मे ।
भूपति ने अपमान किया है, मेरा यों इस क्षण में ।।
सबके पास नीर शुभ भेजा, मुझे न क्यों भिजवाया ।
प्रियका इसमें दोष नहीं, मम कर्म उदय में आया ।।१४४।।

मान और अपमान जगत में, कर्म विवश ही होता ।
अटक गया है हाय पापवश, पुण्य कर्म का स्रोता ।।
कैसे हो सन्ताप शांत यह, मरण शरण है सम्प्रति ।
बुला सुप्रभा बड़े बेग से, बोली भण्डारी प्रति ।।१४५।।

प्रगट न करना गुप्त बात यह, विष से मुझे प्रयोजन ।
रानी का आदेश अटल लख, गया हाट में तत्क्षण ।।
आ पहुंचे अन्त:पुर में तब, प्रभु पूजा कर भूपति ।
गये सुप्रभा भवन प्रेमसे, देखी तब व्याकुल अति ।।१४६।।

इतने मे ही भण्डारी वह, आया विष ले करके ।
'लीजे विष' अति चकित हुए नृप, यह बाणी सुन करके ।।
बैठ सेज पर लगे पूंछने, प्रिये स्वास्थ्य है कैसा ।
बिना हेतु ही प्राणवल्लभे, उचित शेष नहिं ऐसा ।।१४७।।

जगत वस्तुओ से बढकर है, सबको जीवन प्रियतर ।
तुम्हे यहां है कष्ट कौन-सा ? मरने मे क्यों तत्पर ।।
प्रिये! दिया हो कष्ट किसी ने, तो तुम मुझे बताओ ।
अधुना करके रोष व्यर्थ तुम, हृदय न लेश दुखाओ ।।१४८।।

सुन प्रियतम के वचन मनोहर, बोली मुख से प्यारी ।
नाथ आपके द्वारा ही मैं, अपमानित हो भारी ।।
मान विना का निज जीवन यह, मुझको नहीं सुहाया ।
करने की अवसान देहका, मैंने विष मंगवाया ।।१४९।।

अन्य रानियों निकट आपने, भेजा जिन गन्धोदक ।
पर उससे हे कांत सर्वथा, वर्जित हूँ मैं अब तक ।।
कौन बात में हीन अन्य से, जिससे किया अनादर ।
उसी समय दासी आ पहुंची, जिन गन्धोदक लेकर ।।१५०।।

इतना समय लगा क्यों तुझको, क्या है इसका कारण ?
बोली हाथ जोड़कर दासी, हो करके कम्पित तन ।।
पीड़ रही है मुझको राजन्, अब वृद्धत्व भयंकर ।
टेक यष्टिका शनैः शनैः, आई हूँ जल लेकर ।।१५१।।

परिवर्तनमय सकल विश्व है, बदली मेरी काया ।
रहती नहीं लेश सुध-बुध भी, काम किया क्या खाया ?
एक दिवस था, सर्व कार्य मैं, दौड़ दौड़ कर करती ।
आज मुझे अपनी आंखों से, दिखे न पगकी धरती ।।१५२।।

यौवन में मेरा शरीर यह, रति समान था सुन्दर ।
किन्तु आज इसका धारण ही, लगता मुझे भयङ्कर ।।
लख उसकी परवशता नृपने, रानी को समझाया ।
कहकर वचनावली मनोहर, उसने उसे मनाया ।।१५३।।

जनक-नन्दिनी नही मिली जब, हुआ व्यथित भामण्डल ।
बोला उसका हरण करूंगा, केवल अपने ही बल ।।
चला साथ में ले करके वह, थोड़े से विद्याधर ।
आ पहुचा सुख से विमान में, जहाँ पूर्व-भवका पुर ।।१५४।।

देख नगर को उसने अपना, पूर्ववृत्त सब जाना ।
दबा लिया आकर के उसको, मूर्च्छा ने मन माना ।।
हुआ मूर्च्छित क्यों भामण्डल, समझ न कोई पाया ।
ले उसको समुदाय सभी ही, पुरमें वापिस आया ।।१५५।।

पाई उसने आत्म चेतना, पर न किसी से बोले ।
लज्जावश नत मस्तक बैठा, हृदय न अपना खोले ।।
कहे पिता हे वत्स विकट यह, लखकर दशा तुम्हारी ।
सम्प्रति तेरे प्रबल दुःख से छाती फटे हमारी ।।१५६।।

यदि विवाह की ही इच्छा है, लाऊं सुन्दर बाला ।
पुत्र एक सीता के पीछे, बनता क्यो मतवाला ?
लज्जित भामण्डल निज मुख से, बोला तत्क्षण वाणी ।
नही ज्ञात है तात आपको, मेरी पाप कहानी ।।१५७।।

दुर्विचार कर महा मोह से, मैंने पाप कमाया ।
सीता मेरी भगिनी पूज्य है, मैं यह जान न पाया ।।
मेरा उसका जन्म हुआ है, युगपद एक उदर से ।
जन्म समय ही किसी असुर ने, हरा मुझे निज घरसे ।।१५८।।

पूर्व-जन्म वृत्तान्त सुनाया, सबको वहां सविस्तर ।
हुआ सभी परिजन विस्मित अति, पूर्व-कथाको सुनकर ।।
खेचर नाथ चन्द्रगति मन में, तजकर भोग पिपासा ।
जैनेश्वरी दिव्य दीक्षा की, करें प्रबल अभिलाषा ।।१५९।।

आये विद्याधरों सहित वे, अवधपुरी उपवन में ।
भाव सहित वन्दन कर गुरुको, मुदित हुआ निज मनमें ।।
भव-तारक दीक्षा धारण की, भूषण वसन उतारे ।
जय जय शब्द सहित उपवनमें, बजने लगे नगारे ।।१६०।।

जनक-पुत्र जयवन्त रहे नित, घोष हुआ यह भारी ।
सुनकर उत्सव का कोलाहल, जाग उठे नर नारी ।।
सीता भी सुन 'जनक-पुत्र' को, उठी नीद को तजकर ।
करके याद बन्धुकी, उसका, दुःखसे गया हृदय भर ।।१६१।।

रोती देख राम ने उसको, प्रेम सहित समझाया ।
उसी समय दशरथ नरेशतट, उपवन रक्षक आया ।।
मुनिवर अनन्तवीर्य को प्रगटा, केवल ज्ञान दिवाकर ।
आये हैं उपवन में राजन्! अगणित सुर, विद्याधर ।।१६२।।

आया भक्तिभाव से वह नृप, विपिन महेन्द्र उदय में ।
देख केवली की आंखों से, प्रमुदित हुआ हृदय में ।।
उसी सभा मे बैठे दशरथ, शोभित था भामण्डल ।
दिव्य तेजसे वह लगता था, शशि समान मुखमण्डल ।।१६३।।

आत्म ध्यान में चन्द्रगति मुनि, करे शुद्धि निज प्रति क्षण ।
जला रहा था ध्यान अनल से, कर्मरूप भीषण वन ।।
केवल ज्ञानी का बोधामृत, पीकर तृप्त हुए सब ।
क्यो मुनि हुआ ईश ? खेचरपति, पूंछे दशरथ यों तब ।।१६४।।

तब प्रभु ने निज दिव्य ज्ञान से, सारी कथा सुनाई ।
जान हुई पुलकित वह सीता, भामण्डल मम भाई ।।
विविध रङ्ग मय जान जगत को, हुआ साधु विद्याधर ।
उसी समय भामण्डल पूंछे, हाथों को मस्तक धर ।।१६५।।

खेचर जनक और जननी की, मुझ पर प्रीति अधिकतर ।
क्या कारण इसका है मुनिवर, सुनना चाहूँ सत्वर ।।
बोले साधु पूर्व भवके ये, माता-पिता तुम्हारे ।
इसीलिये इन दोनों को हो, इस भव में भी प्यारे ।।१६६।।

दास नगर वहाँ द्विज विमुची, अनुक्रोशा तद् नारी ।
उनके है अनुभूत पुत्र प्रिय, 'सरिसा' रूप दुलारी ।।
रहा 'कयान' बिप्र उस पुर में, धनकी आशा धरकर ।
चला गया माता को तज कर छलसे सरिसाकों हर ।।१६७।।

महादुखी अनुभूत प्रिया को, चला खोजने भूपर ।
रहा सहा भी वित्त विप्रको, चुरा ले गये हर कर ।।
व्यथित हुई अनुक्रोशा इससे, सूना हुआ सकल घर ।
उसी समय आ पहुंचा नमुची, घूम घाम देशान्तर ।।१६८।।

करके कथा श्रवण निज गृहकी, हुआ दुखित वह दुख से ।
आई तब कयान मां 'ऊर्या' बोली अपने मुख से ।।
किया महा अन्याय पुत्र ने, हर करके सरिसा को ।
प्राप्त किया है उसने तुमको, दुःखमय तीव्र दशाको ।।१६९।।

गया विमुचि ग्रामांतर सत्वर, करने को अन्वेषण ।
मिला न दोनों में से कोई, भटका वह बहु पुर, वन ।।
तब उदास होकर जगती से, मुनिव्रत उत्तम धारा ।
दुःखसे बचने का अपूर्व है, संयम प्रबल सहारा ।।१७०।।

ऊर्या सह अनुक्रोशा भी तब, गृह प्रपंच को तजकर ।
करने लगी कठिनतर तपको, शुद्ध आर्यिका बनकर ।।
तीनों जीव स्वर्ग में पहुंचे, कर संयम आराधन ।
विमुचि पुत्र अतिमूत दुष्टने, किया कुमार्ग समर्थन ।।१७१।।

रौद्र ध्यान रत द्विज 'कयान' भी, गया कुमति में मरकर ।
बनमें हुई मृगी सरिसा वह, मानव भवको तजकर ।।
वन में फिरती रहे अकेली, डरती अति निज मनमें ।
चित्तोत्सवा हुई हरणी वह, जलकर दावानल में ।।१७२।।

तज कयान अपने शरीर को, हुआ उष्ट्र तनधारी ।
उष्ट्र-देह से निकल हुआ वह, पिंगल नर अविचारी ।।
सरिसा-पति अतिमूत भ्रमणकर, हंस हुआ था सुन्दर ।
किया बाजने उसको घायल, पड़ा साधु तट आकर ।।१७३।।

मुनि-मुखसे सुन मन्त्र मनोहर, हंस हुआ मर, किन्नर ।
कुण्डलमण्डित हुआ धरापति, किन्नर निज भव तजकर ।।
विमुचि जीव है चन्द्रगती यह, पुष्पवती अनुक्रोशा ।
पूर्व जन्म की प्रबल प्रीति से, उनने तुमको पोषा ।।१७४।।

पिंगल हुआ कयान भ्रमणकर, धर करके फिर मुनिव्रत ।
कष्ट सहन करने से उसको, मिली देवकी सम्पद् ।।
पूर्व वैर वश उस पापी ने, हरा जनक सुत तत्क्षण ।
वह ऊर्या चय देवलोक से, हुई विदेहा शुभमन ।।१७५।।

सुनकर कथा भूमिपति दशरथ, भामण्डल तट आया ।
मिल करके अत्यन्त प्रेमसे, दोनों ने सुख पाया ।।
पुलकित हुआ मैथिली का तन, हर्ष दृगों में छाया ।
खोये हुये बन्धु को उसने, बहुत दिनों में पाया ।।१७६।।

मिले राम-लक्ष्मण भी उससे, मुदित हृदय हो करके ।
उत्सव किया भूपने अतिशत, पुर में ले जा करके ।।
जनक समीप भेज विद्याधर, सत्वर उन्हें बुलाया ।
समाचार पाकरके सुतके, मनमें हर्ष मनाया ।।१७७।।

सोचे जनक बात है यह क्या ? खोज जिसे सब हारे ।
वही पुत्र स्वयमेव पधारा, उघड़े भाग्य हमारे ।।
भाग्यवान लख आत्म पुत्र को, जनक हृदय खिल आया ।
नहीं हर्ष का रहा ठिकाना, मानों निधि को पाया ।।१७८।।

वीर पुत्र भामण्डल से आ, मिली विदेहा माता ।
देख पुत्र को उसने मनमें, पाई अनुपम साता ।।
एक मास सब रहे वहीं पर, सुखसे समय बिताते ।
पुनः पुनः मिलकर जीवन के, नूतन वृत्त सुनाते ।।१७९।।

❑ ❑ ❑

(सर्ग ७)

'सर्वभूति हित' मुनि दर्शनसे, दशरथ क्षितिपति हुए प्रसन्न ।
नाथ, आप आत्मीय गुणों से, सब प्रकारसे हैं सम्पन्न ।।
जगके इस विकराल भ्रमण से, जीव आज है मेरा श्रान्त ।
हो कैसे अब अन्त भ्रमणका, कहें आप सदुपाय नितान्त ।।१।।

कहने लगे वचन करुणामय, वे ऋषिवर पीयूष समान ।
लोक भ्रमणका प्रबल हेतु है, जीवों को अपना अज्ञान ।।
मिलता इस चेतन को जो तन, करके उस में ममता घोर ।
जीवन पूर्ण करे रत रहकर, ध्यान न दे शिवपथकी ओर ।।२।।

इन्द्रिय-विषय तिमिर वश प्राणी, बना हुआ है भारी अन्ध ।
नहीं जोड़ पाता है इससे, मुक्ति कारणों से सम्बन्ध ।।
मन मोहक द्रव्यों पर इसका, बना हुआ है अतिशय राग ।
सुनकर भी उपदेश सुगुरुका, रुचता नहीं इसे शुभ त्याग ।।३।।

तप द्वारा सब कर्म काटकर, हुए आज तक अगणित सिद्ध ।
वे आत्मीय सुखस्थ सर्वथा, नही वहाँ है भाव विरुद्ध ।।
मोहनीय का उदय जिन्हें है, वे न करें जिन-वचन प्रमाण ।
निकट भव्य को ही होता है, सच्चा जिनवाणी श्रद्धान ।।४।।

पा करके इस मानव भवको, करो त्वरित अपना कल्याण ।
बिना मनुज भव अन्य भवों से, कभी नहीं होता निर्वाण ।।
राजन् सुनो पूर्व भव अपने, हो जिससे निज आत्म प्रतीति ।
मुक्ति मार्ग में उद्यत होकर, छोड़ो पर द्रव्यों की प्रीति ।।५।।

नगर हस्तिनापुर में पहले, था 'उपास्ति' नामक धनवान ।
गृहमें रही दीपिनी गृहिणी, अतिशय ईर्ष्यालु अज्ञान ।।
करे साधुओं की निन्दा नित, दे न कभी वह उनको दान ।
पाप कर्म में रक्त रहे मन, करे न विज्ञों का सन्मान ।।६।।

मोह कर्म के तीव्र उदय से, फिरती फिरे दीर्घ संसार ।
पर 'उपास्ति' कर पुण्य उपार्जन, पाता हुआ मनुज अवतार ।।
'धारण' नाम धरा तब उसका, सरल हृदय दानी विद्वान् ।
नयन सुन्दरी नाम कामिनी, थी उसकी सौन्दर्य निधान ।।७।।

धरण भोग धरती में उपजा, देकर मुनियों को शुभ दान ।
पुण्य कार्य जगके जीवों को, करते अतिशय सौख्य प्रदान ।।
तीन बल्य आयुष्य भोगकर, गया वहां से वह सुरलोक ।
चय कर पृथुलावती पुरी में, हुआ नन्दिवर्धन गुण लोक ।।८।।

नन्दि घोषने राज्य पुत्र को, देकर वन में किया प्रवेश ।
रहकर भवन नन्दिवर्धन तब, करे राज्य सुखसे निःशेष ।।
अन्य समय में तज शरीर को, प्राप्त किया पंचम सुर ठाम ।
है पश्चिम विदेहमें पर्वत, जहां नगर शशिपुर सुखधाम ।।९।।

रत्नमाली है बली धरापति, विद्युल्लता प्रिया सुख रूप ।
च्युत होकर वह देव स्वर्गसे, हुआ इन्हींके सुत अनुरूप ।।
कहलाया वह पुत्र 'सूर्यजय', रहे सदन में नित साराम ।
सिंह-पुरस्थ बज्रलोचन से, गया जनक करने संग्राम ।।१०।।

लड़ने लगे परस्पर दोनों, हो करके मन में अतिक्रुद्ध ।
हुआ वहां शस्त्रों के द्वारा, दीर्घकाल तक भीषण युद्ध ।।
देख युद्ध में तन्मय उनको; अमर एक आया तत्काल ।
शांत चित्त हो रत्नमालि तू, कहें पूर्वभवका सब हाल ।।११।।

है गांधारी पुरी भरत में, राजा 'भूति' पुरोहित 'मन्य' ।
आमिष त्याग साधु तट नृप ने, अपने को माना अति धन्य ।।
तुड़वा दिया नियम उस द्विज ने, समझाकर नृप को विपरीत ।
मरे शत्रुओं द्वारा दोनों, दुःखप्रद होती सदा अनीति ।।१२।।

हुआ द्विरद मर अधम पुरोहित, हुआ गिद्ध करते वह युद्ध ।
हुआ शान्त कुछ अपने मन में, सुनकर 'णमोकार' सुविशुद्ध ।।
हुआ पुण्यवश द्विरद राज सुत, तजकर सभी राजसी भोग ।
साधु समीप प्राप्त होकर के, धारण किया जैन शुभ भोग ।।१३।।

गया स्वर्ग में शान्त भाव से, तजकर के निज क्षणिक शरीर ।
वही पुरोहित जीव देव मैं, अपना चरित सुनो तुम वीर ।।
छोड़ 'भूति' भव मृग में पहुंचे, मरे वहां दावानल बीच ।
पूर्व-पुण्य था शेष इसी से, हुये कलिंज नाम नर नीच ।।१४।।

पहुंचे नरक दूसरे में तुम, करके यहाँ बहुत से पाप ।
नरक भूमिमें समझाया था, हो न तुम्हें जिससे सन्ताप ।।
निकल वहां से हुआ आज तू, रत्नमालि खेचर बलवान ।
करता क्यों न विचार हृदयमें, कृत्य करें क्यों नरक निदान ।।१५।।

सुनकर अपने पूर्व भवो को, खेचर सुत सह हुआ विरक्त ।
किया धर्म आराधन अतिशय, रखकर के उसमें दृढ़ चित्त ।।
'सर्वभूत हित' बोले राजन्, तजकर के दशवा सुरलोक ।
हुए अरण्य पुत्र तुम दशरथ, देती प्रजा तुम्हे नित धोक ।।१६।।

है उपास्तिका जीव भूप तू, तद्भव पिता साधु व्रत धार ।
हुआ आज मैं सर्वभूत हित, छोड़ सकल संसार असार ।।
गया देह तजकर ग्रैवेयक में, भोग वहां का सौख्य अपार ।
'भूत' जीव जो रत्नमाली था, हुआ 'जनक' गुणका आधार ।।१७।।

पूर्व पुरोहित जीव हुआ है, जनक भूप का 'कनक' सुबन्धु ।
नही यहां निज और पराया, है कराल अतिशय भव सिन्धु ।।
होकर कर्म विवश यह चेतन, पाता रहता कष्ट अनन्त ।
वीतराग-पथ के प्रभाव से, आता है कर्मों का अन्त ।।१८।।

आकर दशरथ नृपति सदन में, मन मे करने लगे विचार ।
जहां देखिए त्रिविध तापमय, दिखता है सारा संसार ।।
सुखी नहीं कोई भूतल में, इन्द्र, चन्द्र, आदित्य, नरेश ।
मोह-विवश पाते रहते हैं, निज जीवन भर नाना क्लेश ।।१९।।

पुण्योदय वश पाता प्राणी, विषय इन्द्रियों के अनुकूल ।
उनके सुख में रक्त हुआ ही, जाता है अपने को भूल ।।
राज-पाट का मोह छोड़ कर, करूं न क्यों अपना कल्याण ।
पर-पदार्थ की चिन्ताओं से, होता कर्म बन्ध बलवान ।।२०।।

द्वारपाल को भेज बुलाया, सचिव सहित सेना अधिराज ।
बोले शान्त नृपतिवर उनसे, नहीं मुझे अब भवसे काज ?
अब विचरूंगा एकाकी मैं, वन में, तज भव वर्द्धक भोग ।
विनाशीक हैं वैभव सारा, भरे हुए हैं तन में रोग ।।२१।।

श्रमण-कथा मैंने गुरु मुखसे, सुनी पूर्वकी अपनी अद्य ।
भव-समुद्र तिरने को सत्वर, करूं आचरण मैं निरवद्य ।।
तोड़ विश्व के बन्धन सारे, प्राप्त करूंगा आत्म-समृद्धि ।
की अब तक अज्ञान विवश ही, अपने हाथों से भव वृद्धि ।।२२।।

सुन नृप की वैराग्य भावना, हुआ सभी के मन को खेद ।
कहा रानियों से भी नृप ने, शीघ्र करूंगा मैं भव छेद ।।
वचन वज्र से आहत होकर, राज रानियां करें विलाप ।
ललनाओं के मृदुल हृदय को, पति वियोग देता सन्ताप ।।२३।।

निश्चय जान पिता का तत्क्षण, हुआ भरत को भी वैराग्य ।
बोले जनक साथ ही मैं भी, करूं सर्व सम्पत्तिका त्याग ।।
कान्त और सुत के विचार से, हुई कैकई व्यथित अपार ।
रोक सकू कैसे मैं सुत को, लगी सोचने बारम्बार ।।२४।।

आई निकट प्राणपति सविनय, करके स्मरण पूर्व वरदान ।
बोली हाथ जोड़कर उनसे, नाथ ! कीजिये वचन प्रदान ।।
नृप ने कहा मांग ले मुख से, तू अपनी इच्छा अनुसार ।
जगती तल में वीर नरों के, वचन नहीं होते निःसार ।।२५।।

हो विरक्त भव-भोगों से जब, छोड़ रहे प्रभु यह संसार ।
करके कृपा भरत को दीजे, आप राज्य का शासन भार ।।
देख, देखकर के प्रिय सुत को, टिका सकूंगी अपने प्राण ।
सुत, स्वामी ये दोनों ही तो, नारी के आधार महान् ।।२६।।

शुभमने ! अब दिया भरत को, मैंने अपना राज्य विशाल ।
आत्म-साधनामें लेकिन तू, लेश विघ्न सम्प्रति मत डाल ।।
बुला राम-लक्ष्मण को सत्वर, सुना दिया उनको सब वृत्त ।
पिता वचन से दुखित न होकर, हुए बन्धुद्वय हर्षित चित्त ।।२७।।

वत्स ! तुम्हारी इस माता ने, किया युद्ध में मम उपकार ।
मांग आज वर अपने मुख से, किया हृदय निशङ्क अपार ।।
राज्य-भार यदि दूं न भरत को, वचन भङ्ग से हो अपकीर्ति ।
दृढ़ प्रतिज्ञ मानव की जाती, स्वर्ग लोक तक उत्तम कीर्ति ।।२८।।

तुम्हें न देकर राज्य पुत्र मैं, करता हूँ अतिशय अन्याय ।
रहे भरत निज राजभवन मे, इस बिन कोई नही उपाय ।।
भागवान् अतिशय दोनों तुम, व्यथित हृदय हैं कहते बात ।
दुविधा में पड़कर सम्प्रति मैं, कैसे सहें दुःख आघात ।।२९।।

बोले राम नम्र होकर के, धरकर जनक चरण में दृष्टि ।
वही कीजिए तात हर्ष से, हो न आपको जिससे कष्ट ।।
योग्य पुत्र है वही जगत में, चलता जो गुरुजन अनुकूल ।
मेरी चिन्ता पूज्य आपके, धर्म ध्यान में बनें न शूल ।।३०।।

बढे आपकी कीर्ति विश्व में, पुत्रों को इससे आनन्द ।
आप हमारी चिन्ता तज कर, राज्य भरत को दे सानन्द ।।
हो अपकीर्ति आपकी जिससे, वह सुर-वैभव तक है व्यर्थ ।
भरत हमारा है बांधव लघु, होगा इससे नही अनर्थ ।।३१।।

पुत्र शब्द के योग्य पुत्र वह, होता जिससे पिता पवित्र ।
अन्य सर्व माने जाते हैं, पूर्व-जन्म के एक अमित्र ।।
होता था जिस समय भवन मे, पिता पुत्र का वार्तालाप ।
उसी समय निज रम्य सदनसे, भरत वहाँ पर आया आप ।।३२।।

लगा हृदय से उसे नरेश्वर, बोले मुख से वे इस भाति ।
पालन करो प्रजा का सुख से, मुझे पुत्र लेने दो शांति ।।
मैं भी चलूं तपोवन सत्वर, नहीं राज्य की मुझ को चाह ।
पड़कर के इसकी खट-पट मे, भूले मनुज मुक्ति की राह ।।३३।।

त्याग रहे हैं आप जिसे अब, मुक्ति-पंथ में दुःख प्रद जान ।
तो अपने इस प्रिय बालक को, कैसे करते आप प्रदान ?
कुछ दिन करो राज्य तुम सुख से, बोले यों साकेत नरेश ।
भोग योग्य तेरी काया है, जैन प्रवज्या में है क्लेश ।।३४।।

बोले भरत-पूज्यवर जग में, मृत्यु सभी के लिये समान ।
नहीं देखता मरण किसी को, बालक, वृद्ध, मूढ़, विद्वान ।।
नरकों में रहकर चेतनने, सहे निरन्तर कष्ट अपार ।
दीक्षा में उतना न दुःख है, वह है समता रस की धार ।।३५।।

क्लेश न होगा उसमें मुझको, राज मुझे लगता है भार ।
है अनित्य, अशरण, दुःखदायक, लक्ष वार भीषण संसार ।
मुझे न रोकें पूज्य आप अब, सद्य लीजिये अपने साथ ।
इस महान संसार उदधि में, नहीं छोड़िये मेरा हाथ ।।३६।।

हुए बहुत उत्तर प्रत्युत्तर, बोले तब दशरथ गुणवान ।
बनो कौशलाधीश वत्स तुम, करके मेरा वचन प्रमाण ।।
हस्त ग्रहण कर बन्धु भरत का, बोले मधुर वचन श्री राम ।
करो राज्य तुम तात वचन से, रहे कीर्ति जिससे अभिराम ।।३७।।

मै तो सम्प्रति अवध त्याग कर, वस्त करूंगा वन मे वास ।
मेरे द्वारा किसी तरह से, लेश न होगा तुमको त्रास ।।
भरत अनुज को समझा करके, करने प्रस्तुत हुए प्रयाण ।
गमन देख वन प्रति सुपुत्र का, हुये महीपति मूर्च्छावान ।।३८।।

तब सत्वर परिजन के द्वारा, किया गया उनका उपचार ।
हो सचेत, तब चले गये नृप, करने को अपना उद्धार ।।
जननी निकट राम के आकर, सविनय उसको किया प्रणाम ।
दो आज्ञा परदेश गमन की, इसीलिये आया यह राम ।।३९।।

चिन्ता आप न करना माता, बना कही वन मे आवास ।
शीघ्र बुलाऊंगा मैं तुमको, रखें आप मन मे विश्वास ।।
सब वृत्तान्त ज्ञात है तुमको, कहकर क्यों दूं अतिशय क्लेश ।
नही योग्य जचता है मेरा, रहना मुझको यहां विशेष ।।४०।।

रहते हुये नगर मे मेरे, शासन करे भरत भूपाल ।
होगा तो उत्पन्न प्रजा में, पक्षापक्ष महा विकराल ।।
जाने में हैं महा कुशलता, रहने में हैं बन्धु विरोध ।
करके भ्रमण बहुत देशों में, मुझे मिलेगा सुन्दर बोध ।।४१।।

लगा हृदय से माता उनको, बोली अश्रु सहित हे पुत्र ।
निराधार कर जाता है अब, तू ही है आधार पवित्र ।।
देख देख किसको आँखों से, अमृतमय होगा सन्तोष ।
आया क्यों इस विकट समय में, पूर्व जन्म का मेरा दोष ।।४२।।

तेरे पिता गये तू भी जा, बढ़ा रहा दुख पारावारा ।
दुःखदायक हो गया सर्वथा, मेरे लिए आज संसार ।।
जननी का सर्वस्व पुत्र है, रहा कौन मेरा आधार ।
अब अपना जीवन ही मुझको, सब प्रकार से लगता भार ।।४३।।

बोले राम भक्ति से उनसे, चिन्ता तजो सर्वथा मात ।
बीत जायगी अल्प समय में, सारी ही ये दुःख की रात ।।
पद पद पर सर्वत्र मार्ग में, विकट निशित कंटक पाषाण ।
नहीं उचित इससे तुमको है यह अयोग्य भीषण प्रस्थान ।।४४।।

सुमरो प्रभुको सदा चित्त में, होंगे सब दुःख चकना चूर ।
हे माता क्षणभर भी तुझको, नहीं करूंगा मन से दूर ।।
कर प्रणाम गुरुजनको सुखसे, चली जानकी प्रियतम के साथ ।
पया एकाकी रहे चन्द्रिका, कभी छोड़ निज रजनी-नाथ ।।४५।।

प्रस्तुत यों अवलोक राम को, और जान कर सारा हाल ।
हुआ वीर लक्ष्मणका मुख तब, महा कोपवश अति बिकराल ।।
मान तुच्छ स्त्री वचनों को, किया पिता ने नहीं विचार ।
सौंप किया अन्याय सर्वथा, भरत बन्धुको कौशल भार ।।४६।।

ज्येष्ठ बन्धु श्री राम हमारे, हैं उदार कोमल परिणाम ।
शान्त हो गया पल भरमें वह, हो न कलंकित जिससे नाम ।।
राम सङ्ग मैं भी जाऊंगा वन में तज सब राज विलास ।
उन बिन शून्य लगेगा मुझको, मनुज पूर्ण क्षितिपति आवास ।।४७।।

अग्रज साथ विपिन में रहकर, मुदित सहूँगा सारे कष्ट ।
भोग और उपभोग मनोहर, बन्धु विरह में मुझे न इष्ट ।।
सुख से रहो वत्स निज गृह में, कहा राम ने बारम्बार ।
किन्तु मेरु-सम रहा अकम्पित, नारायणका दृढ निर्धार ।।४८।।

राम जानकी, लक्ष्मण तीनों, चले अयोध्या नगरी त्याग ।
कहते मनुज परस्पर मुख से, उदय हुआ नगरी दुर्भाग्य ।।
चला जा रहा बन्धु साथ जो, धीर वीर लक्ष्मण है धन्य ।
है विस्मय-प्रद सर्व लोक को, इसकी अग्रज प्रीति अनन्य ।।४९।।

तजकर भोग विलास राज्य के, अपनाया है दु:ख का पन्थ ।
हो दु:ख में जो आप सहायक, कहलाते जग मे वे सन्त ।।
चली जा रही नाथ सङ्ग यह, जो सीता अतिशय सुकुमार ।
स्वामि-भक्तिवश किया प्रेम से, कानन का सब कष्ट प्रचार ।।५०।।

राज-सदन को छोड़ जानकी, वन को मान रही सुखरूप ।
महिलाओ की सकल क्रियायें, होती हैं पति के अनुरूप ।।
होती जो भयभीत चित्त में, देख भित्तिमें कपि-का चित्र ।
वही नाथ के साथ फिरेगी, वन मे ही निर्भय सर्वत्र ।।५१।।

वैदेही आदर्श विश्व में, धन्य धन्य इसका अवतार ।
जो कर्तव्य निभाने को निज, छोड रही सुखमय संसार ।।
जो कुछ होता है भविष्य में, वैसे मिल जाते संयोग ।
विज्ञ हर्ष से सहते हैं सब, व्यथित रहें सब कायर लोग ।।५२।।

कहां गये हैं देव नगर के, देख रहे क्यों अत्याचार ।
व्यथित हृदय मानवगण मुख से, करते बारम्बार पुकार ।।
चले राम के साथ सहस्रों, तज तज कर अपना परिवार ।
करे निषेध राम उन सबको, समझाकर धर प्रेम अपार ।।५३।।

देख सका यह दृश्य न दिनकर, चला गया अस्ताचल आप ।
व्याप्त हो गया तिमिर भयङ्कर, बढ़ा और मानव सन्ताप ।।
गये राम अर नाथ भवनमें, करके प्रभु को दिव्य प्रणाम ।
एक ओर रह उसी सदन में, रजनी समय किया विश्राम ।।५४।।

रहे वहां कुछ निद्रा लेते, बीती ज्योंही आधी रात ।
तीनों ही चल पड़े भवन से, हो न किसी को जिससे ज्ञात ।।
गमन गुप्त रह सकता कैसे, सबने लिया उसे झट जान ।
दौड़ पड़े पीछे सब पुरजन, ले निज घोटक, रथ, गज, यान ।।५५।।

मिले राम उन सबको पथ में, जान प्रजा का प्रेम अपार ।
बोले वचन सुधा सम अनुपम, आना यों सारा निःसार ।।
आप लोग सब लौट जाइये, नहीं गमन का कीजे कष्ट ।
सब प्रकार से जान लीजिये, मुझको विपिन भूमि है इष्ट ।।५६।।

मुझ समान ही मान भरत को, पालें सब उसका आदेश ।
मेरे इस कानन प्रयाण से, आप लोग कीजे मत क्लेश ।।
मुदित हृदय हो रहा हमारा, देख आप लोगों की प्रीति ।
रहें आप सब प्रेम भाव से, ग्रहण न करना अनुचित रीति ।।५७।।

आये फिर भी साथ साथ सब, परियात्रा अटवी विकराल ।
विदा मांग ली सबने उनसे, चरणोंमें दृग जलको डाल ।।
देख सामने जलमय सरिता, किया राम ने शीघ्र प्रवेश ।
नाभि प्रमाण होगया विधि-वश, जल उसका क्षणभर निःशेष ।।५८।।

हस्त ग्रहण कर वैदेही का, शनैः शनैः चलते है राम ।
प्रीति सहित फिर रहे धरा पर, साथ साथ मानो रति-काम ।।
निर्विकार लक्ष्मण उनके सङ्ग, चला जा रहा इन्द्र समान ।
बन्धे हुये थे पृष्ठ भाग पर, जिसके सुन्दर तीर कमान ।।५९।।

विधि का दृश्य देख बहुतों ने, जान लिया संसार स्वरूप ।
धरा भावसे मुनिपद अनुपम, तिरने को दुखमय भवकूप ।।
तज न सके जो गेहाश्रम को, निज मन में पर हुये विरक्त ।
दिखलाता यह दृश्य मनुजको, सब प्रकार है विश्व अनित्य ।।६०।।

दीक्षित नृपति श्रीमान दशरथ, दिव्य तप करते हुये ।
लेकिन प्रणय-वश राम में, निज चित्त को धरते हुये ।।
करते निशंक विहार वे, विकराल बन उद्यान में ।
आया अपरिमित काल का, यह मोह बन्धन ध्यान में ।।६१।।

परिवार की यह नेह ही, संसार दुःख का भूल है ।
रखता हृदय में मैं उसे, कैसी भयङ्कर भूल है ।।
इस जीवन संसार में, सम्बन्ध सबसे है किया ।
आश्चर्य अब तक भी नहीं, इसका अघाया है हिया ।।६२।।

कर पुण्य नाना भांति के, सुख स्वर्ग के भोगे सभी ।
हा ! नर्क या तिर्यंच के, विकराल दुःख भोगे कभी ।।
चिरकाल तक अनुकूल, विषयों में प्रवृत्ति भी रही ।
पर चित्त में इससे भयङ्कर, मोह की सरिता वही ।।६३।।

यह मोह ही संसार में, सबको घुमाता सर्वथा ।
अब विस्मरण ही योग्य है, उस राम की सारी कथा ।।
षट्-द्रव्य मय यह लोक मुझसे, भिन्न है सब भांति से ।
निर्वाण पद मिलता सहज में, एक आत्मिक शान्ति से ।।६४।।

है वस्तुये सब ही सुलभ, दुर्लभ सदा निज ज्ञान है ।
होती उसीसे नित्य प्रति, भव-बन्धनों की हानि है ।।
दशरथ महामुनि मोह, तज यों चिन्तवन करते हुए ।
ससार की दुःख रूप ममत, सर्वथा हरते हुये ।।६५।।

इस ओर कौशल्या, सुमित्रा के, न दुःख का पार था ।
पति, पुत्र दोनो ही गये, उनका न कुछ आधार था ।।
देखा भरत ने अश्रुओ से, आर्द्र मुख उनका यदा ।
विष तुल्य ही दिखने लगा, निज राज्य पद उसको तदा ।।६६।।

यद्यपि नृपतिगण भक्ति से, सेवा करें मेरी सही ।
पर राम-लक्ष्मण के बिना, इस राज्य की शोभा नहीं ।।
तज राज्य वैभव राम वे, फिरते फिरे सारी मही ।
मै भोग भोगू प्रेम से, धर्मज्ञता क्या है यही ? ।।६७।।

कैसे चलेगी जङ्गलो मे, जानकी रथ के बिना ।
दुःख सोच उसका राज्य की, मुझको नहीं है कामना ।।
दुःख से विकल रणवास में, उन रानियों को देख के ।
अति शोक से संतप्त मन में, मृत्यु उनकी लेख के ।।६८।।

बोली भरत से केकयी, तुम राम-तट लाओ अभी ।
करके प्रसन्न स्वबन्धु को, पुर में पुनः जाओ अभी ।।
मै भी तुम्हारे साथ, उनके पास सम्प्रति आ रही ।
अवलोक कर गृह-क्लेश, यह मन में उदासी छा रही ।।६९।।

लेकर सहस्र तुरंग उत्तम, वह भरत सत्वर चला ।
इस राज्य के ही त्याग में, उसने स्वयं माना भला ।।
अवलोकते कानन सकल, उत्सुक भरत आये वहां ।
तीनों जनें बैठे हुए थे, शुभ सरोवर तट जहां ।।७०।।

सत्वर उतर कर अश्व से, जाकर भरत उनको नमा ।
हे नाथ ! अपना जान करके, कीजिए मुझको क्षमा ।।
दे राज्य की क्यों आपने, मेरी कराल विडम्बना ।
सब राज्य नरकावास-सा, है आप लोगों के बिना ।।७१।।

हे पूज्य, मुझको राज्य की लवलेश भी इच्छा नही ।
निज बन्धुओं बिन यह विभव, लगता मुझे अच्छा नहीं ।।
करके कृपा चलिये सदन, है प्रार्थना मेरी यही ।
आई उसी क्षण केकयी, रोती हुई बोली यही ।।७२।।

वत्सो उठो सत्वर चलो गृह, वन महा विकराल है ।
तेरे बिना सारी प्रजा, अत्यन्त पीड़ित हाल है ।।
हम नारियों की बात पर, मत ध्यान अपना दीजिये ।
अपराध जो मुझसे हुआ, उसको क्षमा कर दीजिये ।।७३।।

हे वत्स, सब तुम जानते, मैं क्या कहूँ अपनी कथा ।
तुमको यहां इस भांति लख, होती मुझे भारी व्यथा ।।
श्री राम तब कहने लगे, सब बात मे तुम दक्ष हो ।
संसार में कुलवान का, सर्वत्र ही शुभ लक्ष्य हो ।।७४।।

अपने पिता की बात, मुझको प्रेम से है मानना ।
कल्याण उसमें हैं, तुम्हे भी चाहिये यो जानना ।।
भैया भरत जाके नगर मे, राज्य तुम सुख से करो ।
लेकिन हमारी ओर से, शका नहीं मन मे धरो ।।७५।।

जो गुरुजनो ने प्रेम से तुमको दिया आदेश है ।
उसका निभाना न्याय से, निज धर्म दिव्य विशेष है ।।
आगत नृपों को प्रेम से, बैठा निकट निज सामने ।
राज्याभिषेक किया भरत का, हाथ से उन राम ने ।।७६।।

निज सिर नमा केकई पदों में, प्रेम से रहियो सभी ।
निज पुत्र मुझको जानकर के, याद भी करियो कभी ।।
हो पूज्य कौशल्या सदृश, हे मात तुम मेरे लिये ।
नहिं अन्यथा है कल्पना, मेरे हिये तेरे लिये ।।७७।।

मिल राम से यद्यपि, भरत आये अयोध्या में सही ।
करते हुए भी राज्य उनकी, दृष्टि उस पर थी नही ।।
निज चित्त में धरते रहे वे, ध्यान प्रतिक्षण राम का ।
ससार कृत्यों में उन्हें था, लक्ष्य निज परिणाम का ।।७८।।

सुनते भरत सद्धर्म को, अर्चा करें भगवान की ।
अवकाश ले कुछ राज्य से, चर्चा करें शुभ ज्ञान की ।।
द्युति मुनि निकट निज भाव से, उसने प्रतिज्ञा ली यही ।
अवलोकते ही रामको, दीक्षा धरूंगा मैं सही ।।७९।।

श्रीराम लक्ष्मण जानकी, पहुंचे तपस्वी धाम में ।
था चित्त आश्रम वासियों का, शुद्ध प्रभुके नाम में ।।
तृण घास आच्छादित वहां, मठ शान्ति के आवास थे ।
धर मोक्ष मे विश्वास, तापस सह रहे सब त्रास थे ।।८०।।

अतिथि समझ करके उन्होंने, राम का आदर किया ।
ला वन्य फल समुदाय, उनके सामने झट रख दिया ।।
रह कर वहा पर रात्रि भर, प्रत्यूष में आगे चले ।
तापस सभी परिवार सह, आ राम से सुख से मिले ।।८१।।

हो नम्र बोले राम से, हे विज्ञ वन विकराल है ।
सामान्य मनुजों के लिये, साक्षात् मानो काल है ।।
करना न पर-विश्वास, रहना सावधानी से सदा ।
नहीं तो अचानक आ कभी भी, घेर सकती आपदा ।।८२।।

यह चित्रकूट महा विकट, आगे गमन मत कीजिये ।
जो योग्य हो उसका हमें, आदेश मुखसे दीजिये ।।
हे तापसो ! अधुना नहीं, हम अल्प रुक सकते यहाँ ।
आगे गमन ही योग्य है, अवशेष पथ मेरा महा ।।८३।।

उनसे विदा होके त्वरित, वन-मार्ग में जाते हुये ।
लख दृश्य नाना रम्य, अतिशय आप हर्षाते हुए ।।
वनभूमि थी अतिशय विषम, टुकड़े पड़े पाषाण के ।
आता न कोई था यहां, विकराल उसको जान के ।।८४।।

फैली हुई थी दूर तक, उसमें महा वृक्षावली ।
देखे उन्होंने सामने, छायास्थ दन्ती थी बली ।।
मृगराज नख द्वारा, विदारत थे द्विरद वन में पड़े ।
अवलोक भयप्रद दृश्य वह, कायर न रह सकते खड़े ।।८५।।

सुन गर्जना मृगराज की, चहुं ओर मृग दौड़ा करें ।
भीषण महिष उन्मत्त हो, वन-वृक्ष को तोड़ा करें ।
फिरते जहां अहिराज थे, फुंकार वह करते हुए ।
विषमय विकट विश्वास ही से, जीव वह मरते हुये ।।८६।।

निर्भीक हो विकराल अटवी, पार वे करते हुए ।
जिन राज का शुभ नाम, अपने चित्त में धरते हुये ।।
धर्मीजनो के धर्म से, दु:ख पास में आते नही ।
आते कदाचित् दैव से, तो विज्ञ घबराते नहीं ।।८७।।

❑ ❑ ❑

लखते हुए मार्ग दृश्यों को, देश मालवा आये ।
धान्य पूर्ण हैं क्षेत्र मनोहर, मनुज न एक दिखाये ।।
विस्मित हुए राम लक्ष्मण बहु, कारण जान न पाया ।
बैठे वटके तले शान्ति से, जिसकी शीतल छाया ।।८८।।

नही दृष्टि में उनके आया, कोई मनुज वहां पर ।
जिससे वे कर सकें दूर सब, मन का संशय सत्वर ।।
शालि-क्षेत्र दिखते सुवर्ण से, जलमय महा सरोवर ।
क्यों उजड़ा-सा देश हो रहा, होकर इतना सुन्दर ।।८९।।

लक्ष्मण चढकर देख वृक्ष पर, दिखता कहीं नगर है ?
किस कारण है यहाँ शून्यता, कहीं किसी का डर है ?
चरते हुये धान्य खेतो को, पशु तो फिरें यहां पर ।
है निस्तब्ध धरा यह सारी, क्यों इस भांति निरन्तर ।।९०।।

पा आदेश राम का लक्ष्मण, चढकर सत्वर वटपर ।
देखे चारों ओर वीर वह, आंखों को सुस्थिर कर ।।
बोला लक्ष्मण त्वरित प्रेमसे, वाणी अति ही सुन्दर ।
दिखते हैं रे भ्रात दूर से, मेरु सदृश जिन-मन्दिर ।।९१।।

विद्यमान हैं यहां निकट में, वापी, कूप, सरोवर ।
इन्द्रपुरी-सी देख रहा हूँ, नगरी एक मनोहर ।।
नही दृष्टि आता लेकिन, कोई मनुज हमारे ।
छोड़ छोड़ पुर भाग गये क्या; नगरी के नर सारे ।।९२।।

एक वृद्ध इस पथ पर आता, मुझको नाथ दिखाता ।
निर्धनता से महा दुखित है, उसका वेश बताता ।।
उतर वृक्ष से जा लक्ष्मण ने, उसको निकट बुलाया ।
देख वीर लक्ष्मण को सन्मुख, मन में वह घबराया ।।९३।।

समझा उसे किसी विध लक्ष्मण, राम निकट ले आये ।
डरो न वृक्ष लेश तुम मनमे, धीरज वचन सुनाये ।।
लगे पूंछने पुन: हर्ष से, क्या है नाम तुम्हारा ।
आते हो इस समय कहां से, ऊजड पुर क्यों सारा ।।९४।।

आता हूँ मै बहुत दूर से, खेती कर्म हमारा ।
देख आपको मुदित हृदय है, मुझको मिला सहारा ।।
घिरा हुआ प्रत्यक्ष सकल पुर, उसकी कथा सुनाऊं ।
देकर प्रश्नों का उत्तर मैं, अपने पथ मे जाऊं ।।९५।।

उज्जयिनी अधिपति सिंहोदर, सुख से शासन करता ।
सुनकर जिसका नाम शत्रुगण, मनमें अतिशय डरता ।।
है दशांगपुर 'वज्रकर्ण' नृप, उसका प्रियतर सेवक ।
नमता नहीं शीश उसको वह, इससे व्यथित अचानक ।।९६।।

बोले राम-दशांग नगरपति, क्यो नहिं शीश झुकाता ?
हे सुन्दर, इस रम्यकथा के, आप नही हैं ज्ञाता ।।
वज्रकर्ण नृप गया एक दिन, मृगया करने वन मे ।
होती नहीं दया किंचित भी, क्रूर जनों के मन में ।।९७।।

करें नराधम घात अभय का, अपने प्राण बचाते ।
करते हुये पापमय दुष्कृत, क्यों नहि हृदय लजाते ?
इतस्तत: फिरते कानन में, देखे उसने मुनिवर ।
बोला उनसे मानसहित वह, जाकर सन्निधि सत्वर ।।९८।।

क्या करते तुम यहां अकेले, रहकर निर्जन वन में ।
बोले ऋषि-कल्याण करूं निज, मैं इस प्रांत निर्जन में ।।
कुछ हंस वज्रकर्ण यों बोला, दु:ख सहते हो नाना ।
मिल सकता इससे क्या तुमको, सोचो सुख मनमाना ।।९९।।

तपकर सुषुमामय शरीर का, सब लावण्य गुमाया ।
कहें आप ही मानव तनका, यहां कौन सुख पाया ?
नहीं आपके तन पर भूषण, और नहीं है अम्बर ।
ये चर्या हो सकती कैसे, इस मानव को सुखकर ।।१००।।

स्नान, विलेपन त्याग सर्वथा, भोजन करो पराया ।
बैठे रहो आलसी बनकर, नहीं यहां सुख छाया ।।
छोड़ भूल से ऐहिक सुख को, जो दु:ख को अपनाते ।
वे मानव सर्वत्र लोक में, प्रज्ञा हीन कहाते ।।१०१।।

इन वचनों से जाना मुनि ने, भोग रक्त यह प्राणी ।
पर हितार्थ हित-मित अति रुचिकर, बोले वे शुभवाणी ।।
हे राजन् देहस्थ जीव को, तुमने कभी न जाना ।
फिर तुमने संसार विपिन में, पाये हैं दुख नाना ।।१०२।।

कर देता भयभीत हृदय को, नरक कथा का सुनना ।
कितना है दु:ख रूप वहां पर, जाकर हाय ! उपजना ।।
वृश्चिक दंश तुल्य दु:खकारक, नरक भूमिका स्पर्शन ।
वृणित और विकराल निरन्तर, भूप वहाँ का दर्शन ।।१०३।।

देते वहां परस्पर पीड़ा, होती कलह भयंकर ।
रात-दिवस अविराम व्यथा है, नहीं शांति है पलभर ।।
करते जो कल्याण न अपना, जाते वहां मरण कर ।
बनो न तुम इस निर्जन वनमें, राजन् परको दु:खकर ।।१०४।।

रहा आज तक विषयातुर तू, क्यों नहिं स्वहित विचारे ।
निरपराध पशुओं को वन में, आके क्यों संहारे ।।
तृण भक्षणकर पृथिवी तल में, उदर पूर्ति हैं करते ।
अन्य प्राणियों से निज मनमें, डरते निश दिन फिरते ।।१०५।।

निज समान पशुओं में चेतन, इसको स्वयं विचारो ।
धर्म-अहिंसा दिव्य चित्तमें, निर्भय होकर धारो ।।
चुभने पर भी शल्प देह में, पीडित मानव होता ।
तो क्यों निशित शस्त्र ले करमें, पर प्राणों को खोता ।।१०६।।

नही अहिंसा तुल्य धर्म है, कोई जगती भर में ।
अपनाओ इस विशद धर्म को, अपने अभ्यन्तर में ।।
सुन मुनिकी इस रम्यगिरा को, नम्र हुआ वह भूपति ।
साधु सङ्गसे दुर्मतियों की, मिट जाती है दुर्गति ।।१०७।।

मुनि-चरणो में सविनय उसने, अपना शीश झुकाया ।
पूर्व-पुण्य से इस कानन में, मैंने तुमको पाया ।।
धन्य हो गया नाथ आज मै, हुए आपके दर्शन ।
होता है विस्मय कारक कुछ, सन्तों का आकर्षण ।।१०८।।

पशु-वध करता रहा हाय मैं, पापी परम अभागा ।
आप मुझे आधार एक बस, पशु-वध मैंने त्यागा ।।
शुद्ध-हृदय से साधु निकट नृप, धरता हुआ अणुव्रत ।
सब कुछ कर लेता है चेतन, सूझे जब अपना हित ।।१०९।।

जिनवर देव, शास्त्र, गुरु को ही, नमन करेगा यह सिर ।
नही करूंगा वन्दन पर को, भय आशा वश होकर ।।
धरकर धर्म प्रेम से वह नृप, अपने सदन पधारा ।
पाके परम नियम-निधि मनमें, बहती सुखकी धारा ।।११०।।

करना होगा वन्दन मुझको, स्वामी सिंहोदर को ।
नहीं करूं तो यहां सहज में, हो विपत्ति घर भर को ।।
धरी मुद्रिका में तब उसने, प्रतिमा मुनि सुव्रत की ।
नमकर भी सिंहोदर नृपको, करता रक्षा व्रत की ।।१११।।

चलता रहा यही क्रम कुछ दिन, समझा कोई न माया ।
वज्रकर्ण के किसी शत्रु ने, सब रहस्य जब पाया ।।
सिंहोदर के निकट शीघ्र जा, यह वृत्तान्त सुनाया ।
नमने में हे देव आपको, करता है वह माया ।।११२।।

शीश न नमता तुम्हें नाथ वह, नमता है जिनवर को ।
सुन सेवक की कपट-कथा को, बुरा लगा नृपवरको ।।
मान आत्म-अपमान भयङ्कर, कुपित हुआ नृप तत्क्षण ।
उसे बुलाने भेजा सत्वर, सिंहोदर ने निज जन ।।११३।।

नमता मुझको शीश न सेवक, यह है स्वामि अनादर ।
हैं उसके अनुरूप दण्ड में, छल से शीघ्र बुलाकर ।।
वज्रकर्ण चढकर तुरङ्ग पर, जाने को था प्रस्तुत ।
कहा किसी ने उसी समय आ, चरणों में होकर नत ।।११४।।

उज्जैनी प्रतिगमन न कीजे, कुपित विकट सिंहोदर ।
तुम्हें करेगा राज्य भ्रष्ट वह, राज्ज-पाट सब हरकर ।।
बोला वज्रकर्ण मृदु बाणी, तुम्हें नही पहिचाना ।
सिंहोदर का दुर्विचार सब, तुमने कैसे जाना ।।११५।।

आगत पुरुष नम्र हो बोला, विद्युदङ्ग मेरा अभिधान ।
नव-यौवन में बना लोक में, कामदेवका तीव्र निशान ।।
आया मैं उज्जैन पुरी में, करने को अपना व्यापार ।
मैं स्वकार्य सब भूल गया था, कामलता वेश्या का प्यार ।।११६।।

प्रणय विवश होकर के उसको, दे डाला मैने सब वित्त ।
कमल रक्त होता है अलि ज्यों, रक्त हुआ त्यो मेरा चित्त ।
रानी के कुण्डल लाने का, दिया मुझे उसने आदेश ।।
प्रमुदित करने उसे चोर सम, राज-भवनमें किया प्रवेश ।।११७।।

रहकर गुप्त वहां पर मैंने, सुना नृपति का वार्तालाप ।
बोली रानी नाथ आपके, मुखपर दिखता क्यों संताप ?
क्यों आती निद्रा न आपको, किया किसी ने क्या अपमान ?
क्या कोई बलवान शत्रु है, नहीं जो आज्ञा करे प्रमाण ।।११८।।

खिन्न हृदय सिंहोदर बोला, रानी से निजमन की बात ।
वज्रकर्ण के कारण सम्प्रति, बन बैठी दुःखदायक रात ।।
नमता नहीं मुझे वह पापी, हो करके भी मेरा दास ।
निश्चयसे हे प्रिये, समझ लो, आ पहुंचा अब उसका नाश ।।११९।।

मार उसे सबके समक्ष में, होगा मुझे मानसिक तोष ।
लुटवा लूंगा जा प्रभात में, राज पाट सारा धन, कोष ।।
सुन सिंहोदर दुष्ट वचन ये, भूल गया मैं अपना कार्य ।
सावधान करने मैं तुमको, दौड़ा आया हूँ हे आर्य ।।१२०।।

बन्दीवान बनाने तुमको, खड़े हुये पथ में सामन्त ।
मेरी बात मानकर राजन्, लौट जाइये आप तुरन्त ।।
यदि विश्वास नहीं हो मेरा, आप देखिये उड़ती धूल ।
इसी ओर आ रही सैन्य सब, करने तुमको ही निर्मूल ।।१२१।।

बन्द कराये नगर द्वार सब, बैठा वह पुर में हो बन्द ।
घेर नगर को सिंहोदरने, भेजा अपना दूत तुरन्त ।।
वज्रकर्ण के सन्मुख आकर, बोला वह यों वचन कठोर ।
बहकाया है तुम्हें किसी ने, हुए इसी से उद्धत घोर ।।१२२।।

जाकर उसे झुकाओ मस्तक, छोड़ो निज आग्रह दुःखरूप ।
तुम्हे ठिकाने ला सकता है, क्षणभर में सिंहोदर भूप ।।
वज्रकर्ण बोला तब सादर, देश, नगर, सारा भण्डार ।
दे सकता सब उसे मोदसे, नमना नहीं किन्तु स्वीकार ।।१२३।।

प्रिया सहित जाने दो मुझको, नही प्रयोजन रण से लेश ।
तोड़ नियम अपना इस भवमे, रहना चाहूँ नही नरेश ।।
मेरु-तुल्य है अचल प्रतिज्ञा, लुट जाये चाहे धन-धाम ।
जिन, मुनि, जिनवाणी को तजकर, नहीं किसीको करूं प्रणाम ।।१२४।।

कुपित दृष्टि सिंहोदरने तब, हाय ! किया ऊजड़ सब देश ।
दुखित हो रहे उस पापीसे, आज नाथ नर, पशु निःशेष ।।
सुन उसके मुख कथा, दुखी लख, दिया राम ने अपना हार ।
लेकरके वह हुआ रवाना, पद वन्दन कर बारम्बार ।।१२५।।

❑ ❑ ❑

(सर्ग ८)

आये राम दशांग नगर तट, चन्द्रनाथ चैत्यालय देख ।
भूल गये सम्पूर्ण मार्ग श्रम, भाग्यवान अपनेको लेख ।।
कर प्रणाम प्रभु के चरणों में, माना जीव आप कृतार्थ ।
लक्ष्मण गया नगर में तत्क्षण सामग्री लेने अशनार्थ ।।१।।

लगे रोकने उसको सैनिक, रिपुक्षितिपति के बारम्बार ।
लेकिन वह घुस गया नगर मे, करके उन पर तीव्र प्रहार ।।
नगर ओर आते लख उसको, वज्र कर्ण ने लिया पुकार ।
रूप-निधान वीर-वर सत्वर, आप पधारें मेरे द्वार ।।२।।

सब प्रकार से स्वागत करने, नाथ ! आज मैं हूँ तैयार ।
देख सुमित्रा-सुत को गृह में, कथा सुनाई बारम्बार ।।
दिया बहुत मिष्टान्न प्रेम से, और किया आदर सत्कार ।
आये लक्ष्मण बन्धु निकट झट, लेकर के अनुपम आहार ।।३।।

कहा राम ने लक्ष्मण से यों, टालो वज्रकर्ण-दु:ख सर्व ।
चूर चूर करना ही होगा, सिंहोदर पापी का गर्व ।।
प्रथम ज़ात कर लिया पथिक से, वज्रकर्ण का सब वृत्तान्त ।
करो उपाय शीघ्र तुम वैसा, हो यह विग्रह जिससे शान्त ।।४।।

सौमित्री आदेश प्राप्त कर, पहुंच गया सिंहोदर पास ।
भेजा है सन्देश भरत ने, वज्रकर्ण को दो मत त्रास ।।
बोला भूप गर्व से उससे, वह सेवक मेरा स्वीकार ।
दूं उसको मैं दण्ड किसी को, नहीं बोलने का अधिकार ।।५।।

राज्य करे अपने घर में वे, नहीं चाहिए मुझे सलाह ।
दूत कहे उस वज्रकर्ण ने, नहीं ग्रहण की मिथ्या राह ।।
देव, शास्त्र, गुरु को तजकर वह, नहीं अन्य को करे प्रणाम ।
नमन कराने से मिल सकता, तुमको क्या सुरपति का धाम ।।६।।

सिंहोदर हो अधिक पुरुष तब, बोला त्वरित अधम हे दूत ।
विद्यमान हैं जग में कितने, तेरे जैसे नीच कपूत ?
मारो इस मानी को वीरो, दो करणी का दण्ड प्रचण्ड ।
बोल रहा है मेरे सन्मुख, यह अशिष्ट वाणी उद्दण्ड ।।७।।

टूट पड़े सैनिक लक्ष्मण पर, जैसे पर्वत पर जल धार ।
किन्तु वीर ने रिपु-सुभटों को, गिरादिया कर पाद प्रहार ।।
कराघात जिस पर पड़ता था, गिरे भूमि पर वह तत्काल ।
क्षणभर में कर दिया वहां पर, रिपु के सुभटों को बेहाल ।।८।।

सिह सामने टिक सकत क्या, दीन, हीन हिरणों का झुण्ड ।
अन्धकार स्थिर रह सकता क्या, देख सूर्य का तेज प्रचण्ड ।।
वासुदेव का देख पराक्रम, चढ आये सिंहोदर वीर ।
ले अलान अपने हाथो मे, लगा मारने वह रणधीर ।।९।।

लड़ने जो आया स्वमान वश, खो बैठा वह अपने प्राण ।
लक्ष्मण के प्रहार से डर भट, इतस्ततः कर गये प्रयाण ।।
गिरे अश्व, गज जहाँ तहां पर, हुए और रथ चकनाचूर ।
बाध लिया सिंहोदर को भी, करके उसको गज से दूर ।।१०।।

वज्रकर्ण वृत्तान्त ज्ञात कर, हुआ हृदय में अधिक प्रसन्न ।
धर्म सहायक हुआ मुझे क्या, सङ्कट में सुर देव प्रच्छन्न ।।
लेकर राम निकट उस नृप को, सौमित्री आया तत्काल ।
बोली सिंहोदर ललनायें, दया भाव से दृग जल डाल ।।११।।

कीजे कृपा वीरवर हम पर, करें न हमको नाथ विहीन ।
करो न चिन्ता योग्य करेगे, बोला लक्ष्मण महा प्रवीण ।।
सिंहोदर ने रोष छोड़ सब, किया राम को नम्र प्रणाम ।
सदा आपका सेवक हूँ मैं, दें आदेश मुझे अभिराम ।।१२।।

राज-पाट है सभी आपका, चाहे जिसे आप दें दान ।
करके करुणा मुझे दीजिये, अपने पद कमलों मे स्थान ।।
मृदु शब्दो में कहा रामने, त्यागो अपना अग्रह दुष्ट ।
आग्रह वश होकर मानव यह, करे स्वपर का महा अनिष्ट ।।१३।।

वज्रकर्ण आ पहुंचता सविनय, शान्त चित्त रघुवर के पास ।
राम कृपा से दूर गया था, मन में का सारा भय त्रास ।।
पाकर दर्शन देव आपका, धन्य हुआ हूँ मैं अत्यन्त ।
नाथ आपके शुभागमन से, हुआ घोर विपदा का अन्त ।।१४।।

सौम्य राम ने समझा करके, करा दिया दोनो में प्रेम ।
सत्पुरुषों का अल्प वास भी, प्रसरित करे सर्व में क्षेम ।।
विद्युदङ्ग को वज्रकर्ण ने, सौंप दिया निज सेना भार ।
विज्ञ विश्व में करते रहते, सदा परस्पर में उपकार ।।१५।।

दोनों नम्र महीधर बोले, लक्ष्मण लें कन्यायें आप ।
बढ़े आपसे नाता अतिशय, मिटे हमारा भी सन्ताप ।।
उत्तर दिया रामने उनको, नहीं अभी सुस्थिर है धाम ।
बन्धु सहित फिरना है हमको, कबतक जानें वन अभिराम ।।१६।।

योग्य समय आने पर इनका, हो जायेगा सुखद विवाह ।
साथ इन्हें ले जाने में तो, होगा दुख-दायक निर्वाह ।।
कहां फिरेंगे हम बन-बन में, ले करके बनिता परिवार ।
हे राजन् ! इसलिये आप ही, कीजे मन में स्वच्छ विचार ।।१७।।

❑ ❑ ❑

अर्द्ध रात्रि के समय वहा से, निकल गये सीता सह राम ।
हुए व्यथित मानव-गण अतिशय, राम रहित लखकर जिनधाम ।।
शनै: शनै: चल कर वे आये, जहाँ नगर 'नलकूवर' नाम ।
हुए मुदित तीनों ही मन में, देख वहां का दृश्य ललाम ।।१८।।

सीता सहित बन्धुओं ने तब, किया वहा उपवन में वास ।
गया कुतूहल वश नारायण, सजल सरोवर के झट पास ।।
उसी नगर की राज सुता जो, धरे हुई थी मानव वेश ।
देख रूप लक्ष्मण का अनुपम, हुई मदन से व्यथित विशेष ।।१९।।

बुला उन्हें पूछा कन्या ने, निर्भय करें कौन हैं आप ।
क्यों सहना पड़ता है भीषण, इस प्रकार वनका सन्ताप ।।
उपवनस्थ अपने भ्राता को, करा मधुर रसमय आहार ।
कथा कहूँगा फिर मैं अपनी, करो न कुछ तुम सोच विचार ।।२०।।

राजसुता ने बुला तुरत ही, करा प्रेम से मृदु आहार ।
बोल मिष्ट सुन्दर वचनों से, किया सर्व अतिथि सत्कार ।।
पा करके एकान्त देश वह, लगी सुनाने निज वृत्तान्त ।
पुरुष वेश धर कर रहती हूँ, लेकिन मैं हूँ सुता नितान्त ।।२१।।

कल्याणमाला नाम मेरा, मैं हूँ धरापति की सुता ।
विकसित हुई इस वेश में, मेरी मधुर यौवन लता ।।
है बालखिल्य इसी नगर का, नाथ करुणामय सदा ।
हा ! शत्रुओं द्वारा कदाचित, आ पडी अति आपदा ।।२२।।

म्लेच्छाधिपति ने तात को, पकड़ा विपुल संग्राम में ।
डाला उन्होंने हा ! उसे, विकराल दुःख के धाम में ।।
श्रीमान् सिंहोदर नृपति, देता हुआ आदेश को ।
हो पुत्र यदि इस भूप के, पाले पिता के देश को ।।२३।।

❑ ❑ ❑

पर पाप वश कन्या हुई मैं, वेश बालक का धरा ।
मैं बालिका, पर मानती, बालक मुझे सब उर्वरा ।।
अवलोक लक्ष्मण रूप को, मम चित्त चंचल हो गया ।
मै कौन, क्या कर्तव्य मेरा, ज्ञान सारा खो गया ।।२४।।

माता तथा मन्त्री हमारी, बात सारी जानते ।
पर अन्य जन तो जन्मसे, बालक मुझे हैं मानते ।।
बलवान सिंहोदर छुड़ा-सकता नहीं है तात को ।
सब द्रव्य हरले म्लेच्छ वे, सुन राम उसकी बात को ।।२५।।

बोले-न तुम चिन्ता करो, धीरज धरो मन सर्वथा ।
कुछ कालमें सब दूर होगी, भाग्यवश सबकी व्यथा ।।
तजकर पुरुष का वेश तुम, निशंक हो शासन करो ।
अब मुक्त है तेरा पिता, मन में न दुष्टों से डरो ।।२६।।

❑ ❑ ❑

कुछ दिन रहकर वहाँ प्रेम से, आगे सबने किया प्रयाण ।
पहुंचे वहां, जहां है भीषण, दुर्गम विंध्याटवी महान ।।
देख वृक्ष पर काक पास में, बोली सीता तब इस भांति ।
सूचित करता काक सामने, क्षणमें होगी महा अशांति ।।२७।।

पलभर रुक जब चले दूर कुछ, पड़ी म्लेच्छ सेना पर दृष्टि ।
टूट पड़े उस पर भ्राता वे, धनुष-बाण लेकर उत्कृष्ट ।।
तितर-वितर सेना होती लख, दौड़े उन पर म्लेच्छ कठोर ।
सह न सके लक्ष्मण प्रहार वे, शस्त्र छोड़ भागे चहुं ओर ।।२८।।

आ म्लेच्छपति ने तब सविनय, हाथ जोड़कर किया प्रणाम ।
क्षमा कीजिये अज्ञजनों के नाथ, आप अपराध तमाम ।।
बडे-बडे अधिपति तक हमको, कर न सके अपने आधीन ।
देख आपको जानें कैसे, हुआ आप मे मन तल्लीन ।।२९।।

मै हूँ किंकर, देव आपका, देगे जो आज्ञा जगदीश ।
पुष्प-समान प्रेमसे उसको, शीघ्र चढ़ाऊँगा निज शीश ।।
यह विन्ध्याचल भव्य भूमि है, सुखसे करे यहां पर वास ।
राज्य-पाट सब आप कीजिये, मैं बन रहूँ आपका दास ।।३०।।

नम्र देखकर उसे राम ने कहा, व्यर्थ की हिंसा छोड़ ।
बाल्य खिल्यको भेज नगरमे, उसके सारे बन्धन तोड़ ।।
उन अनार्य लोगों ने उसका, किया हृदयपूर्वक सन्मान ।
पर मनमें वह समझ रहा था, क्या होगा मेरा बलिदान ।।३१।।

साज रहे हैं क्यों ये इतना, आया राम निकट वह भूप ।
नमस्कार कर बैठा सन्मुख, आनन्दित था लखके रूप ।।
भिजवा बाल्य खिल्यको निज गृह, बना म्लेच्छ पतिको निजदास ।
बढ़े शीघ्र आगे वे तीनो, धरते हुये न मन में त्रास ।।३२।।

चलती हुई जानकी बोली, सता रही है मुझको प्यास ।
बोले राम चलो कुछ आगे, आ पहुंचे हैं पुरके पास ।।
आये अरुण ग्राम में वे सब, जहां कृषक धनवान् महान ।
द्विजवर कपिल विप्रके गृहमें, पलभर वे बैठे मेहमान ।।३३।।

अतिथि जान ब्राह्मणी सत्वर, जल लेकर आई निज हाथ ।
प्रेरित होकरके कुभाग्य से, आया तभी ब्राह्मणी नाथ ।।
पटक काष्टका भार वेग से, बोला इन्हें दिया क्यों स्थान ?
कर डाला अपवित्र सदन सब, करा पात्र में यों जलपान ।।३४।।

सुन उसकी निष्ठुर वाणी को, बोल उठी सीता तत्काल ।
यहां ठहरना अनुचित स्वामिन्, यह ब्राह्मण है केवल बाल ।।
क्रोधी के घर में रहने से, होगा अति अपना अपमान ।
चले बिपिनमें जहां अनेकों, तरु हैं पुष्प और फलवान ।।३५।।

जिस जिसने समझाया उसको, की उससे भी कलह कराल ।
भूताविष्ट मनुज सम भीषण, बना क्रोध वश वह तत्काल ।।
कहा राम से भी यो उसने; निकलो मेरे घर से शीघ्र ।
उसके वचनों से लक्ष्मण को, उपजा कोप हृदयमें तीव्र ।।३६।।

पकड़ पैर निजकर से उसके, लगे घुमाने चारो ओर ।
कहा रामने-वत्स विप्र प्रति, बनो नही इस भांति कठोर ।।
करो न हत्या इसकी भैया, तुम्हे कहेगा क्या ससार ?
अपराधी, ब्राह्मण, यतिके प्रति, धीर वीर हों सदा उदार ।।३७।।

छोड़ दया वश उसे सभी ने, अपनाया पुरका उद्यान ।
ठहर गये वट वृक्षतले वे, बरस रहे थे मेघ महान ।।
दम्भकर्ण था यक्ष वहां पर, लखकर उनका तेज अपार ।
निज स्वामीके निकट पहुंचकर, दुःखसे करता हुआ पुकार ।।३८।।

स्वामिन् दो पुरुषों ने आकर, किया मुझे बड़ पर से दूर ।
काम न आ सकता बल मेरा, वे मानव त्रिभुवनमें शूर ।।
यक्षराज आये तब सत्वर, राम और लक्ष्मण को देख ।
सादर वन्दन किया हर्ष से, भाग्यवान अपनेको लेख ।।३९।।

लालायित जिनके दर्शन को, रहता सुर मानव समुदाय ।
नारायण, बलभद्र वन्द्य वे, आये जहां स्वयं सुखदाय ।।
स्वागतार्थ तब यक्षराज ने, किया वेग से पुर निर्माण ।
रामपुरी के रम्य नामसे, उसे जानते थे विद्वान ।।४०।।

देख नगर की अनुपम उपमा, विस्मित था सारा ही लोक ।
कपिल हुआ विस्मित अति मनमें, एक ओर यह नगर विलोक ।।
नित्य काष्ठ-सचय करने को, आता था वह उस ही ओर ।
भवन वहां अब बने हुये थे, जहां पूर्व में थे तरु घोर ।।४१।।

देख रहा हूँ स्वप्न यहा क्या ? अथवा सब कुछ है यह सत्य ।
समझ नहीं पाता है सम्प्रति या कोई देवों का कृत्य ?
पूंछा एक भद्र महिला से, भद्रे! हैं किसका यह धाम ।
बोली वह इस राम-नगरमें, लक्ष्मण सह रहते हैं राम ।।४२।।

प्राणवल्लभा सती जानकी, रति समान जिसका लावण्य ।
भाग्यशालियों के दर्शन से, करे उपार्जन मानव पुण्य ।।
रामचन्द्र दीनों को नित प्रति, देते रहते हैं शुभ-दान ।
बोला विप्र श्रवणकर यह सब, लेना है मुझको भी दान ।।४३।।

कहने लगी यक्षिणी यों तब, यदि चाहे तू भवन-प्रवेश ।
'णमोकार' शुभ मन्त्र सीख तू, हो न कभी जिससे भवक्लेश ।।
जाके मुनिके निकट विप्रने, सुना सत्य-पथका उपदेश ।
'णमोकार' का मन्त्र ग्रहण कर, मानो शांत हुआ मम क्लेश ।।४४।।

हे साधो, मैं तृप्त हुआ यों, तृषित यथा करके जल पान ।
नाथ आपकी दिव्य गिरासे, दूर हुआ मेरा अज्ञान ।।
जैन धर्म पाया अब मैंने, मुझ समान नहिं कोई अन्य ।
देव, आपका कृपा पात्र मै, मान रहा हूँ निजको धन्य ।।४५।।

मुदित मुदित जा निजनारी से, बोला विप्र प्रिये सुन बात ।
धन्य-धन्य हो गया आज से, हुआ सर्व दु:खों का घात ।।
राम श्रावकों को देते हैं, विनय सहित मनमाना दान ।
बना भार्ये श्रावक नर अब मैं, तज करके मिथ्या श्रद्धान ।।४६।।

खेद, मोह वश हम दोनो ने, पूजे नही कभी अरहन्त ।
आया नही इसी से अब तक, विश्व-भ्रमणका अपना अन्त ।।
तज तू भी मिथ्यात्व हृदय से, सत्य वस्तु का कर श्रद्धान ।
नही कही जगती में उत्तम, जैन धर्म-सा धर्म महान ।।४७।।

देखे नहीं आज तक मुनिजन, किया नहीं अतिथि सत्कार ।
देखा नहीं भ्रांतिवश अब तक, हाय ! जिनालयका भी द्वार ।।
चले राम दर्शन को तब वे, करने सफलित निज अवतार ।
व्यथित हुआ वह विप्र चित्तमें, खडा देख लक्ष्मणको द्वार ।।४८।।

हाय ! गृहागत इसका मैंने, किया बहुत भारी अपमान ।
अब अवश्य यह हरण करेगा, सदन मध्य मेरे प्रिय-प्राण ।।
करने लगा पलायन भय से, वही ब्राह्मणी को वह छोड़ ।
रामचन्द्र बोले लक्ष्मण से, कृपा पूर्ण आंखों को जोड़ ।।४९।।

वत्स, बुलाओ इस मनुष्य को, दो सप्रेम मन माना दान ।
यह विचार मत करो विप्रने, किया हमारा था अपमान ।।
रखकर भेट राम के सन्मुख, धरा चरण में अपना भाल ।
बोले राम-पूजते क्या अब ! गृहसे तुमने दिया निकाल ।।५०।।

बोला गद्-गद् कण्ठ विप्र वह, नही सका मै तुमको जान ।
क्षमा कीजिए देव सर्वथा, अज्ञ मनुजका वह अज्ञान ।।
धनिको को सब जगत पूजता, जग मे वे ही सदा प्रधान ।
बुद्धिहीन भी धनपति जगमे, माना जाता है विद्वान ।।५१।।

उत्तर दिया राम ने भाई, कहता है तू बात यथार्थ ।
मनुज मात्र के इस जीवनमें, केवल धन ही है परमार्थ ।।
द्रव्यवान मानव के बनते, इधर-उधर के सब ही मित्र ।
निर्धन नर को कौन पूछता, अपमानित हो वह सर्वत्र ।।५२।।

तत्पश्चात् राम ने उसको, दे करके धनराशि अपार ।
श्रावक जान प्रेम से उसको, किया उन्होने अति सत्कार ।।
होता हुआ प्रसन्न चित्त वह, आ पहुंचा झट अपने गेह ।
करने लगा भाव से प्रतिदिन, देव, शास्त्र, गुरु भक्ति स्नेह ।।५३।।

वर्षाकाल पूर्ण होते ही, प्रस्तुत हुए राम गमनार्थ ।
बोला यज्ञनाथ तब उनसे, बनी न सेवा नाथ यथार्थ ।।
क्षमा करें हे देव आप सब, हुई दासता में जो भूल ।
कहते हुये राम यों उससे, की सेवा सब ही अनुकूल ।।५४।।

नमस्कार कर दिया राम को, दिव्य स्वयंप्रभ नामक हार ।
लक्ष्मण को मणिकुण्डल अनुपम, सूर्य चन्द्रसम तेज अपार ।।
दिया जानकी को चूड़ामणि, था जिसका कुशला अभिधान ।
पुण्यवान सर्वत्र लोक में, पाते हैं वैभव, सन्मान ।।५५।।

होके विदा विजयपुर आये, अस्त हो गया था आदित्य ।
प्रसर चुका था निर्भय होकर, अन्धकार नभमे सर्वत्र ।।
पुर से अतिशय दूर, निकट नहिं, बाहर जो पुरका उद्यान ।
ठहर गये थे राजपुत्र वे, धरते मनमें प्रभुका ध्यान ।।५६।।

उस पुर मे, 'पृथ्वी धर' भूपति, रानी 'इन्द्राणी' शुभ नाम ।
'वनमाला' बाला गुण-धरिणी, सुता भूपके सुषमा धाम ।।
कन्या के मृदु हृदय कमलमें, लक्ष्मण मधुलिह करे निवास ।
लगी ठेस उसके मनको अति, सुना, मिला उनको वनवास ।।५७।।

जनक अन्य नरको देने का, करते थे जब आप विचार ।
राज-सुता गृहसे चल निकली, लेकर निज थोड़ा परिवार ।।
कर मध्याह्न समय शुभ-क्रीडा, किया रात मे वही निवास ।
पहुंच दीर्घ वट-वृक्ष डाल पर, डाल वस्त्रका दृढ तमपाश ।।५८।।

बोल उठी ऊंचे स्वर से वह, हे हे वृक्ष निवासी देव ।
सन्देशा मेरा लक्ष्मणसे, कह देना तुम यह स्वयमेव ।।
मरी यहा वनमाला स्वामिन्, लगा गले मे फासी आप ।
सहने मे असमर्थ रही थी, नाथ तुम्हारा विरह अमाप ।।५९।।

पूर्व पाप वश मिल न सका है, सुखकारी उनका सयोग ।
नाथ, चाहती है पर-भव में, एक तुम्हारा ही शुभ योग ।।
लगी डालने रज्जु गले में, प्रगट हुए लक्ष्मण तत्काल ।
रोक दिया मरने से उसको, डाल कण्ठ में बाहु विशाल ।।६०।।

लज्जित हुई अधिक निज मनमें, वनमे लक्ष्मण को पहचान ।
अरे, वल्लभे खोती है क्यो, निष्कारण तू अपने प्राण ?
उसे साथ ले अग्रज सन्निधि, आया सुमित्रा का सुकुमार ।
बधू सहित लखकरके उसको, विस्मित थे श्रीराम अपार ।।६१।।

बोल उठी सीता मुसकाती, चन्द्र-ज्योत्स्ना योग महान ।
योग्य परखने में देवरजी, आप सर्वथा हैं विद्वान ।।
सखियों ने जब इधर न देखा, वनमाला को अपने पास ।
इधर उधर वे लगीं खोजने, होकरके मन अधिक उदास ।।६२।।

निर्जन उस एकांत विपिन में, सीता निकट उसे अवलोक ।
योग्य स्थान से मुदित हुईं वे, भूल गईं क्षणभर में शोक ।।
उसी समय भूपति भी आया, सुनकर के सेवक मुख-वृत्त ।
देख राम-लक्ष्मण को वन में, विकसित हुआ प्रेम से चित्त ।।६३।।

ले जाकर नृप ने निज पुर में, दिया उन्हें सुन्दर आवास ।
भूल गये उसकी सेवा से, पलभर वे कानन का त्रास ।।
चन्द्र-सूर्य सम दीनों भ्राता दोनों, देते रहे यहां आह्लाद ।
उन्हें देखकर के आती थी, सुर-पुर के सुरपति की याद ।।६४।।

पृथिवीधर के निकट प्रेम से, बैठे थे श्रीराम पवित्र ।
उसी समय आ किसी दूत ने, दिया भूप के कर मे पत्र ।।
पढा भूप ने उसे प्रेम से, लिखा हुआ था यह शुभ लेख ।
'नँद्यावर्त' सैन्य यह आओ, मित्र, पत्र को सत्वर देख ।।६५।।

अन्य नृपति आज्ञावश मेरे, भरत नहीं नमता निज शीश ।
ले विशाल सेना मैं अपनी, दूंगा क्षण भर मे अब पीस ।।
बडे बड़े भूपति सेना सह, यहां आगये हैं सोत्साह ।
दीर्घ सिन्धु मे मिलता जैसे, सरिताओं का पूर्ण प्रवाह ।।६६।।

कहा दूत से नृप ने सुख से, चलें आप आता हूँ सद्य ।
बोला भूप राम से सविनय, योग्य कार्य हमको क्या अद्य ?
रहें आप सुख से निज पुर में, लक्ष्मण सह कर शीघ्र प्रयाण ।
लेकर और तुम्हारे सुत को, जाता हूँ रण के मैदान ।।६७।।

पहुंचे नन्द्यावर्त नगर जब, बोली तब सीता इस भाँति ।
यह अतिवीर्य विश्व-विश्रुत है, सह न सकें रिपु इसकी कांति ।।
रखना होगी इसे जीतकर, नाथ, अयोध्या पति की लाज ।
शङ्कित मैं हो रही हृदय में, देख शत्रुका सैन्य समाज ।।६८।।

चिन्ता करो न लेश पूज्य, तुम लक्ष्मण पर रक्खो विश्वास ।
हम दोनों मिलकर के पल में, कर देंगे रिपुओं का नाश ।।
आ न सके सुर मेरे सन्मुख, यह तो एक तुच्छ नर-कीट ।
मान रहा बलवान आपको, किन्तु पराजित होगा धीठ ।।६९।।

सुन लक्ष्मण की वीर भारती, बोला पृथिवीधर सुत आप ।
देख तुम्हारे विकट शौर्यको, रिपुओं को होगा सन्ताप ।।
गये राम, देखा सेना को, पड़ी हुई है चारों ओर ।
यह अतिवीर्य भरत से लड़ने, हुआ उपस्थित महा कठोर ।।७०।।

मनुजो का हो प्रलय व्यर्थ में, उचित नहीं इससे संग्राम ।
लेना योग्य यहां जंचता है, कोई कपट युक्ति से काम ।।
नहीं सन्धि का सम्भव सम्प्रति, है शत्रुघ्न महा उन्मत्त ।
निशा समय में आके रिपु के, भगा ले गया गज अति मत्त ।।७१।।

मरे बहुत से योधा तत्क्षण, इससे कुपित महा अतिवीर्य ।
उद्यत हुआ समय में अपना, बतलाने को सेना शौर्य ।।
रहकर गुप्त हमें करना है, बन्धु भरत का ही उपकार ।
नहीं और करना चाहें हम, व्यर्थ मानवो का संहार ।।७२।।

सोच युक्ति अपने मन में तब, धरा सुशोभित रमणी वेश ।
करते हुए नृत्य ये दोनों, पहुंचे राज-सदन अक्लेश ।।
नृत्य किया जा करके उनने, किया मुदित जनता का चित्त ।
नृप अतिवीर्य हुआ अति मोहित, करके श्रवण गान मधुरित ।।७३।।

देव हृदय मोहक गीतों से, हुई सभा सब ही तल्लीन ।
अवसर देख वेग से सत्वर, बोले नृप से राम प्रवीण ।।
हे अतिवीर्य बिना समझे ही, कर बैठे हो तुम यह काम ।
करो भरत से सन्धि शीघ्र ही, हो इससे सबको आराम ।।७४।।

इस प्रकार कर बैर भरत से, नही सुरक्षित हैं तब प्राण ।
लो उसका आश्रय आदर सह यदि चाहो अपना कल्याण ।।
रहते हुए राम लक्ष्मण के, करे अयोध्या की अभिलाष ।
सद्य समझ ले अपने मन में, होगा सेना सह सब नाश ।।७५।।

शत्रु प्रशंसा निज निन्दा सुन, बढा भूप का कोप अपार ।
नृत्यकारिणी का वध करने, खींच उठा अपनी तलवार ।।
छुड़ा शक्ति से खड्ग हाथ का, लिया राम ने उसको बांध ।
बन्धा जान अपने को क्षितिपति, बना और अतिशय क्रोधान्ध ।।७६।।

नृत्यकारिणी लगी बोलने, त्वरित छोड़ दो रण का पक्ष ।
अपराधों की क्षमा मांग लो, जाकर सादर भरत समक्ष ।।
धन्य ! धन्य है भरत लोक में, निज कुल में वह सूर्य समान ।
अहो ! अयोध्यापति की देखो, नृत्यकारिणी तक बलवान ।।७६।।

छिन्न-भिन्न हो गया शिबिर सब, भरत भूप से हो भयभीत ।
आकर कितने ही भूपों ने, वहां भरत से की शुभ प्रीति ।।
बोल उठी सीता करुणावश, उस नृप को बन्धन में देख ।
शिथिल कीजिए बन्धन सारे, सकल कृत्य कर्मों का लेख ।।७७।।

तोड़ दिये बन्धन लक्ष्मण ने, बोले रामभद्र स्नेह ।
करके प्रेम भरत से राजन्, जा सकते तुम अपने गेह ।।
बोला वह अतिवीर्य राम से, होकर भवसे अधिक उदास ।
हूँगा मैं निर्ग्रन्थ सर्वथा, तजकर भव-भोगों की आश ।।७८।।

तुच्छ राज्य के ही कारण, हुआ भयङ्कर यह अपमान ।
विश्व-भोग जानें हैं मैंने, भीषण दुखप्रद गरल समान ।।
वीतराग पुरुषो के पथ का, लेता हूँ अधुना आधार ।
जाके श्रुतधर साधु निकट में, छोडा सकल परिग्रह भार ।।७९।।

❑ ❑ ❑

वे अतिवीर्य त्याग जग आशा, आत्म साधना करें अपार ।
हो प्रणाम उनके चरणो मे, भक्तिभाव सह अगणित वार ।।
धन्य धन्य वे वीर विश्व मे, तजते जो क्षणभर में भोग ।
उगले महा मोह को सत्वर, मिले हमें कब ऐसा योग ।।८०।।

करके शत्रु पराजय सुख से, राम विजयपुर आये ।
पुलकित होकर नगर जनों ने, उनके सद्गुण गाये ।।
इधर वृत्त जब सुना भरत ने, विस्मत हुआ हृदय में ।
नृत्यकारिणी कौन ? कहाँ से ? आ पहुंची असमयमें ।।८१।।

करता अति उपहास शत्रुधन, बोला मुख से वाणी ।
देख हमारे तेज शत्रु का, उतर गया है पानी ।।
बोलो मत हे भ्रात वचन वों, धन्य धन्य वह अतिशय ।
विद्यमान भोगों को तजकर, बना साधु जो निर्भय ।।८१।।

उसी समय अतिवीर्य पुत्र भी, सामन्तों सह आया ।
नमा भरत को शीश विनय से, सब वृत्तान्त सुनाया ।।
दी अपनी लघु बहिन भरत को, शुभ सम्बन्ध बढ़ाया ।
तत्पश्चात् भरत राजेश्वर, मुनि दर्शन को आया ।।८२।।

परम शान्त अतिवीर्य साधु को, देख शिलातट ऊपर ।
झुका दिया निज शीश चरण मे, अतिशय हर्षित होकर ।।
धन्य, धन्य हे देव आपको, मोह आपने मारा ।
वही मोह दिन रात जगत में, करता अहित हमारा ।।८३।।

हे तत्त्वज्ञ, वीर वह जग में, जो संयम को धारे ।
कभी नहीं वह वीर समय में, जो पर को संहारे ।।
क्षमा कीजिये नाथ सर्वथा, सब अपराध हमारा ।
रहे हृदय-मन्दिर में प्रतिक्षण, अविचल वास तुम्हारा ।।८४।।

हे भरतेश्वर जगती तल में, है दुखदायक ममता ।
वही सुखी है निज जीवन में, जो उसको है तजता ।।
राज-पाट में रह कर मैंने, शुभ दिन व्यर्थ गुमाये ।
विषधर तुल्य तुच्छ भोगो मे, कहो कौन सुख पाये ।।८५।।

अविचल, अविनाशी निज पद का, पथ मैंने अपनाया ।
है उपकार तुम्हारा मुझ पर, यों जो मुझे हराया ।।
रणारम्भ यों किया व्यर्थ ही, मैंने आकर मद में ।
लीन हुआ हूँ त्याग सर्व अब, अपने अनुपम पद में ।।८६।।

आगे जाने का विचार जब, राम हृदय में आया ।
बनमाला का बदन कमल तब, दुख से अति मुरझाया ।।
होकर व्यथित कहे लक्ष्मण से, जीवन नाथ हमारे ।
तज कर सकल सुखों को सत्वर आऊं साथ तुम्हारे ।।८७।।

प्रिये करो मत तुम विषाद कुछ, मानों बात हमारी ।
नहीं उचित लगती है सम्प्रति, मुझको बात तुम्हारी ।।
आऊंगा सत्वर मैं लेने, सुस्थिर ठाम बना कर ।
व्यर्थ कष्ट दूं क्यों मैं तुमको, निर्जन बन ले जाकर ।।८८।।

मिथ्या दृष्टि तुल्य हो गति मम, नहिं लेने यदि आऊं ।
रक्खो तुम विश्वास चित्त में, कैसे मैं समझाऊं ।।

प्रस्तुत हुए गमन को लक्ष्मण, दे करके आश्वासन ।
छोड़ गये पुर वे प्रभात में, सोते थे जब पुर जन ।।८९।।

करते हुये बिहार वीर वे, क्षेमांजलि पुर आये ।
देख रूप इनका मनुजो के, मनमें हर्ष समाये ।।
सुना वीर लक्ष्मण ने तत्क्षण, यह वृत्तान्त नगर में ।
रति-सी रूपवती बाला है, पुर पति के शुभ घर में ।।९०।।

❑ ❑ ❑

पुरुष शब्द तक उसे न रुचता, दर्शन उसका दुष्कर ।
शक्ति प्रहार सहें जो नृप का, हो सकता इसका वर ।।
सुन यह कथा चित्त में हरि ने, सोचा कैसी बाला ।
उसे देखने दशरथ सुत का, हुआ चित्त मतवाला ।।९१।।

इधर उधर पुर में फिर करके, पहुंचे राज-सदन में ।
शक्ति घात मैं सहन करूंगा, राजन् अपने तन में ।।
भरत भूप का सेवक हूँ मैं, विचर रहा हूँ भूपर ।
सुनकर कठिन कथा बाला की, आया आज यहां पर ।।९२।।

अरे ! मनुज मरने क्यो आया ? सहज न कन्या पाना ।
इस आयुध की महा शक्ति को, तूने कभी न जाना ।।
बोल उठा सौमित्र निडर तब, अपनी शक्ति चला तू ।
दिखा मुझे निःशङ्क भाव से, अपनी सर्व कला तू ।।९३।।

होकर अदय भूप ने अतिशय, उस पर शक्ति चलाई ।
राम-अनुज ने दक्षिण कर में, ले निज शक्ति बताई ।।
अन्य शक्ति पकड़ी निज कर से, दो को लिया बगल में ।
ग्रही पांचवीं दांतों द्वारा, हरि सम कोई न बल में ।।९४।।

विस्मित हुआ भूप यह सब लख, वरसे पुष्प गगन से ।
गूँज उठा सब राज-भवन तब, सुमधुर जय जय ध्वनि से ।।
लक्ष्मण की लख शक्ति अनुत्तर, जित पद्मा झट आकर ।
खड़ी हुई उसके समीप में, लज्जा से सकुचाकर ।।९५।।

हुए सुशोभित तत्क्षण दोनों, शची और शचि-पति से ।
बनते अद्‌भुत कार्य विश्व मे, शुभ्र कर्म की गति से ।।
धन्य, धन्य तू वीर प्रतापी, नहीं शक्ति से डोला ।
दूं कन्या सेवार्थ तुम्हें मैं, सादर भूपति बोला ।।९६।।

राम सहित सीता भी आई, उत्तम राज-भवन में ।
राज सुता जित पद्मा भी आ बैठी हरि के मन मे ।।
कर निवास कुछ समय प्रेम से, आगे हुए रवाना ।
पुण्यवान पुरुषों को जग में, सुगम सभी कुछ पाना ।।९७।।

❑ ❑ ❑

वे वीर दोनों बन्धु सीता सह, गमन करते हुए ।
वन की निरख शोभा महा, मन मोद से भरते हुए ।।
आये सभी वे कर गमन हैं, वंश स्थल सुन्दर परी ।
इसकी सकल रमणीयता, मानों अमरपुर से गिरी ।।९८।।

इस ही पुरी के पास में दृढ़, वंश घर पर्वत खड़ा ।
मानों धरा को भेद कर, आकाश में जाकर अड़ा ।।
पुर से निकलते देख कर, पुरजन तथा भूपाल को ।
पूछा किसी से राम ने, तत्काल सारे हाल को ।।९९।।

बोला मनुज हे भद्र सुनिये, तीसरा दिन आज है ।
रजनी समय गिरि के शिखर, होता बिकट कुछ काज है ।।
होता भयानक शब्द जिससे, हो व्यथित पुरजन सही ।
ऐसी भयङ्कर ध्वनि अभी तक, कान में आई नही ।।१००।।

भयभीत हो तज कर नगर, रजनी समय वन में रहें ।
आगत उपद्रव दैव वश, हम लोग अब कैसे सहें ?
सीता सहित श्री राम, लक्ष्मण, सुन प्रजाजन की विथा ।
गिरि ओर सत्वर चल पड़े, निर्भीक मन हो सर्वथा ।।१०१।।

करते श्रवण पुर-जन वचन, नि:शंक वे आये वहां ।
ध्यानस्थ थे मुनि देशभूषण, और कुल भूषण जहां ।।
अवलोक उनकी शांत मुद्रा, रामादि मन हर्षित हुए ।
साक्षात् गिरि पर आज, उनको धर्म के दर्शन हुए ।।१०२।।

की वन्दना शुभ भाव मय, कर जोड़ मुनियों की वहां ।
मुनि भक्ति का झरना विमल, तर चित्त में उनके बहा ।।
इन साधुओं को धन्य है, जग को भयङ्कर जान के ।
चलते निरन्तर मोह तजकर, मार्ग में भगवान के ।।१०३।।

पाषाण स्तम्भ समाज सुस्थिर, छोड़ दी ममता सभी ।
संसार सुख की वासना, मन में नहीं लवलेश भी ।।
इनका परम संयम, जगत् भर के लिए आदर्श है ।
अवलोक इनको बढ़ रहा, क्षण क्षण हृदय में हर्ष है ।।१०४।।

उस ही समय आके, असुर ने की प्रगट विकरालता ।
वेष्टित हुई वन फणिधरों से, साधुओं की तनु-लता ।।
अङ्गार से हा कोटि वृश्चिक, देह पर फिरने लगे ।
भूतादि मिलकर शैल पर, विकराल रण करने लगे ।।१०५।।

सीता हुई भयभीत मन में, दृश्य यह अवलोक के ।
चिन्तित न हो हे सुन्दरी, मुनिके चरण में धोक दे ।।
अवलोक मुनियो की दशा, श्री राम मन मे सोचते ।
उपसर्ग कोई कर रहा, विद्वेष वष हो कोप से ।।१०६।।

इन साधुओं को त्रास देता, कौन-सा पापी यहां ।
उपसर्ग की विकरालता, लख बन्धु द्वय गर्जे वहां ।।
ले चाप कर में तीव्र शर, सन्धान की उद्यत हुए ।
मुनिराज रक्षा के लिए, सब भाँति वे प्रस्तुत हुए ।।१०७।।

तब अग्नि प्रभ नामी असुर, बलभद्र, हरि को जान के ।
भागा त्वरित भयभीत हो, अपनी पराजय मान के ।।
उसके गमन से दृश्य भी, विकराल सब जाता रहा ।
उपसर्ग विजयी साधुओं को, ज्ञान निज उपजा अहा ।।१०८।।

शुभ ज्ञान केवल के उपजते देवगण आये वहां ।
विधि युक्त कर वन्दन उन्हें, अत्यन्त हर्षाये वहां ।।
तजते हुए नर मोह-निद्रा, केवली उपदेश से ।
छूटे बहुत प्राणी भयङ्कर, जग भ्रमण के क्लेश से ।।१०९।।

किस हेतु यह उपसर्ग था हे नाथ यह कहिये हमें ।
दोनों रहें क्यों साथ में, संयम हमारा तब शमे ।।
तत्काल आद्य मुनीन्द्र की, दिव्य ध्वनि होती भई ।
जो सब सभा के चित्त में, सुख शान्ति को बोती हुई ।।११०।।

है 'पद्मनी' नामा नगर, नृप है 'विजय पर्वत' वहाँ ।
है धारिणी उसकी प्रिया, शुभ दूत 'अमृत सुर' महा ।।
वह कार्य में अतिशय निपुण, उपभोग है उसकी प्रिया ।
अवतार उसकी कुक्षि से, दो भद्र पुत्रो ने लिया ।।१११।।

वह दूत भूपति कार्यवश, 'वसु-भूति' सह जाता हुआ ।
वसु भूति वधकर दूत का, सत्वर सदन आता हुआ ।।
वह दुष्ट पापी पूर्व से ही, मित्र-नारी रक्त था ।
वध के लिए उस दुष्टका, आतुर निरन्तर चित्त था ।।११२।।

वसुभूति के दुष्टकृत्य की, फैली कथा परिवार मे ।
सोचा सुतों ने हित अधिक, इस नीच के संहार में ।।
असि हाथ में लेकर उदित ने, वध किया द्विजराज का ।
मरकर हुआ चाण्डाल वह, यह फल मिला अघ-राजा का ।।११३।।

❑ ❑ ❑

एक समय उस ही नगरी में, मतिवर्द्धन आये मुनिराज ।
वन्दनार्थ तब गया भक्तिसे, क्षितिपति युत सब नगर समाज ।।
दर्शन करके साधु संघ का, हुआ सभी का चित्त प्रसन्न ।
सुन उनका उपदेश जनों का, मिथ्या तिमिर हो गया भिन्न ।।११४।।

कितने ही मुनि उस उपवनमें, आत्म-कार्य में थे अनुरक्त ।
था कोई ध्यानस्थ वहाँ पर, भव-भोगों से यहां विरक्त ।।
स्वस्थ चित्त होकर कितने ही, करते थे आगम स्वाध्याय ।
स्वात्मलीन हो सोच रहे थे, यही एक है मोक्ष उपाय ।।११५।।

कहने लगा नृपति मुनि-पतिसे, जैसा है यह काय-प्रकाश ।
वैसा प्रभो आपके सन्निधि, नहीं दीखता भोग विलास ।।
राजन्, क्या कह रहे आप ये, है भुजंग सम भोग विलास ।
कर इनमें आसक्ति भयङ्कर, पाता मानव नरक निवास ।।११६।।

यौवन नदी वेग सा चंचल, जल बुदबुद सम है परिवार ।
इस असार सक्लेश जगतमे, त्याग श्रेष्ठ है सर्व प्रकार ।।
सुन वैराग्य पूर्ण मुनि वाणी, तजकर नृप निज राज्य विशाल ।
हुए मुक्ति पथ साधक मुनिवर, उदित मुदित दोनो तत्काल ।।११७।।

करते हुए विहार एकदा, भूल गए पथ साधु सुशील ।
आ पहुंचे वे उस अटवीमें, जहां हुआ मरकर द्विज भील ।।
देख उन्हें वह पूर्व जन्मवश, हुआ मारने को तैयार ।
किन्तु भील पति ने निज बलसे, दिया शीघ्र ही उसे निवार ।।११८।।

भीलनाथ ने क्यो रक्षा की ? पूंछे हाथ जोड श्री राम ।
कहे केवली दिव्य ज्ञान से, यक्ष स्थान है नामक ग्राम ।।
सुरप और कर्षक दो भाई, वहा प्रेम से करे निवास ।
पकड़ एक पक्षी को लाया, दुष्ट पारधी उनके पास ।।११९।।

मुक्त कराया दुखित बिहग को, दे करके उसको कुछ दान ।
नहीं विश्व में प्रिय है कोई, प्राणि मात्र को प्राण समान ।।
खग मर हुई म्लेक्छ पति संप्रति, पूर्व बन्धु अब भी हैं भ्रात ।
पूर्व कृत्य वश होती रहती, दुख की राते, पुण्य प्रभात ।।१२०।।

जो करता उपकार किसी का, उसका वह करता उपकार ।
जो अपकार करे धरती में, होता है उसका अपकार ।।
वैर वैर से वृद्धिंगत हो, दिव्य. बन्धुता से हो नाश ।
विज्ञ मनुज यों जान हृदय में, करें वैर का अतिशय ह्रास ।।१२१।।

हो उपसर्ग मुक्त मुनि दोनों; पाल स्वच्छ संयम चिरकाल ।
अन्तकाल में तज शरीर निज, पाया सुख-गृह स्वर्ग विशाल ।।
द्विज वसुमूर्ति भ्रमण कर भव में, लेता हुआ मनुज अवतार ।
हुआ ज्योतिषी देव अन्त में, धर अज्ञान युक्त व्रत धार ।।१२२।।

है अरिष्टपुर नगर मनोरम, प्रियव्रत नामक जहां नरेश ।
कनकवती पद्मावती, दोनों, महिलाये गुण भरी अशेष ।।
उदित, मुदित चय देवलोक से, पद्मावती के हुए सुपुत्र ।
धरा प्रथमका नाम 'रत्नरथ', तथा अन्य का नाम विचित्र ।।१२३।।

ज्योतिष सुर चय कनकप्रभा के, हुआ अनुद्धर नामक पुत्र ।
क्षितिपति सौंप पुत्रको शासन, धरकर अनशन आप पवित्र ।।
पाया देवलोक निज तन तज, करे रत्नरथ राज्य समस्त ।
श्री श्रीप्रभा नाम बाला का, किया ग्रहण उसने मृदु हस्त ।।१२४।।

अनुज अनुद्धर के मन में थी, गुप्त रूप से उसकी चाह ।
बढा परस्पर वैर भयङ्कर, हो न सका जब उससे ब्याह ।।
होकर कुपित अनुद्धर देता, नगर जनो को त्रास कराल ।
जीत रत्नरथ ने तब रण में, दिया देश से उसे निकाल ।।१२५।।

अपमानित होकर के उसने, धरे तापसो के व्रत आप ।
रहकर के एकान्त प्रान्त मे, सहता नाना कष्ट कलाप ।।
कर चिरकाल राज्य भ्राता ने, ऐहिक सुख की आशा छोड़ ।
हो विरक्त भोगो से अतिशय, दिया चित्त मुनिपन मे जोड़ ।।१२६।।

देह-त्याग करके समाधि से, पायी स्वर्ग धरा रमणीय ।
स्वर्ग लोक में उन दोनों ने, भोगे भोग महा कमनीय ।।
है 'सिद्धार्थ' नगर धरतीपर, अधिपति क्षेमंकर बलवान ।
प्राण-वल्लभा 'विमला' उनके, जो है अतिशय रूपनिधान ।।१२७।।

स्वर्ग धरा से होकर के च्युत, पूर्व-बन्धु आये नृप धाम ।
उत्सव सहित 'देशभूषण' प्रिय, कुलभूषण शुभरक्खा नाम ।।
रहकर सागर घोष निकट में, किया सकल विद्या अभ्यास ।
देख रहे दोनों पुत्रों को, रामचन्द्र तुम अपने पास ।।१२८।।

पाणि ग्रहण अर्थ कन्यायें, लेकर आए है भूपाल ।
रूप देखने की उत्कण्ठा हुई उन्हें सुनकर सब हाल ।।
देख सदन में निज भगिनी को, सके न वे उसको पहचान ।
विकृति दोनों हुए हृदय में, परिणय योग्य उसे ही जान ।।१२९।।

बने हमारी हृदय वल्लभा, की दोनो ने यो मन चाह ।
मार दूसरे को मैं सम्पति, करू प्रेम से इससे ब्याह ।।
उसी समय बन्दीजन द्वारा, पड़ा कान मे उनके शब्द ।
क्षेमकर बाला चिर जीवें, सुन यह शब्द हुए वे स्तब्ध ।।१३०।।

किया उन्होने खेद हृदय में, अहो ! काम है अतिशय दुष्ट ।
हुए हाय ! हम उसके वश हो, करने को दुष्कृत निकृष्ट ।।
खेद बहिन के संग भोग की, हुई हमे पापी अभिलाष ।
हुए विरक्त तुच्छ भोगो से, है विचित्र ससार निवास ।।१३१।।

जैनेश्वरी प्रवृज्या धर कर, दोनो ही सङ्ग करे विहार ।
ऋद्धि-सिद्धि प्रगटी तब उनको, किन्तु सर्वथा आत्म विचार ।।
निज पुत्रो की विरह अग्नि से, दुखित हुआ क्षेमंकर तात ।
तज शरीर गरुडेन्द्र हुआ है, भवन वासियों की जो जाति ।।१३२।।

हम दोनो हैं राजपुत्र वे, करते तप मन ममता त्याग ।
पूर्व वैर वश यहाँ असुर ने, बरसायी थी दुख की आग ।।
तुम्हे देख कर गया पलायन, देख न सकता सूर्य उलूक ।
वैर बांध लेता है चेतन, आत्म तत्व को अतिशय चूंक ।।१३३।।

❑ ❑ ❑

(सर्ग ९)

वंशस्थल पुर अधिपित सुरप्रभ, करके सविनय उन्हें प्रणाम ।
पुलकित तन हो परम हर्ष से, उनको ले आया निज धाम ।।
जहा जहां जाते धर्मी जन, वहां वहां पाते सत्कार ।
राज-भवन बन जाता वनमें, उनके लिए खुले सब द्वार ।।१।।

राघवेन्द्र ने उस पर्वत पर, बनवाये जिन भवन अनेक ।
होता है विशुद्ध मन अब भी, उनमें जिन प्रभुवरको देख ।।
कर निवास सीता सह कुछ दिन, किया वहां से भी प्रस्थान ।
जिनने निज पौरुष से जीते, जगती में मानव बलवान ।।२।।

करते हुए गमन वे आये, दक्षिणस्थ जल निधि के पास ।
देख वहां की वन शोभा को, प्रगट हुआ मनमे उल्लास ।।
जहा दृष्टि-पथ में आता था, कोसों तक शुभवृक्ष समूह ।
दुष्ट प्राणियों से जो कार्नन, बना हुआ था महा दुरूह ।।३।।

था घनघोर तिमिर उस वनमें, नहीं लेश था सूर्य प्रकाश ।
निश्चय किया रामने मनमें, सब प्रकार हो यहां निवास ।।
क्षुधा शांति के लिए सिया ने, किया भव्य भोजन तैयार ।
करें प्रतीक्षा तीनों मुनिकी, देकर दान करें आहार ।।४।।

उसी समय दो चारण मुनिवर, आ पहुंचे सहसा उस द्वार ।
उन निरीह निर्ग्रन्थों को लख, हुआ सभी को हर्ष अपार ।।
प्रभो, आइये यहां कृपा कर, है प्रासुक विशुद्ध सब अन्न ।
तत्क्षण शुभ आहार कराया, मनमें होते हुए प्रसन्न ।।५।।

नभसे हुई रत्न की वर्षा, चलने लगी पवन शुभ मन्द ।
वरसे सुमन गगनसे अनुपम, जयकी ध्वनि भी हुई अमन्द ।।
श्रुति सुखदायक बजी दुन्दुभि, प्रगटे ये पांचो आश्चर्य ।
महापुरुष के पुण्य तेज से, प्रगटित होता सब ऐश्वर्य ।।६।।

देख दृश्य वृक्षस्थ गृद्ध को, हुआ पूर्वभवका निज ज्ञान ।
गिरा साधुओं के चरणोंमें, प्रगटित करता खेद महान ।।
वह खग मुनियों के चरणों को, लगा स्पर्शने बारम्बार ।
पूर्व पापकी स्मृतिसे क्षण क्षण, निकल रही दृगजलकी धार ।।७।।

ऋषि चरणोदक के प्रभाव से, बदल गई उसकी सब देह ।
देख उसे सहसा रघुनन्दन, लगे पूंछने निज सन्देह ।।
हे भगवन् ! यह कौन शकुनि है, क्यो आया है चरण समीप ?
शंका भ्रान्त दूर करने में, नाथ आप हैं अनुपम द्वीप ।।८।।

पूर्व-काल मे इसी क्षेत्र पर, हे राजन् था दण्डक देश ।
वहां कर्ण कुण्डल नगरी थी, खग था 'दण्डक' नाम नरेश ।।
स्वीय नारियों के वश होकर, करे दण्डियो की नृप सेव ।
पराधीन मानव क्या समझे, सुगुरु, कुगुरु सद्देव-कुदेव ।।९।।

एक समय आया नृप वन मे, देख साधु को ध्यानारूढ़ ।
डाल मृतक-अहि साधु-कण्ठमें, गया सदन पर हर्षित मूढ़ ।।
साधु ध्यानमें और हुए दृढ, जब तक यह उपसर्ग महान ।
खड़ा रहूँगा इसी भूमि पर, लिया नियम ऐसा बलवान ।।१०।।

कुछ दिनके पश्चात् कार्यवश, गया नृपति वह उस ही पंथ ।
पूंछा झट निकटस्थ पुरुषसे, सर्प-रहित है क्यो निर्ग्रन्थ ।।
कहने लगा मनुज निजमुख से, धर्म-मूर्ति हैं ये मुनिराज ।
नाग डाल इकने सुकण्ठ में, किया किसी ने संचितकाल ।।११।।

करके पाप भयङ्कर उसने, अपनाया है, दुर्गति दुपंथ ।
किया दूर अहि सम्प्रति मैने, समता भावयुक्त ये संत ।।
शॉत जान उन मुनि को नृपने, सत्वर सादर किया प्रणाम ।
लख विशेषता जैन धर्म की, उसमें रक्त हुये परिणाम ।।१२।।

वसुधा-पति जिन भक्त बना है, जाना महीषी ये वृत्तांत ।
करने पति को चलित धर्म से, कुपित भूत से हुई अशांत ।।
बुला दंडियों को वह बोली, छुड़ा सकूं नृप का श्रद्धान ।
धर मुनि वेश महल में आओ, करो कुचेष्टाएं बलवान ।।१३।।

किया दण्डियोंने वैसा ही, कुपित हुआ अत्यन्त नरेश ।
लख विकार में दुष्ट क्रियाएं, बढ़ा जैन मुनियों पर द्वेष ।।
भरमा दिया और रानी ने, दिया त्वरित पापी आदेश ।
पेल उन्हें डालो कोल्हू में, हो जिससे सब ही नि:शेष ।।१४।।

एक साधु जो किसी कार्य वश, नहीं उपस्थित था उस काल ।
आते समय नगर में उसने, सुना अन्य मनुजों से हाल ।।
संघ नाश से हुआ व्यथित अति, बढने लगा हृदय मे क्रोध ।
क्षण भर में मनके विकार से, भूल गया सारा ही बोध ।।१५।।

लगी कम्पने काया सारी, दोनों नेत्र बने अङ्गार ।
देख साधु की भीषण आकृति, मचा चहूँ दिश हाहाकार ।।
निकली अग्नि प्रबल मुनि तन से, प्रलय कालकी अग्नि समान ।
जलने लगा अचानक सब कुछ, पुर-मंदिर, भूपति असथान ।।१६।।

राख हो गया देश सभी ही, भुला दिया मुनि ने शुभ ध्यान ।
नहीं अन्तरङ्ग शत्रु जगत में, चेतन का इस कोप समान ।।
मुनि की प्रबल कोप ज्वाला से, भस्म हो गया दण्डक देश ।
था पीछे विख्यात हुआ यह, जगमें दण्डक बन्य प्रदेश ।।१७।।

दण्डक नृपति पाप वश भव में, करके भ्रमण दुखद चिरकाल ।
अशुभ कर्म कुछ कम होने से, हुआ गृद्ध नभचर विकराल ।।
जाति-स्मरण ज्ञान द्वारा सब, जान पूर्वभव का निज पाप ।
आया यहाँ शरण में सम्प्रति, करता हुआ प्रबल सन्ताप ।।१८।।

पक्षिराज अब शॉत चित्त हो, धरो हृदय अतिशय संवेग ।
होनहार होकर रहती है, करो न लेश मात्र उद्वेग ।।
धर्म पात्र उस खग को लखकर, दिये श्रावको को व्रत दान ।
सौंप राम को उस खगवर को, दोनों यति कर गये प्रयाण ।।१९।।

चारो ओर रम्य उस वन में, देख शांति साम्राज्य अपार ।
यहीं बसावे नगर मनोहर, रघुपति ने यो किया विचार ।।
बोले प्रेम सहित लक्ष्मण से, कितना रम्य वत्स, यह स्थान ।
नंदनवन समान इस वनकी, शोभाका क्या करे बखान ।।२०।।

मातायें अपने वियोग से, पाती होंगी अतिशय कष्ट ।
लेने मैं, अथवा तुम जाओ, हो जिससे उनका दुःख नष्ट ।।
जैसा हो आदेश आपका, तदनुसार होगा सब काम ।
कुटी बनाकर उसी विपिन में, रहने लगे बन्धु गुणधाम ।।२१।।

घूम रहे थे एक दिवस हरि, सुख से उस कानन में ।
लगी भिन्नता उनको तत्क्षण, आगत दिव्य पवन मे ।।
विस्मित हो वे लगे सोचने, सुरभि कहां से आती ?
बार बार जो घ्राणेन्द्रियको, अतिशय अहो ! सुहाती ।।२२।।

यह सुगन्ध नहिं है तरुओं की, तथा नही मम तनकी ।
सूंघी नहीं सुगन्ध आज तक, ऐसी मैंने जनकी ।।
चन्द्रनखा भगिनी दशमुखकी, उसका पति खरदूषण ।
शम्बुक, सुन्दर हुए पुत्र दो, उनके कुलके भूषण ।।२३।।

सूर्यहास शुभ खड्ग साधने, शम्बुक वन मे आया ।
निज शरीर का सयम करके, आसन सुदृढ लगाया ।।
साधे एक चित्त से असिको, एक अन्न आहारी ।
दण्डक वन में रहे निरन्तर, जगत् प्रवृत्ति विसारी ।।२४।।

साध्य प्राप्त करके निकलूंगा, बांस बिडो से बाहर ।
ध्वंस करूँगा उस मानव का विघ्न करे जो आकर ।।
रह करके एकांत भूमि मे, द्वादश शुभ संवत्सर ।
ध्येय साध्य कर लिया, खड्ग, वह हुआ उपस्थित आकर ।।२५।।

सप्त दिवस मे उस कृपाण को, ले न सके यदि साधक ।
ग्रहण करे तो उसको-सत्वर, कोई मनुज अचानक ।।
चन्द्रनखा प्रतिदिन उस वन में, भोजन लेकर आती ।
लखकर सिद्धि पुत्रकी अनुपम, फूली नहीं समाती ।।२६।।

जाकर कहा आत्म वल्लभ से, खड्ग विपिन में आया ।
ले स्वपुत्र आवेगा गृह में, शुभ वृत्तांत सुनाया ।।
उसी दिव्य असिकी सुगन्धि से, कानन हुआ सुगन्धित ।
उस सुगन्ध से नारायण मन, हुआ अहो ! अति विस्मित ।।२७।।

आती थी वह सुरभि जहां से, उस प्रदेश में आया ।
देखा एक खड्ग बांसों में, चन्दन चर्चित काया ।।
वहां नहीं अवलोक किसी को, उसने उसे उठाया ।
धार देखने उसकी हरि ने, सत्वर वहां चलाया ।।२८।।

बास सभी कट गये शस्त्र से, कटा और शम्बुक सिर ।
तब कृपाण रक्षक सुर बोले, हम प्रसन्न है तुम पर ।।
आप हमारे नाथ सर्वथा, हम सेवक हैं निशि दिन ।
कर सत्कार वहां उस हरिका, चले गये सुर तत्क्षण ।।२९।।

ले लक्ष्मण उस दिव्य शस्त्र को, बन्धु निकट में आया ।
शास्त्र प्राप्तिका अपने मुख से, सब वृत्तात सुनाया ।।
बोले तब वे रामभद्र यो, पुण्यवान तू जग मे ।
पुष्प बिछे रहते हैं तेरे, कण्टकमय भी मग मे ।।३०।।

चन्द्रनखा नित दिव्य भोज्य ले, आती थी उस वन मे ।
शस्त्र प्रगतिका समय निकट लख, मुदित हुई थी मनमे ।।
प्रति दिन की ही भांति आज भी, आई लेकर भोजन ।
दृश्य देखकर महा भयानक, हुआ व्यथित उसका मन ।।३१।।

मूर्च्छा खा गिर पड़ी धरापर, छिन्न-लता-सी तत्क्षण ।
प्राप्त हुई सज्ञा समीर से, उठी बोलती कुवचन ।।
हा ! मेरे अपराध बिनाके, सुतको किसने मारा ।
करते यह दुष्कृत्य अधम ने, कुछ क्यो नही विचारा ।।३२।।

निर्जन वन मे मृगी तुल्य वह, रोती फिरे अकेली ।
ढाढस कौन बन्धाये उसको, सङ्ग न एक सहेली ।।
निधि समान प्यारे सुतको मै, देखू आज कहां पर ।
कटा शीश लखकर बढती है, दु:ख की लहर भयङ्कर ।।३३।।

किस पापी ने निष्कारण ही, तुझ पर हाथ चलाया ।
इससे प्रथम दुष्ट उस नरको, यम ने क्यों न उठाया ।।
सुत-घातक की भूमण्डल मे, नही कुशलता है अब ।
मार पुत्र को अधम मनुजने, लूट लिया मेरा सब ।।३४।।

करती हुई विलाप विपिन में, इधर-उधर थी फिरती ।
शब्द कहीं कुछ सुन पड़ता तो, दृष्टि उधर ही करती ।।
रोती देख वृक्ष के नीचे, सीता जाकर बोली ।
किस कारण निर्जन वन में तू, रोती है हे भोली ।।३५।।

देख राम लक्ष्मण को क्षण भर, सारा शोक पलाया ।
राग भाव ने उसके मन को, अतिशय अहो ! दबाया ।।
हरे क्षेत्र को देख मृगी को, हो भक्षण अभिलाषा ।
त्यों दोनों प्रति उसको उपजी, मन में भोग पिपासा ।।३६।।

सहज पूंछने लगे राम भी, क्यों आयी इस वन में ।
क्या असहाय सर्वथा है तू, पालक नहिं परिजन में ।।
दुष्ट जन्तु परिपूर्ण विपिन में, क्यों एकाकी विचरे ।
धूल-धूसरित वस्त्र सभी क्यों, केश सकल क्यों बिखरे ।।३७।।

निज वृत्तान्त गुप्त रखकर सब, बोली वह निज मुख से ।
हे पुरुषोत्तम ! मैं अभागिनी, जीती हूँ अति दुःख से ।।
माता-पिता बालकपन में ही, मेरे स्वर्ग सिधारे ।
मुझ दुखिनी को इस कानन में, नहीं व्याघ्र भी मारे ।।३८।।

पूर्व जन्म के भाग्योदय से, हुए आपके दर्शन ।
मुझे सद्य अपना करके अब, शान्त कीजिए मम मन ।।
रूपवती कन्या का जग मे, कौन नही अपनाये ?
सुनकर उसके वचन राम यों, मन मे अति सकुचाये ।।३९।।

जान उसे निर्लज्ज हृदय में, दिया न कुछ भी उत्तर ।
हो निराश बोली तब उनसे, जाऊं मैं अपने घर ।।
नहीं कामना हमको तेरी, जा तू इच्छित स्थल पर ।
हुई अदृश्य एक क्षण में वह, रोष हृदय में धरकर ।।४०।।

इच्छा सफल नही होती जब, क्रोध करे तब प्राणी ।
होकर उसके विवश सर्वथा, करता अपनी हानि ।।
आयी पति के पास वेग से, अतिशय रोती रोती ।
धूल धूसरित अङ्ग किये सब, सुध-बुध अपनी खोती ।।४१।।

कर विदीर्ण स्वयमेव, नखों से वक्षस्थल को ।
फाड़ा अन्तः वस्त्र द्विरद, ज्यों नलिनी दलको ।।
नोंच लिया निज अङ्ग, रक्त हो रहा रुधिर से ।
हा, हा ! मैं मर गई, बोलती उच्च स्वर से ।।४२।।

तू हो कान्ते शान्त, वचन बोला खरदूषण ।
किस पापी ने किया तुम्हारा, विकृत मृदु तन ?
सुनिये मेरी कथा ध्यान से हे प्राणेश्वर ।
गई आज जिस समय, विपिन में भोजन लेकर ।।४३।।

देखा मैने कटा शीश, अपने सुतवर का ।
लगा लिया झट पता, खोजकर घातक नर का ।।
उसने मुझको पकड़ लिया, दृढ़ अपने कर में ।
अतिशय बल कर छूट, यहा आयी सत्वर मै ।।४४।।

यह मेरा अपमान, आप अपना ही जाने ।
उसके बध की बात, आप निज मन में ठाने ।।
चन्द्रनखा ने छिपा पाप, पति को भडकाया ।
मृतक पड़ा था पुत्र, वहां खरदूषण आया ।।४५।।

गत चेतन अवलोक हुआ, दुःख उसको भारी ।
शत्रु घात की बात, चित्त में शीघ्र विचारी ।।
बोल उठे धीमान सचिव, नहिं जल्दी कीजे ।
सारा ही यह समाचार, रावण को दीजे ।।४६।।

मार तुम्हारा पुत्र खडग, जिसने है पाया ।
साधारण वह पुरुष नही, इस विधि समझाया ।।
भेजे सब ही समाचार, उसने रावण पर ।
जाता हूँ मैं स्वयं शत्रु, घातार्थ शस्त्र धर ।।४७।।

कायरता है घोर, भूमिवासी से डरना ।
उन दुष्टों का मुझे, आज वध सत्वर करना ।।
है हमको धिक्कार, चाहें जो अन्य सहारा ।
नष्ट हो चुका हाय, आज क्या वीर्य हमारा ।।४८।।

कह कर यों अभिमान युक्त, निकला निज घर से ।
चले बहुत से वीर, साथ में उसके डर से ।।
सुन सेना का शब्द, डरी सीता निज मन में ।
क्यों कोलाहल मचा हुआ, इस भांति गगन में ।।४९।।

शङ्कित मन मे हुए राम भी, क्या यह माया ?
किस कारण विकराल, दुष्ट कोलाहल छाया ?
आये खेचर निकट राम ने, सब कुछ जाना ।
यह सारा दुष्कृत्य, दुष्ट कन्या का माना ।।५०।।

सावधान हो शीघ्र, राम ने धनुष संभाला ।
बोला लक्ष्मण विनय सहित, अतिशय बलवाला ।।
रहते मुझसा बन्धु, आपका जाना अनुचित ।
दे मुझको आदेश, आपका मैं आज्ञांकित ।।५१।।

जाता हूँ हे देव, शत्रु के सन्मुख सत्वर ।
राजसुता की लें संभाल इस ही स्थल रह कर ।।
रन मे दुःख आ पडे कदाचित मेरे ऊपर ।
सिंहनाद मैं करूं श्रवण कर आये सत्वर ।।५२।।

चला युद्ध के लिए शस्त्र निज कर में लेकर ।
लक्ष्मण को झट घेर लिया रिपुओ ने आकर ।।
मारो, मारो, इसे नहीं यह बचने पाये ।
कर नारी अपमान भयङ्कर पाप कमाये ।।५३।।

पृथ्वी पर है एक ओर एकाकी लक्ष्मण ।
और दूसरी ओर खेचरों के सैनिकगण ।।
पर्वत पर जिस भांति बरसता मेह भयङ्कर ।
चला रहे त्यो शस्त्र वीर पर वे विद्याधर ।।५४।।

रोक शत्रु-आघात छोड़ता हरि जब निज शर ।
खग-समान गिर पड़े धरा पर मर कर खेचर ।।
रुक जाते ज्यों आत्मध्यान से कर्म भयङ्कर ।
निष्फल त्यों ही किये वीर ने रिपुओं के शर ।।५५।।

होता था इस भांति भयानक युद्ध जहां पर ।
आ पहुंचा लंकेश रोष से त्वरित वहाँ पर ।।
देख रामयुत सती जानकी को उस वन में ।
लख सीता लावण्य हुआ मोहित निज मन में ।।५६।।

लगा सोचने कौन यहां पर, यह सुकुमारी ?
हरली जिसने रूप मात्र से, सुध-बुध सारी ।।
रति समान सौन्दर्य, सुन्दरी का है सुखकर ।
होता है आनन्द मुझे, इसको लख, लखकर ।।५७।।

उतर पड़ी क्या स्वर्ग लोक से, ही इन्द्राणी ।
होता इससे वज्र, हृदय भी पानी पानी ।।
नव यौवन सम्पन्न सर्वथा, शशि-सा मुख है ।
पाकर ऐसी प्रिया, मनुज को होता सुख है ।।५८।।

चला गया सब रोष, हुआ सीता पर मोहित ।
करने लगा विचार, कामवश मन में अनुचित ।।
आया कोई जान न पाये, मुझको रण में ।
ले जाऊं इस भांति, इसे मैं राज भवन में ।।५९।।

शुभ्र कीर्ति में लगे न, जिससे किंचित् लांछन ।
गुप्त रूप से करूं कार्य, मैं इससे इस क्षण ।।
विद्याबल से सर्व वृत्त, तब उसने जाना ।
रामचन्द्र की प्रिया, जानकी यों पहचाना ।।६०।।

लक्ष्मण रण में गया, राम से इस विधि कहकर ।
आना मेरे पास, सिंह ध्वनि मेरी सुन कर ।।
जब तक इसका प्राणनाथ, हरना है दुष्कर ।
देख अकेली इसे शीघ्र, ले जाऊं हर कर ।।६१।।

मारेगा रण में अवश्य, रिपु को खरदूषण ।
उसमें शक्ति अपार, और है कुल का भूषण ।।
यों, विचार कर सिंहनाद, तब करे दशानन ।
लक्ष्मण का ही शब्द मानकर, रघुपति निज मन ।।६२।।

चले वेग से धनुष बाण, वे अपना लेकर ।
रहना प्रिये सचेत, जानकी से यों कह कर ।।
हे जटायु तुम, नारि-जाति की रक्षा करियो ।
बन को निर्जन जान, किसी से तुम मत डरियो ।।६३।।

पहुंच गए वे राम बन्धु, सन्निधि क्षण भर में ।
तब सीता को जान अकेली, दशमुख उर में ।।
आया उसके पास, और पकड़ा निज बल से ।
होते हैं दुष्काम सफल, इस जग में छल से ।।६४।।

लगा बिठाने निज विमान में, उसको बल कर ।
हुआ जटायु कुपित नराधम, चेष्टा लख कर ।।
नोंच लिया तत्काल नखों से, रावण तन को ।
चीर देह के वस्त्र कर दिया, व्याकुल मन को ।।६५।।

रोक रहा यह विहग, व्यर्थ ही मुझे यहां पर ।
मारा अपना हाथ गिरा, वह शीघ्र धरा पर ।।
किये बहुत से यत्न और रोई चिल्लाई ।
कामातुर उस दुष्ट, अधम को दया न आई ।।६६।।

विष बल्ली सम उसे, सदन ले आया रावण ।
पति वियोगसे परम, सती रोती थी क्षण-क्षण ।।
मन में थी विरहाग्नि, और आंखों में पानी ।
परवशता को प्राप्त हुई, रघुपति की रानी ।।६७।।

पल पल जपती एक, राम की ही शुभ माला ।
विकृत मन हो रहा, किन्तु रावण मतवाला ।।
करने को स्वाधीन उसे, वह लोभ दिखाये ।
करके अनुनय विनय, उसे बहुधा समझाये ।।६८।।

अटल रही वह सिया सबल, बन अपने व्रत में ।
हो निराश-सा लगा, सोचने अपने चित्त में ।।
हर कर इसको पाप, किया है मैंने भारी ।
नहीं चाहती मुझे किसी, विधि भी यह नारी ।।६९।।

छोड़ न सकती कभी अहो, निज पतिकी आज्ञा ।
जो फिर इसकी व्यर्थ करूं, क्यों मैं अभिलाषा ।।
अबला है अतिशय अबध्य, मैं इसे न मारूं ।
करके इसे प्रसन्न नियम मैं अपना धारूं ।।७०।।

जाते ही कुछ समय स्वयं, होगी यह वश में ।
क्यों इसको दूं त्रास, व्यर्थ बनकर कर्कश मे ।।
लख मेरा साम्राज्य, स्वयं ही वश में होगी ।
स्थिर कब तक रहें, देख भोगों को योगी ।।७१।।

देख राम को निकट, त्वरित बोले नारायण ।
आये हैं हे पूज्य आप, रण में किस कारण ?
सुनकर तेरा सिंहनाद, मैं दौड़ा आया ।
समझा मन में दुष्ट, शत्रु ने तुझे दबाया ।।७२।।

बोला लक्ष्मण शीघ्र आप, अब वापस जाये ।
सीता है असहाय वहा, मत समय गुमाये ।।
आये सत्वर राम, सशंकित रण से चलकर ।
आतुर हुए अपार, वल्लभा वहां न लखकर ।।७३।।

भूल गया क्या स्थान, दिखाती यहां न सीता ।
सुषुमा सरित अपार, महा गुणवती विनीता ।।
खोज खोज थक चुके, न जब सीता को पाया ।
पल भरमें तब उन्हे, मूर्च्छा ने अपनाया ।।७४।।

गिरे शोक से विषम धरा पर वे श्री रघुवर ।
वज्रपात से गिरे भूमि पर भारी तरुवर ।।
पाकर अन्य समीर उठे वे व्याकुल रघुपति ।
होती थी पर हाय शोकसे पद चंचल गति ।।७५।।

करने लगे विलाप बालकों-सा वे वन में ।
आया दुःख प्रसंग कहां से इस जीवन में ।।
रह वन में मैं नहीं किसी का चित्त दुखाता ।
तो क्यों फिर दुर्भाग्य दुष्ट वन मुझे रुलाता ।।७६।।

कहां गई है राजसुता सम्प्रति तज मुझको ।
की मैंने ही भूल, दोष दूं फिर मैं किसको ।।
ऐसा भी यह हास्य उचित है नहीं यहां पर ।
हो जिससे उत्पन्न क्लेश मुझको अति दु:खकर ।।७७।।

पूंछूं किससे ? यहां कौन है कहने वाला ? ।
इष्ट विरह का नहीं सहा जाता है भाला ।।
देखा निकट जटायु शकुनि को कंठ प्राण गत ।
दिया उसे नवकार मन्त्र जो है माहात्म्य युत ।।७८।।

कर मनको एकाग्र धर्म में अपने मनको ।
गया शीघ्र ही स्वर्ग धरा में तजकर तनको ।।
यद्यपि ये श्रीराम सदा भव स्थिति के ज्ञाता ।
फिर भी यह चारित्र मोह हा ! उन्हे सताता ।।७९।।

खोजे अपनी प्रिया पूंछते है, तरुवर से ।
निकली क्या मम प्राण वल्लभा कही इधर से ।।
जिसने उसको हरा, हाय ! मुझको ही मारा ।
उस बिन मेरा हुआ आज सुख चौपट सारा ।।८०।।

प्रिया विरह मे करें राम नाना चेष्टायें ।
अपने मनकी विकट व्यथा वे किसे सुनायें ।।
असहायी बन रामचन्द्र वन में थे फिरते ।
इधर सुमित्रानन्द शत्रु-जीवन को हरते ।।८१।।

आया लक्ष्मण निकट युद्ध में वीर विराधित ।
बोला उससे उसी समय होकर अतिशय नत ।।
नाथ, आपका भक्त बात कुछ मेरी सुनिये ।
इस रणका जो मूल दुष्ट 'खरदूषण' हनिये ।।८२।।

पर सुभटों से नाथ स्वयं मैं युद्ध करूंगा ।
ये हैं मेरे शत्रु सभी के प्राण हरूंगा ।।
टूट पड़ा वह क्षुधित सिंह सम खरदूषण पर ।
लगा भगाने-शत्रु-पक्ष को मार मार कर ।।८३।।

आया हूँ मैं चन्द्रोदय का पुत्र विराधित ।
तूने मुझको दिया आज तक दुःख अपरिमित ।।
हुआ घोर संग्राम मचा भारी कोलाहल ।
मुर्दों से भर गया एक क्षण में भूमण्डल ।।८४।।

निकल रही थी जहां तहां हा धार रुधिर की ।
भीषणता सब भांति बढ़ी थी महा समर की ।।
करें परस्पर शस्त्र-पात लक्ष्मण खरदूषण ।
लखकर उनका युद्ध हुआ व्याकुल कायर मन ।।८५।।

उन दोनों को देख, मनुज यों कहें परस्पर ।
लड़ते हैं क्या इन्द्र, और असुरेन्द्र यहां पर ।।
खरदूषण कर लाल नेत्र, लक्ष्मण से बोला ।
चन्द्रनथा पर दुष्ट, चित्त तेरा था डोला ।।८६।।

निष्कारण प्रिय पुत्र, विपिन में तूने मारा ।
पर इसका परिणाम, न मनमें लेश विचारा ।।
सम्प्रति तुझको मार, शीघ्र यमलोक पठाऊं ।
किये बिना प्रतिकार, नहीं मैं पीछे जाऊं ।।८७।।

छोड़े उसने एक साथ, लक्ष्मण पर शत शर ।
बोला लक्ष्मण वीर, बाण सब खण्ड खण्ड कर ।।
पाप-पक्ष ले नीच, युद्ध में लड़ने आया ।
मेरा जैसा सुभट, आज तक कभी न पाया ।।८८।।

अण्ड-वण्ड बक रहा, इसी से भीषण रण में ।
करूं रवाना तुझे, यमालय मे इस क्षण मे ।।
धर ले प्रभु का ध्यान, छोड़ दे ममता माया ।
करने पर भी यत्न, नहीं बचने की काया ।।८९।।

ताक तीव्र तब एक, बाण लक्ष्मण ने मारा ।
भूतल पर तत्काल, गगन से गिरा बिचारा ।।
फिर भी ले तलवार, हाथ में हरि पर धाया ।
तब लक्ष्मण ने, 'सूर्यहास' से शीश उड़ाया ।।९०।।

कटा शीश उस समय, दिखाई दे यों भूपर ।
मानो नभसे पतित हुआ है, अरुण दिवाकर ।।
छोड चुका है प्राण समर में, मर खरदूषण ।
सुन करके यह बात, भगी सेना भी तत्क्षण ।।९१।।

विजय प्राप्त सर्वस्व, विराधित को वे देकर ।
उत्सुकता युत आप, बन्धु पर आये सत्वर ।।
शंकित मन वह वीर, आप स्वस्थल पर आया ।
लेकिन उसने वहां राम को आकुल पाया ।।९२।।

आके वहां जब देखते, तो राम की सीता नहीं ।
दु:खसे भ्रमित सम बंधुवर, तरुवर तले बैठे वही ।।
अवलोक उनकी यह दशा, लक्ष्मण अधिक चिन्तित हुआ ।
बोला हृदय से खेद करता, पूज्यवर, यह क्या हुआ ? ।।९३।।

सविषाद बोले राम तब, हे वत्स, अक्षत अङ्ग हो ।
की प्राप्त जय तुमने अकेल्ले, सौम्य रूप अनङ्ग हो ।।
आ देखता हूँ वत्स तो, निज धाम में सीता नही ।
आया त्वरित था पास से, कुछ काल भी बीता नहीं ।।९४।।

विकराल बन पशु पूर्ण देखा, जानकी दिखती नही ।
मै क्या कहूँ तुझ से यहां पर, भ्रांति मानो हो रही ।।
दु:स्वप्न-सा यह खेल भैया, बन गया क्षण मात्र में ।
उसके विरह की वेदना है, व्याप्त मेरे गात्र में ।।९५।।

चिन्ता न कीजे आप सत्वर, खोजकर हम लायेंगे ।
रिपुगण हमारे आप ही, दुष्कृत्य का फल पायेंगे ।।
आगत दुखों से आपको, व्याकुल न होना चाहिये ।
पर धैर्य रखकर चित्त में, सम-बीज बोना चाहिये ।।९६।।

कहकर नाना वचन मनोहर, हरि ने धैर्य बन्धाया ।
निर्मल जल लेकर सुपात्र में, मुरझा वदन धुलाया ।।
आ पहुंचा उस समय वहां पर, चन्द्रोदय खेचर सुत ।
धरा शीश निज राम पदों में, होकर अति विनयान्वित ।।९७।।

हम सेवक हैं, देव आपके, सेवा आप बतायें ।
व्याकुल देख आपको सम्प्रति, हम सब ही अकुलायें ।।
कहने लगे खेद से हरि तब, हे-हे मित्र विराधित ।
हरकर यहां बन्धु रजनी को, किया किसी ने अनुचित ।।९८।।

इस कारण ये पूज्य दुखित है, छोड़े प्राण कदाचित ।
रह न सकूंगा क्षणभर भी मै, फिर इस जगमे जीवित ।।
पूज्य हमारे प्राण तुल्य हैं, दुःख नहिं देखा जाता ।
दुःख देने में कमी न करता, देखो दुष्ट विधाता ।।९९।।

राज-पाट तज करके अपना, रहे यहा हम वन मे ।
तो भी जाना पड़ा दैववश, हमको सम्प्रति रण मे ।।
सुन यह करुणा कथा विराधित, मन में आप विचारे ।
पा लक्ष्मण-सा भाग्यवान नर, सुकृत फले हमारे ।।१००।।

हाय! आज तक इधर-उधर मै, गिरि, विपिनो मे भटका ।
खरदूषण के स्वर्गवास से, अल्प हुआ दुख घटका ।।
क्लेश दूर हो इन दोनो का, यत्न करू वह सत्वर ।
बोला वीर विराधित मुखसे, बुला आत्म विद्याधर ।।१०१।।

सुना दिया आदेश उन्हे यह, फिरकर इस पृथिवी पर ।
समाचार सीता के लाओ, खोज शैल, वन, पुरवर ।।
रत्न-तुल्य वे लगे खोजने, राम-प्रिया को वन मे ।
स्वामी कार्य के लिये सभी ही, उत्साहित थे मन मे ।।१०२।।

सीता का कर हरण दशानन, जाता आप गगन मे ।
रत्नजटी फिरता था सुख से, विस्तृत गगनागण मे ।।
करती थी उस समय जानकी, दुःखद विलाप भयङ्कर ।
हाय राम, हे! लक्ष्मण सुन्दर, तुम हो आज कहा पर ।।१०३।।

सुन उसका यह शब्द, गगनचर बोला यों रावण से ।
भामण्डल सीता भगिनी को, हर लाया किस वन से ।।
सेवक हूँ भामण्डल का मैं, जाता आज किधर तू ?
मुझसे बचकरके हे पापी, जा न सकेगा घर तू ।।१०४।।

विद्या-रहित किया रावण ने, रत्नजटी विद्याधर ।
पक्ष-हीन पक्षी-सा नभ से, गिरा द्वीप में सत्वर ।।
पुण्योदय से बचा वहां पर, उस मानव का जीवन ।
पर्वत पर प्रतिदिन चढ करके, करे दिशा अवलोकन ।।१०५।।

खोज खोज चहुं ओर विराधित, सेवक समुदय आया ।
राज-नंदिनी का पर उसने, कुछ वृत्तांत न पाया ।।
कर्मोदय बलवान् विश्व में, क्या कर सकता मानव ।
किये हुये उसके प्रयत्न, शुभ होते हैं निष्फल सब ।।१०६।।

कहे विराधित देव नगर में, सुख से आप पधारें ।
रहकर वहां शांति से हम, सब कोई मार्ग विचारें ।।
खोज करेंगे पुन: जगत में, होगी सिया जहां पर ।
समाचार उसका हे स्वामिन्, लायेंगे हम जाकर ।।१०७।।

खरदूषण का मरण श्रवण कर, सुग्रीवादिक खेचर ।
आ पहुंचेंगे रोषयुक्त हो, दुख से व्याकुल होकर ।।
उन वीरो के संमुख टिकना, स्वामिन् महा कठिन है ।
चलें अलंकारोदय पुर में, मेरा यही कथन है ।।१०८।।

चले नगर प्रति, चन्द्रनखा-सुत 'सुन्दर' लडने आया ।
क्षणभर मे चन्द्रोदय-सुत ने, उसको मार भगाया ।।
बन्धु सहित वे राम पधारे, खरदूषण मन्दिर में ।
सीता बिना नही है किंचित्, सीता उनके उर मे ।।१०९।।

पल पल में उस राजसुता की, सुस्मृति उन्हें सताती ।
था विशाल वैभव देवो-सा, शांत न थी पर छाती ।।
जाकर दिव्य जिनालय में तब, मुखसे प्रभु गुण गायें ।
धन्य, धन्य हे देव तुम्हारे, दर्शन मैने पाये ।।११०।।

रहे वहीं पर राम भद्र वे, पुर को पावन करते ।
लगे बिताने काल, हृदय में ध्यान प्रियाका धरते ।।
चन्द्रनखा सुत छोड़ नगर को, लंका में झट आया ।
समझाकर लंका के पतिने, सुख से धैर्य बन्धाया ।।१११।।

❑ ❑ ❑

(सर्ग १०)

ले सीता को गगन-पन्थ से, चला दशानन लङ्का ओर ।
मानों दिव्य निधान चुराकर, भाग रहा हो कोई चोर ।।
कहने लगा रागवश रावण, देख जानकी को मुख म्लान ।
हे सुन्दरि, तेरे हाथों में हैं, सम्प्रति मेरे प्रिय प्राण ।।१।।

हो प्रसन्न अपनी आंखों से, एक बार देखो इस ओर ।
मृदुल गात्रि ! इस दीनमनुज पर, करो न अपना हृदय कठोर ।।
देख तुम्हारा रूप मनोहर, उसके लिये बना उन्मत्त ।
शोक मुक्त होकर के, सत्वर, धरो शान्ति से मुझमे चित्त ।।२।।

अरे नराधम ! दूर रहो तू, स्पर्श न कर मेरा शुचि गात ।
पाप कार्य से बनता मानव, नारकीय पीडा का पात्र ।।
परदारा है गरल भयङ्कर, नहिं सुखप्रद सेवन परिणाम ।
पहुंचा दे अविलम्ब वहां पर, जहां सुशोभित हैं श्री राम ।।३।।

महा दुखद है अवनीतल पर, अन्य कामिनी की अभिलाष ।
कर देती पलभर में सचमुच, राज-पाट, यश, धनका नाश ।।
यह तेरी परदार वासना, तेरा शीघ्र करेगी तन ह्रास ।
चलित न कर सकती सुशील से, मुझको तेरी धनकी राशि ।।४।।

ला रक्खा उसने सीता को, जहां दिव्य बन देवारण्य ।
मुदित हुई सीता न चित्त में, देख दशानन का सब पुण्य ।।
यह सब बन श्मशान उसे था करती मन में आप विचार ।
समाचार पति के पाने पर, ग्रहण करूंगी मैं आहार ।।५।।

चन्द्रनथा रावण तट आकर, करती अतिशय घोर प्रलाप ।
नाथ और सुतके मरने से, बढ़ा हृदय सागर सन्ताप ।।
देता हुआ बन्धु सांन्त्वना यों, बहन न कर तू मन में खेद ।
प्राणनाथ के घातक का मै, शीघ्र करूंगा अब उच्छेद ।।६।।

रो मत तू स्वयमेव विज्ञ है, क्या न जानती विश्व चरित्र ?
अजर, अमर कोई भी अबतक, देखा नहीं गया है अत्र ।।
क्या न सुना तूने मुनियों से, जन्म-मरण मय है सब लोक ।
स्वस्थ चित्त होकर निवास तू, छोड़ सर्वथा दुःखमय शोक ।।७।।

समझा उसे पड़ा शैया पर, दीर्घ दीर्घ लेता निश्वास ।
देख अवस्था दुःखमय पति की, मन्दोदरी गई झट पास ।।
खरदूषण की विकट मौत से, व्यथित न हों मन हे नाथ ।
करें व्यर्थ क्यों चित्त शोक में, मरण निकट है सभी अनाथ ।।८।।

बड़े बड़े योद्धा निज कुल में, तजकर तन पहुंचे परलोक ।
किया नहीं हे नाथ, आपने, उनके लिए कभी यों शोक ।।
कहने लगा दशानन मुख से, यह जीवन तेरे आधीन ।
हृदय वल्लभे ! इस कुल में तुम, सब प्रकार हो महा प्रवीन ।।९।।

तुमसे नही छिपा सकता मै, अपने अभ्यन्तर की बात ।
कहता हूँ सब चरित तुम्हें मै, है जिससे मनमें उत्पात ।।
रति समान लावण्यमयी है, सीता नाम कामिनी एक ।
देख चन्द्र-सा उसका आनन, कूच कर गया सर्व विवेक ।।१०।।

उस बिन तड़फ रहा हूँ, क्षण क्षण, जैसे बिना नीर के मीन ।
बिरह ताप से अनुपम काया, आज हो रही है अति क्षीण ।।
समझा उसे वचन कौशल से, शीघ्र करादे तू तन-योग ।
पाकर के ही उस रमणी के, होगा शान्त चित्त का रोग ।।११।।

बोली मन्दोदरी प्रेम से, तुम हो भरतखण्ड के नाथ ।
नहीं चाहती कौन कामिनी, तुम-सा पुरुषोत्तमका साथ ।।
यदि वह है विरक्त मन तुमसे, आत्म, शक्तिका करो प्रयोग ।
क्यों डरते हैं आप चित्त में, करने से उसका उपभोग ।।१२।।

नियम तोडकर के मैं अपना, नहीं करूंगा भीषण पाप ।
नियम भंग से होती दुर्गति, मिले वहाँ भारी सन्ताप ।।
श्री अनन्त बल मुनि समीप मे, लिया नियम करके सुविचार ।
मुझे न चाहेगी जो प्रमदा, उस पर करूं न मैं अधिकार ।।१३।।

लेकर नियम तोड़ना सचमुच, इस जगती मे महा अयुक्त ।
है निश्चय वह मिले शीघ्र ही, या होऊं प्राणो से मुक्त ।।
प्राणेश्वरी निकट जाकर के, हो मेरी वह, दो यह ज्ञान ।
पहुंच मन्दोदरी बिपिन में, बोली दिखलाती विज्ञान ।।१४।।

जिस नारी पर रावण जैसा, खेचर-पति करता अनुराग ।
विकसित हुआ समझलो उसका, पूर्व जन्मका अनुपम भाग्य ।।
बनो दशानन अङ्कशायिनी, लो इस जीवन का आनन्द ।
करो उसे स्वीकृत प्रमुदित तुम, छोड़ सर्व आग्रह स्वच्छन्द ।।१५।।

अपने सुख के लिये आज से, छोड़ों वनवासी का हाथ ।
त्याग शोक को हर्ष मनाओ, पाकर के रावण-सा नाथ ।।
अमर कामिनियां भी जिसकी, सदा स्वर्ग मे करती आश ।
ऐसा सौम्य दशानन देखो, बन हुआ है तेरा दास ।।१६।।

रहकर उससे विमुख करो मत, निज हाथों द्वारा सुख नाश ।
सुख के लिये यहां होते हैं, प्राणि मात्र के सकल प्रयास ।।
सुन उसके निर्लज्ज वचन यो, बोली सीता सती प्रसिद्ध ।
क्यो न लाज तुझको आती है, बोल रही यो वचन विरुद्ध ।।१७।।

पतिव्रता प्रमदा निज पति को, पाप कार्य मे दे क्या साथ ?
दुष्ट भाव से हर लाया है, वन मे से मुझको तव नाथ ।।
शती शब्द कर दिया कलंकित, निज सुख से यो वाणी बोल ।
पति के हृदय मात्र के सम्प्रति, रही भयङ्कक विष तू घोल ।।१८।।

रामभद्र बिन इस शरीर पर, नही किसी का है अधिकार ।
पतित न हूँगी शील पंथ से, मरने को बैठी तैयार ।।
अबला समझ मुझे ले आया, किन्तु नही सुखप्रद परिणाम ।
यह कुकृत्य कर महा मोह से, किया कलकित अपना नाम ।।१९।।

उसी समय रावण आया त्यो, आता भ्रमर कमल की ओर ।
हे सुन्दरि, मै करू प्रार्थना, सुनो, करो मत चित्त कठोर ।।
मनो व्यथा बढती है मेरी, इस प्रकार लख तुम्हे उदास ।
रक्खो तुम विश्वास हृदय मे, लङ्कापति रावण है दास ।।२०।।

देख, मुखे होकर प्रसन्न तू, छोड़ कोप सारा अभिमान ।
नही आज पृथिवी पर कोई, मेरा जैसा शक्ति-निधान ।।
रोषयुक्त बोली यों सीता, जो चाहे परदारा सङ्ग ।
हे रावण उस पापी नरका, वैभव सब हो जाता भङ्ग ।।२१।।

परधन, परदारा जो चाहे, निष्फल है उसका अवतार ।
हे रावण उत्पन्न हुआ है, तू अपने कुल में अङ्गार ।।
हटो, हटो, बकवाद करो मत, मुझे नही तुमसे कुछ अर्थ ।
संचित तू कर रहा कुमति को, बोल पाप की वाणी व्यर्थ ।।२२।।

उसी समय रवि दुखित हृदय हो, चला गया अस्ताचल ओर ।
व्याप्त हो गया तब जगभरमे, उसी समय तम-राक्षस घोर ।।
विद्या के बल से तब उसने, दिखलाये बहु दृश्य कराल ।
तिमिर व्याप्त उस रजनी मे तब, लगे घूमने अगणित व्याल ।।२३।।

बधिर कर रही थी कानो को, कही हाथियो की चिंघाड़ ।
अट्टहास करते थे व्यन्तर, टूट रहे हो प्रबल पहाड ।।
करके वज्र सदृश्य कठोर मन, सहे रात के सारे त्रास ।
एक रामको तजकर उसने, की न किन्तु दशमुख अभिलाष ।।२४।।

बीत गई रजनी दुख-दायक, तिमिर दूर कर हुआ प्रभात ।
दशमुख के इस दुराचार की, प्रसरित हुई नगर मे बात ।।
विज्ञ विभीषण देख व्यथामय, बोला उससे तुम हो कौन ?
बन्धु समझकर कहो चरित सब, सम्प्रति तोड़ सर्वथा मौन ।।२५।।

जनक-सुता बोली विषाद सह, करती आंखो से जल-पात ।
मेरी दुःखमय महा कहानी, सुनो कर्ण देकर हे भ्रात ।।
जनक राज की सुता कहाऊं, रामचन्द्र हैं जीवन नाथ ।
छलकर मेरे प्राण नाथ को, ले आया दशमुख निज साथ ।।२६।।

प्राण नाथ मेरे वियोग में, तज देंगे हा! अपने प्राण ।
वे न रहेंगे जब धरती मे, निश्चित तब मेरा अवसान ।।
धर्म बहिन तुम मुझे समझ कर, करो शीघ्र मेरा उद्धार ।
नही जन्म भर भूल सकूंगी, दुःख-मुक्तिका शुभ उपकार ।।२७।।

सुनकर सब वृत्तान्त ध्यान से, गया विभीषण रावण पास ।
कहने कुछ आया हूँ तुमसे, है तुमको मेरा विश्वास ।।
नहीं किया शुभ कार्य आपने, लाकर परदारा अङ्गार ।
होगा उससे भस्म सर्वथा, पुण्यमयी सारा परिवार ।।२८।।

प्रसरित हैं चहुं ओर विश्व में, कीर्ति तुम्हारी चन्द्र समान ।
करो कलंकित नाथ ! न उसको, परदारा है नरक-निधान ।।
करते नहीं विज्ञ जन जग में, इस प्रकार अनुचित अन्याय ।
तुम समान उत्तम पुरुषों से, रहता है जीवित जग-न्याय ।।२९।।

हो प्रवृत्त अघमें जब अधिपति, कौन करेगा तब शुभ धर्म ।
छोड़ें आप आत्म-दुर्बुद्धि, जानें सत्य कर्म का मर्म ।।
मोहासक्त दशानन बोला, जो पदार्थ है जग मे सार ।
स्वयं जानते हो तुम मन में, उन पर है मेरा अधिकार ।।३०।।

महा विज्ञ मारीच सचिव तब, अपने मन में करे विचार ।
अन्ध बना देता क्षणभर में, बलियोंको भी मोह विकार ।।
देखो, वीर दशानन जग मे, है सच्चा हीरा नहिं काच ।
किन्तु उसे ही व्यथित कर रहा, क्षण क्षणमें यह काम पिशाच ।।३१।।

नन्दन-वन सम महा मनोहर, है लंका मे प्रमदोद्यान ।
सीता रहे अशोक वृक्ष तट, धरती अपने पति का ध्यान ।।
करने मुदित उसे वह रावण, करता नाना भांति प्रयास ।
सती सामने लेश मात्र भी, सफल न होती उसकी आश ।।३२।।

अपनी श्रेष्ठ दासियों द्वारा, वहां अशन भेजे शुभ मिष्ट ।
दूर फेंक देती थी सीता, मान उन्हें अतिशय उच्छिष्ट ।।
ले ले दिव्य वस्तुयें अनुपम, रहें उपस्थित दासी दास ।
हुई नही सीता प्रसन्न पर, रहे सर्वदा महा उदास ।।३३।।

कहे दशानन सेवक से यो, सीता करती नहीं आहार ।
नहीं बन्द होती है उसकी, दीर्घ द्रगों से जलकी धार ।।
सफलित देख न आशय अपना, हुआ व्यथातुर अति लंकेश ।
व्याप्त हो गया रोम-रोम में, भीषण महा कामका रोग ।।३४।।

डूब घोर चिन्ता समुद्र में, लेता दीर्घ उष्ण निःश्वास ।
नहीं जान पाता है उनको, जो जन मिलने आते पास ।।
हाथ-पैर पटके पृथिवी पर, कभी देखता नभकी ओर ।
बाल-तुल्य रोने वह बैठे, पुनः कभी आनन्द विभोर ।।३५।।

सोचे अपने आप चित्त में, परिवर्तन कैसा यह आज ।
बना हुआ है सेवक मेरा, सविनय खेचर मर्त्य समाज ।।
फिर भी एक कामिनी मेरे, होती नहीं लेश आधीन ।
पाकर भी साम्राज्य प्राज्य मैं, बना हुआ हूँ कैसा दीन ।।३६।।

कहे विभीषण सब सचिवों से, नहीं स्वस्थ सम्प्रति लंकेश ।
ऐसे विकट समय में सोचो, क्या है निज कर्तव्य विशेष ?
मरा वीर खरदूषण रण में, हुआ विराधित सिंह समान ।
पाकर के लक्ष्मण के बलको, अपने रिपु होंगे बलवान ।।३७।।

वानर-वंश विश्व उन्नत हो, पवन पुत्र देगा निज साथ ।
शनैः शनैः हो सकता इस विधि, बलशाली निर्बल निजनाथ ।।
बोला तब संभिन्न सचिव यों, खरदूषण पहुंचा परलोक ।
इससे इस लंकेश वीरका, हुआ न्यून क्या शौर्यालोक ।।३८।।

सुनकर शत्रु प्रशंसा तुम मुख, लाज हमें आती है घोर ।
भूल विपक्षी की विशालता, क्यो न देखते अपनी ओर ।।
एक एक से बढ़ कर योधा, बने हुये रावण के दास ।
क्या बिगाड़ सकता है अपना, शत्रु पास का शस्त्र बिलास ।।३९।।

शीर्ष हिला बोला सहस्रमति, आत्म प्रशंसा से क्या काम ?
क्षणभर में बलवान हमी हैं, हो जाता देखो दुःख धाम ।।
मत मानों बलवान हमी हैं, तथा हमें सब कुछ अधिकार ।
समझो तुम इस दीर्घ धरा पर, लेते भाग्यवान अवतार ।।४०।।

तुच्छ न समझो कभी शत्रु को, अहो ! अग्निका कण भी लेश ।
पाकरके संयोग तनिक में, कर सकता जगको निःशेष ।।
पूर्व समय में अश्वग्रीव था, शस्त्र और सेना से युक्त ।
अल्प सैन्य धारक त्रिपिष्ट ने, किया समरमें तनसे मुक्त ।।४१।।

परिवर्तनमय सकल लोक है, विधिवश क्या लगती है देर ।
देखो, पल भरके प्रकम्प से, महानगर बनता मृद् ढेर ।।
आ न सकें नगरी में कोई, अन्य पक्षका दूत मनुष्य ।
अधुना पुर रक्षार्थ कीजिये, मिलकर ऐसा महाप्रयत्न ।।४२।।

नगरी का वृत्तान्त वाह्य में, जान सकेगा जब लवलेश ।
नही मिलेगा समाचार कुछ, तब रघुपति को होगा क्लेश ।।
उसी क्लेश में देह तजेंगे, लक्ष्मण फिर होगा असहाय ।
होगी रावण की सीता फिर, कर सकता क्या रिपु समुदाय ।।४३।।

मायामयी महा मन्त्र से, किया सुवेष्टित पुर चहुं ओर ।
होती रहे सर्वदा उसकी, देख रेख अत्यन्त कठोर ।।
देख कोट पर मन्त्र-शक्ति को, होते शक्तिमान भयभीत ।
भले पाप आनन्द करे कुछ, किन्तु धर्मकी होती जीत ।।४४।।

सुग्रीव खेचर-पति भ्रमण, करता हुआ आया वहां ।
सेना सहित भूपर पड़ा था, वीर खरदूषण जहा ।।
लाखों गगन-चार प्राण तजकर, छिन्न-भिन्न पड़े वहां ।
यों देखके रण क्षेत्र को, व्याकुल हुआ मन में महा ।।४५।।

सुन वीर खरदूषण मरण, चिन्ता करे मन में बड़ी ।
हा ! टाल सकता कौन मेरी, इस समय दुःखकी घडी ।।
इस काल दिग्गज ने गिराया, आज आशा वृक्ष को ।
जाके कहूँ किस वीर से, दुख पूर्ण अपने पक्ष को ।।४६।।

जो जो दशानन से कहूँ, विश्वास उसका है नहीं ।
वह मार रिपुको युद्ध में, ले ले सुतारा को कही ।।
मारा जिन्होने वीर खरदूषण, बिकट संग्राम मे ।
होंगे सहायक वे मुझे, जाऊं उन्ही के धाम मे ।।४७।।

सीता विरह से इस समय वे राम व्याकुल है तथा ।
सम दुःख है, करके कृपा, होंगे सहायक सर्वथा ।।
जाकर बिराधित से मिला, सुग्रीव सुखकर प्रीति से ।
फिर राम-लक्ष्मण से मिला, सुन्दर नृपोचित रीति से ।।४८।।

संकोच तज श्री राम को, उसने सुनाई निज कथा ।
सुनकर कथा तत्क्षण हुई, उनके हृदय में भी व्यथा ।।
सुग्रीव तुम मेरे सुहृद, टालूं तुम्हारे कष्ट को ।
तुम सिद्ध करना शीघ्र ही, पश्चात् मेरे इष्ट को ।।४९।।

सुग्रीव होकर तुष्ट मन, बोला विनय युत राम से ।
कृतकृत्य हूँगा मैं जगत में, आपके शुभ काम से ।।
जो सात दिन में नाथ मैं, सीता खबर लाऊं नही ।
तो अग्नि द्वारा देह अपना, मैं जलाऊंगा सही ।।५०।।

होगा न वैर कभी परस्पर, साक्षी श्री जिनराज हैं ।
अब लोक करके दृष्टि से, हम धन्य रघुवर आज हैं ।।
सुग्रीव तज लङ्केश को, श्री राम आश्रम में गया ।
इस बात से पर पक्ष में, आश्चर्य भारी छा गया ।।५१।।

लेकर राम और लक्ष्मण को, आया खेचरपति पुर पास ।
मायामय सुग्रीव युद्ध के लिये, चला धर कर उल्लास ।।
लडने लगे परस्पर दोनों, करके देह मोह परिहार ।
मायावी सुग्रीव दुष्ट ने, किया गदा का तीव्र प्रहार ।।५२।।

पीडावश तत्काल वहां पर, मूर्च्छित हुआ सत्य सुग्रीव ।
प्रमुदित होता हुआ हृदय में, गया सदन कृत्रिम सुग्रीव ।।
कर चेतनता प्राप्त शीघ्र ही, बोला यों विद्याधर नाथ ।
चला गया जीवित क्यों पापी, क्यों न किया उसका तनपात ।।५३।।

बोले राम रूप, यौवन सब, तुम दोनों का एक समान ।
कठिन हो गई हमें वहां पर, कृत्रिम अकृत्रिम की पहचान ।।
पुनः चले युद्धार्थ राम तब, गया और खेचर पति साथ ।
हो न भ्रान्ति इससे केशव ने, पकड़ लिया था उसका हाथ ।।५४।।

आया मायावी खेचर पति, करने को भीषण संग्राम ।
चली गई वैताली विद्या, मायावी की लख श्री राम ।।
लख रणार्थ प्रस्तुत उसको तब, छोड़ राम ने अपना बाण ।
पल भर में कर डाला सुखसे, उस साहसगति को निष्प्राण ।।५५।।

जय जय के गम्भीर घोष से, गूँज उठा सारा आकाश ।
पुण्यवान अत्यन्त राम हैं, आया यह सबको विश्वास ।।
करता हुआ राम का मुख से, बार, बार अनुपम गुणगान ।
चला गया सुग्रीव शीघ्र ही, आतुरता सह अपने स्थान ।।५६।।

पाके सती सुतारा उसका, हुआ मोद से हर्षित गात ।
इधर राम सीता वियोग में, बिता रहे थे दुःखकी रात ।।
दीं सुग्रीव मित्र ने उनको, तेरह कन्यायें गुणखान ।
नाना दिव्य कलाओं द्वारा, करें राम को वे सुखदान ।।५७।।

करने दूर खेद उनका वे, करें क्रियायें पति अनुकूल ।
किन्तु राम उनकी क्रीडा से, सके नहीं सीता को भूल ।।
प्रिया मिलन से मुदित गगनपति, आया नहीं राम के पास ।
वह प्रमाद वश भूल गया जो, उन्हें दिलाया था विश्वास ।।५८।।

तब सुग्रीव सदन पर पहुंचे, सौमित्री हो कोपाविष्ट ।
बोले पड़कर प्रिया प्रेम में, भूला सभी हमारा इष्ट ।।
रामचन्द्र पत्नी वियोग में, भोग रहे हैं कष्ट अपार ।
अपने वचनों का भी तुझको, आता नहिं क्या लेश विचार ।।५९।।

तब सुग्रीव जोड़कर अंजलि, सविनय उनको करे प्रणाम ।
और त्वरित ही सौमित्री सङ्ग, आया जहां विराजत राम ।।
करे क्षमा मम भूल प्रेम से, बोला बन सेवक निःशेष ।
ढूड़ो प्रिया रामकी तुम सब, सेवक गण को दिया निर्देश ।।६०।।

सुन सुग्रीव वचन विद्याधर, गये दिशाओ में सर्वत्र ।
रामनिकट आया भामण्डल, बहिन हरणसे क्लेशित चित्त ।।
दोनो अधिपतियों के सेवक, लगे खोजने पुर उद्यान ।
आ पहुंचा सुग्रीव वहां पर, जहां महेन्द्र शैल भयवान ।।६१।।

रत्नजटी को देख वहां पर, बोला यों सुग्रीव नितान्त ।
किस कारण हे वीर हुआ यह, तेरा दुःखदायक वृत्तान्त ।।
डरो नही, मैं भी मनुष्य हूँ, नहीं हरूंगा तेरे प्राण ।
मुझको इस निर्जन प्रदेश में, समझो अपना बन्धु समान ।।६२।।

सुन उसकी निर्भय प्रद वाणी, बोला यों गिरिस्थ विद्येश ।
सीता को हर कर जाता था, गगन मध्य पापी लंकेश ।।
विचर रहा था मै भी नभ मे, सुन सीता का हाहाकार ।
कहा शीघ्र रावण से मैंने, करो न तुम यों पापाचार ।।६३।।

भामण्डल की सती स्वसा यह, रामचन्द्र इसके प्राणेश ।
अवसर जाता देख चित्त में, किया न मुझसे युद्ध विशेष ।।
हरली हा ! आकाश गामिनी, उसने मेरी विद्या सर्व ।
पड न जलधि में, पड़ा शैलपर, खोकर मैं अपना सब गर्व ।।६४।।

लेकर उसको चला गया था, दशमुख झट लङ्का की ओर ।
उठा किसीका द्रव्य वेग से, गमन किया करता ज्यों चोर ।।
मैं सेवक हूँ भामण्डल का, रत्नजटी मेरा अभिधान ।
देव-योग से टिके हुए हैं, इस भीषण गिरि पर मम प्राण ।।६५।।

जाता वहां मुदित मन सत्वर, जहां सुशोभित थे श्रीराम ।
लगा सुनाने कथा हरण की, करके सविनय उन्हें प्रणाम ।।
उठा ले गया है सीता को, लङ्कापति अपने ही धाम ।
देखी उसको नाथ गगन में, रोती थी अतिशय अभिराम ।।६६।।

उसके मुख से क्षण मे सब, पाकर प्राण-प्रिया का वृत्त ।
मिल जाने से समाचार के, हुये राम अति हर्षित चित्त ।।
लगे पूछने निकट जनो से, रावण नगरी कितनी दूर ।
दिया न उत्तर वहा किसी ने, होकर भय से चकना-चूर ।।६७।।

मौन देख, सब भाव समझकर, कहने लगे राम इस भांति ।
डरे न उससे आप हृदय मे, छोड दीजिए सारी भ्रॉति ।।
बोले विनयवान विद्याधर, भक्ति साहेत दोनो कर जोड़ ।
जनक-नन्दिनी का आग्रह अब, करके कृपा दीजिये छोड़ ।।६८।।

लवण जलधि के मध्य जगत में, है प्रसिद्ध अति राक्षस द्वीप ।
वहीं दीर्घ लंका नगरी में, जाना दुस्तर जहां समीप ।।
महा शूर दशमुख रहता है, जिसमें निज परिजन के साथ ।
अगणित विद्याधर चरणों में, जिसे नमाते रहते माथ ।।६९।।

स्वर्गपुरी-सी उस लङ्का में, दशमुख वीर विभीषण बन्धु ।
उस लङ्का को घेर रहा है, चार दिशाओं में दृढ़ सिंधु ।।
जीत न सकते जिसे देव भी, इन्द्रजीत है सुत बलवान ।
कुम्भकर्ण के सन्मुख सत्वर, तजे वीर अपना अभिमान ।।७०।।

जिसकी पत्थर मूर्ति देखकर, कम्पित हो रिपु पत्र समान ।
उस रावण से युद्ध खेलना, है कोरा अपना अज्ञान ।।
सुन बातें आकाश चरों की, गर्जा वहां सुमित्रा नन्द ।
बन्धु प्रिया के समाचार से, उपजा है हमको आनन्द ।।७१।।

पर सुनकर कायर वाणी को, होता क्लेश चित्त में घोर ।
नही वीर रावण है जग मे, उसे मानते पक्का चोर ।।
गुप्त रूप से हरण कर गया, जब वह वन मे से परदार ।
है आश्चर्य अपार, चोर को, बली मानता क्यों संसार ।।७२।।

कहा राम ने करना है अब, सत्वर लंका ओर प्रयाण ।
देखेगे संग्राम-भूमि में, है दशमुख कैसा बलवान ।।
अन्य कामिनी से न काम कुछ, भले रहे वह शची समान ।
जनक-सुता के लिये बना है, मेरे चित्त-भवन मे स्थान ।।७३।।

देख दृढाग्रह रघुपति का यो, जाम्बूनन्द बोले यो बात ।
दशमुख ने पूंछा था मुनिसे, किससे होगा मेरा घात ।।
जो पुरुषोत्तम उठा सकेगा, कोटि शिलाको अपने हाथ ।
है निश्चित उसके द्वारा ही, नाशवान तब तनका पात ।।७४।।

होने को नि:शक हृदय वे, गये शिला प्रति लक्ष्मण साथ ।
कोटि शिला को उठा लिया तब, लक्ष्मण ने सविनय निज हाथ ।।
हुई गगन से जय-जय ध्वनि अति, मुदित हुये सब विद्यावान ।
करते तर्क, वितर्क अनेको, आ पहुचे सब अपने स्थान ।।७५।।

जाम्बूनन्द मन्त्रीगण मिलकर, रामभद्र से करे सलाह ।
सीता को वापस लाने की, समुचित यहाँ कौनसी राह ।।
दो उपाय सम्प्रति लाने के, समझे दशमुख या संग्राम ।
समझ सके यदि शुभ सलाह से, नहीं समरसे फिर कुछ काम ।।७६।।

होता नहीं कभी रिपु रण का, जग में सुखकारी परिणाम ।
है कराल यह युद्ध सर्वथा, दु:खकारी हिंसा का धाम ।।
भेज किसी विद्याधर को हम, जानें उसके मन की बात ।
तत्पश्चात् करेंगे हम सब, साम, दाम अथवा उत्पात ।।७७।।

बनी हुई माया मन्त्रों से, आज पुरी लंका विकराल ।
है मानव प्रवेश अति दुस्तर, वहां न जा सकता है काल ।।
यहाँ उपस्थित में से कोई, नही वहां जाने को शक्त ।
और इस समय रावण हमसे, हो बैठा है अधिक विरक्त ।।७८।।

है पवनंजय पुत्र विश्व मे, हनुमान अत्यन्त प्रसिद्ध ।
सम्भव है उसके जाने से, कार्य सहज में होगा सिद्ध ।।
तब श्री शैल स्वपुर से आये, मिले राम से प्रमुदित चित्त ।
मिलकर देव आपसे पाया, निज जीवनका लाभ पवित्र ।।७९।।

साहसगति को मार आपने, किया दूर कपिवंश कलंक ।
दीजे कुछ आदेश आप अब, कर सेवा मैं बनूं निशंक ।।
बोले राम-मित्रवर सहसा, करा रहा हूँ तुमसे कार्य ।
जाकर समझाओ लंका में, दशमुख को सत्वर हे आर्य ।।८०।।

बोले तब हनुमान प्रेमवश, रहें आप मन में निश्चिन्त ।
समझा या कुछ समाचार ले, आ पहुंचूंगा यहां तुरन्त ।।
अल्प सेवको के सहित वीर ने, कर प्रभुकी स्मृति किया प्रणाम ।
जाते हुए गगन से उसने, देखे शोभामय वहु स्थान ।।८१।।

मातामह पुर देख हृदय मे, आया उसको यही विचार ।
इसी नगर के अधिपति ने हा, माता को दु:ख दिया अपार ।।
होकरके भी पिता लोक वश, भूल गया था अपना कृत्य ।
नही बुद्धि से सोचा कुछ भी, राज-सुताका दीर्घ भविष्य ।।८२।।

माता के अपमान सोच से, बढा हृदय में उसके रोष ।
उठा अचानक नभ मण्डलमें, रण वाद्यों का भीषण घोष ।।
रिपु को आया समझ नगर में, निकला सत्वर वीर महेन्द्र ।
सुरों सहित आ पहुंचा मानों, शूर वीरता धारक इन्द्र ।।८३।।

हुआ घोर संग्राम परस्पर, हनुमान ने तोड़ा चाप ।
तब महेन्द्र ले अन्य धनुष को, आ पहुंचा सन्मुख झट आप ।।
तोड़ दिया वह भी जब उसने, आया तब महेन्द्र का पुत्र ।
छोड़े तीक्ष्ण शस्त्र दोनों ने, एक दूसरे को लख शत्रु ।।८४।।

पकड़ लिया हनुमान वीर ने, उसके शस्त्रों का कर चूर ।
आया पुनः महेन्द्र वेग से, रिपुपर हो करके मन क्रूर ।।
पवनंजय सुत पर शस्त्रों का, करता वह विकराल प्रहार ।
किन्तु वीर निज शस्त्र कला से, करे उन्हें क्षण में निःसार ।।८५।।

उस महेन्द्र ने हनुमान पर, छोड़े जो जो पैने बाण ।
निष्फल वे सब गये शैल पर, जैसे निष्फल मेघ महान ।।
उछल पवन-सुतने निज रथ से, पकड़ लिया विद्येश महेन्द्र ।
पकड़ लिया था दशमुख ने ज्यों भूतकाल में नामी महेन्द्र ।।८६।।

बोला प्रेम विवश नृप उससे, है प्रशस्य तू हे हनुमान ।
देखा नही आज तक मैने, तेरा-सा अनुपम बलवान् ।।
तेरे माननीय गुण गण ने, किया हमारा वश पवित्र ।
रवि समान हे वीर प्रतापी, जयवन्तो जग मे सर्वत्र ।।८७।।

इस अकाल दुस्तर रण द्वारा, हुआ आपका जो अपमान ।
करे क्षमा हे पूज्य सर्वथा, ज्ञानहीन बालक निज जान ।।
कह कर सब वृत्तात वहां से, सत्वर आगे किया प्रयाण ।
आते ही लंका समीप मे, सहसा उसका रुका विमान ।।८८।।

बोला तब पृथुमति मन्त्रियो से, दुष्कर सम्प्रति नगर प्रवेश ।
मायामयी दीर्घ यन्त्रों से, सर्व कोट है सज्ज विशेष ।।
देख न जा सकते है पुर मे, तो फिर मानव की क्या बात ?
कहा शीघ्र हनुमान वीर ने, करूं कोट का आज निपात ।।८९।।

समझ रहा रावण क्या मन मे, दूर करूं मै उसका गर्व ।
मायावी पुतली के मुख में, किया प्रवेश शस्त्र ले सर्व ।।
राहु बदन मे चन्द्र-तुल्य वह, निर्भय झट कर गया प्रवेश ।
मायामयी मूर्ति के अन्दर, गुफा तुल्य था तिमिर विशेष ।।९०।।

बलशाली उस मनुज-व्याघ्र ने, दिया नखों से उदर बिदार ।
गिरा दिया वह कोट पलक में, करे मोहका मुनि संहार ।।
चला न विद्या का बल जब कुछ, चिल्लाती कर गई प्रमाण ।
रक्षक बली 'वज्रमुख' सन्मुख, लेकर आया तीक्ष्ण कृपाण ।।९१।।

हुआ सिंह सम युद्ध परस्पर, तथा लडे योधा बलवान् ।
पवन-पुत्र की प्रबल शक्तिसे, रणसे रिपु कर गये प्रयाण ।।
विकट चक्र से कोटपालका, किया देह से मस्तक भिन्न ।
देख पराजय इस विधि रिपुकी, हुये कपिध्वज सभी प्रसन्न ।।९२।।

प्राण शून्य अवलोक पिता को, उठी हृदय जो शोक तरङ्ग ।
रोक उसे अत्यन्त धैर्य से, सुता उठी रथ जोत तुरङ्ग ।।
यह अबला बन समर चण्डिका, आ पहुंची रण मे तत्काल ।
बोली तीव्र रोप युत वाणी, आया अब तुम सबका काल ।।९३।।

क्षण भर मे हनुमान वीर ने, उड़ा दिया उसका सिर छत्र ।
उसने भी तब तीक्ष्ण शरों से, तोडा रिपुका चाप विचित्र ।।
होता रहा युद्ध शस्त्रो से, हुई न कुछ भी जीत अजीत ।
पर बालाके विमल चित्तमे, उपजी हनुमान पर प्रीति ।।९४।।

हुआ और श्री शैल विमोहित, लखकर उसका रूप निधान ।
किसे न करते व्यथित जगत मे, हाय ! कामके दुर्धर बाण ।।
फेक सर्व आयुध समूह को, करे सुन्दरी सोच-विचार ।
किया बिकट अपराध शत्रु ने, मेरे पूज्य पिता को मार ।।९५।।

द्वेष योग्य ही सब प्रकार है, किन्तु चुराता मेरा चित्त ।
लगा बाण मे भेजा उसने, प्रिया समीप सन्देश पवित्र ।।
नही जीत सकते मुझको सुर, जीत लिया पर तुमने नाथ ।
तन, मन सभी समर्पण तुमको, ग्रहण कीजिए मेरा हाथ ।।९६।।

उतर शीघ्र अपने रथ पर से, जाके मिले उसे हनुमान ।
हनुमान रवि के सुयोग से, विकसित हुआ सुता मन-म्लान ।।
भूल गये क्षण भर मे दोनो, समर-क्षेत्र का वैर विशेष ।
इस प्रकार मिलकर दोनो को, हुआ वहां आल्हाद अशेष ।।९७।।

पुण्यवान मानव को जग में, मिलते अनायास में भोग ।
जाती और समीप वस्तु भी, पुण्य न करते हैं जो लोग ।।
उस अभेद्य लंका में सत्वर, पवन पुत्र ने किया प्रवेश ।
पहुंचा विज्ञ विभीषण गृहमें, बोला वचन शांति निःशेश ।।९८।।

अहो ! विभीषण बन्धु तुम्हारा, कर बैठा क्यो अनुचित काम ?
दीन रंक बन परदारा को, ले आया क्यों अपने धाम ।।
यदि शासक ही जानबूझकर, करे पाप में आप प्रवृत्ति ।
किस प्रकार हो सकती है फिर, जनसमूह मे शुभमय प्रवृत्ति ।।९९।।

रावण का दुष्कृत्य भयंकर, निर्मल कुलको करे मलीन ।
समझाओ जा उसे सद्य ही, सकल राज्य में तुम्ही प्रवीण ।।
सुन उसकी अपकीर्ति विश्व में, व्यथित हो रहे मेरे कान ।
प्रबल मोह के वश में उसको, रहा नहीं क्या कुलका ध्यान ।।१००।।

कहने लगा विभीषण मुख से, है जगती में बली विकार ।
वह न समझता मनमें किंचित् समझाया मैंने बहु बार ।।
जिस दिन से ले आया सीता, उस दिन से वह करे न बात ।
परदारा के ही विचार मे, नहीं देखता दिन या रात ।।१०१।।

तो भी एक तुम्हारे कारण, बचन कहूँगा मै दे जोर ।
नही तजेगा किन्तु दुराग्रह, बना लिया मन महा कठोर ।।
आज ग्यारवां दिन सीता को, नहीं लिया जल और आहार ।
तो भी नही दशानन मन मे, होता करुणा का संचार ।।१०२।।

सुन सीता की कथा वेग से, पहुचा वहां भव्य हनुमान ।
जहा प्रमद नामक उपवन है, बैठी सिया महा मुख म्लान ।।
बिखर रहे थे केश शीश के, और शुष्क था सकल शरीर ।
उष्ण-उष्ण निःश्वास ले रही, दोनो आंखो मे था नीर ।।१०३।।

गुप्त वही पर रहा पवन-सुत, राम-मुद्रिका सन्मुख डाल ।
देख उसे सीता के मन ने, अद्‌भुत हर्ष हुआ तत्काल ।।
पहुंचा रावण निकट नारिगण; तन उसका पुलकित अवलोक ।
नाथ, आज सीता प्रसन्न है, दूर हुआ है अब सब शोक ।।१०४।।

मन्दोदरी सहित अन्त:पुर, आया वहां जान सुप्रसन्न ।
बोली रावण प्रिया प्रेम से, भोग भूमि में हो मत खिन्न ।।
तीन खण्ड अधिपति रावण को, करके अब निर्भय स्वीकार ।
स्थित हो करके विमानमें, निरावाध तुम करो बिहार ।।१०५।।

कोप सहित बोली कुछ सीता, मिला मुझे पति का वृत्तांत ।
इससे सम्प्रति मैं प्रसन्न मुख, हुआ शोक कुछ मेरा शांत ।।
अन्य पुरुष से नहीं काम कुछ, मुझे एक रघुपति से प्यार ।
इस विपत्ति में इष्ट देव सह, जपूं उसी को बारम्बार ।।१०६।।

उसी समय श्री शैल विनययुत, आ पहुंचा सीता के पास ।
अपना नाम, काम सब कहकर, उपजाया उसने विश्वास ।।
मधुर वचन वह लगा बोलने, बन्धु सहित सुख से है राम ।
किन्तु तुम्हारी विरह व्यथा से, रुचे नही विद्याधर धाम ।।१०७।।

सजन नेत्र बोली वह सीता, पुरस्कार क्या दूं हे भ्रात ।
पति सन्देश सुनाकर तुमने, किया प्रफुल्लित मेरा गात ।।
हुआ आपका दर्शन आर्ये, मेरे लिये यही सर्वस्व ।
करो शोक मत, लेश मात्र अब, मानो दु:ख सब गया अवश्य ।।१०८।।

राम चरित सम्बन्धी उन मे, होता रहा सुवार्तालाप ।
बोली मन्दोदरी शीघ्र ही, मानो करती हुई प्रलाप ।।
हे हनुमान यहां आया तू, बनकर भूमिगोचरी दूत ।
मुझे जान पड़ता है इससे, लगा तुझे सचमुच मे भूत ।।१०९।।

मेघ-तुल्य गम्भीर गिरा से, पवन-पुत्र बोला नि:शक ।
आज दशानन राक्षस कुल मे, लगा रहा है महा कलंक ।।
क्यो न रोकती हो तुम उसको, सुखद नही होती अघ-राह ।
कर अनुमोदन पाप कार्य में, बढ़ा रही हो क्यों उत्साह ।।११०।।

दिखलाना सन्मार्ग नाथ को, महिलाओं का उत्तम काम ।
किन्तु प्रेरणा कर दुष्पथ में, किया सतीपनको बदनाम ।।
कहने लगी दशानन रानी, पवन-पुत्र तुम हो अतिदुष्ट ।
छोड़ दशानन संग व्यर्थ ही, पाप-पक्ष ले रहे अशिष्ट ।।१११।।

खेचर सुग्रीवादिक जो जो, छोड़ पक्ष रावण का अद्य ।
बने हुए सेवक रघुपति के, होंगे नष्ट देखना सद्य ।।
आ पहुंचा है काल तुम्हारा, इससे लंका पति को छोड़ ।
सभी पूर्व उपकार भूलकर, नाता लिया राम से जोड़ ।।११२।।

क्रोध युक्त बोली सीता यों, मन्दोदरी न तुझ में बुद्धि ।
व्यर्थ यहां पर अपने पति की, प्रगट कर रही है बलवृद्धि ।।
शूरवीर नीतिज्ञ पराक्रम युक्त, सर्वथा है मम नाथ ।
दिव्य चरिता मूर्ति मनोहर, रहता लक्ष्मण उनके साथ ।।११३।।

देवदत्त जिनके धनुषों की, सुन करके भीषण टंकार ।
छिप जाते रिपु रणवासों में, करके बन्द भवन के द्वार ।।
आयेगे अब नाथ हमारे, होगा तब रावण निष्प्राण ।
कहती हूँ इस समय तुझे जो, सत्य सर्वथा उसको जान ।।११४।।

निज कानों से सुन पति निन्दा, हुआ कुपित नारी समुदाय ।
उद्यत हुआ मारने उसको, प्रगटित करता तीव्र कषाय ।।
रोक दिया हनुमान वीर ने, मान भंग तब अपना जान ।
दुखित चित्त रावण पर आई, करके वन से शीघ्र प्रयाण ।।११५।।

हनुमान के शुभ वचनों से, दुखित हृदय कुछ लिया आहार ।
समाचार के मिल जाने से, किया कुशलता का निर्धार ।।
तत्पश्चात् विनय युत उससे, कहने लगा वीर हनुमान ।
चलें साथ में पहुंचा दूं मैं, जहाँ राम, लक्ष्मण बलवान ।।११६।।

लगी बोलने सीता मुख से, करती हुई रुदन संक्लेश ।
आ सकती तब तक मैं कैसे, जब तक नहीं नाथ आदेश ।।
भैया, सत्वर गमन करो अब, सुन करके सारा वृत्तांत ।
कर बैठे लंकेश अहित कुछ, मनमें होकर अधिक अशांत ।।११७।।

बिगड जायगा क्षण भर में यों, बना बनाया सारा काम ।
रावण में विद्रोह अधिक है, नही शांत उसके परिणाम ।।
जाकर स्वामी निकट भ्रात तुम, कहना उनको मम प्रणाम ।
साधु तुल्य प्रत्येक समय मे, जपती रहती पतिका नाम ।।११८।।

❑ ❑ ❑

(सर्ग ११)

बन दूत आया शत्रु का, यह बात रावण ने सुनी ।
        तत्काल अतिशय वेग से, क्रोधाग्नि भड़की चौगुणी ।।
कोई अधम खेचर अभय, आके रहे उद्यान में ।
        हे रक्षको, इस बात को, लेते न क्यों तुम ध्यान में ।।१।।

मारो त्वरित इस दुष्ट को, यो घोर स्वर करते हुए ।
        आये वहा पर वीरगण, लंकेश से डरते हुए ।।
नि:शस्त्र उस हनुमान ने, पाषाण फेके हाथ से ।
        जिसके लगा उसके वहीं, अतिरक्त धारा माथ से ।।२।।

मारे गये सामन्त बहु, हनुमान हस्ताघात से ।
        व्याकुल हुई मन में दशानन, शीघ्र ही इस बात से ।।
क्षण मात्र में उस वीर ने, सब नष्ट कर दी वाटिका ।
        उस वीर सन्मुख एक भी, रावण न सैनिक आ सका ।।३।।

करता हुआ हुंकार अति, निकला विपुल उद्यान में ।
        मानों हुआ हो मुक्त कोई, तीव्र तीर कमान से ।।
ढाये नगर प्रासाद सुन्दर, वीर ने पद मारके ।
        आया न सन्मुख एक भी, उसकी प्रबल हुंकार से ।।४।।

उस दीर्घ लंका मे सतत, सर्वत्र हा-हाकार था ।
        भयभीत थी सारी प्रजा, मानों न कुछ आधार था ।।
जिस मार्ग से वह वीर वर, मृगराज सम जाता सही ।
        उस मार्ग में नर यूथ मृगसम, दौड़ता फिरता सही ।।५।।

करके निकट साहस उसे, आया पकड़ने सामने ।
फेंका उसे कन्दुक सदृश, आकाश में हनुमान ने ।।
पाषाण खण्डों से वहां का, राज पथ था छा गया ।
करते हुए सब प्रार्थना, हे हे प्रभो कीजे दया ।।६।।

ले सैनिकों को साथ में, तब इन्द्रजीत गया वहां ।
गजराज जैसा घूमता था, अन्जनी नन्दन जहां ।।
होता रहा विकराल रण, कुछ काल दोनों में महा ।
लंकेश-सुतने वीर को, निज शक्ति से पकड़ा वहां ।।७।।

तत्काल बन्धन बद्ध वह, रावण निकट लाया गया ।
तू छोड़ दे रिपु पक्ष को, बहुवार समझाया गया ।।
कहने लगा उससे दशानन, चित्त में अति क्रुद्ध हो ।
तेरी कुशलता है नहीं, इस भांति स्वामी विरुद्ध हो ।।८।।

गृह भी नहीं उस, राम भिक्षुक का बना तू दूत है ।
विद्याधरों के वंश में, तू ही महान कपूत है ।।
क्या सिह का बच्चा कभी, आधार लेता स्यार का ।
तूने नियम पलटा दिया है, आज इस संसार का ।।९।।

तू दूत बन उस ओर से हा ! कर रहा अतिद्रोह है ।
तू शत्रु अब, फिर भी मुझे, तुझ पर उपजता मोह है ।।
उसके वचन सुन बीरवर, बोला जरा मुसकान से ।
सीता-हरण तुमने किया, सचमुच बड़े अज्ञान से ।।१०।।

अब भी उसे तुम भेज दो, कल्याण इसमें है सही ।
श्री राम तो निर्भीक हो, ले जायेंगे आके यही ।।
इस पाप से संसार में, अपयश तुम्हारा है बढ़ा ।
पर राम का यश आज भी, आकाश में रवि-सम चढा ।।११।।

कोपाग्नि में घृत-सम बनी, श्री शैल की वचनावली ।
अभिमान में आकर, अधिक आदेश दे रावण बली ।।
फेरो इसे कपि-तुल्य पुर में, लोक सांकल बांध के ।
सब विश्व जानें पा रहा, फल दुष्ट निज अपराध के ।।१२।।

तब तोड़कर बन्धन, सभी ही छूट करके त्रास से ।
नभ में गया श्री शैल, ज्यों मुनि छूटते भव पास से ।।
उद्यान में महिला मुखों से, सुन प्रथम उसकी कथा ।
अत्यन्त ही निज बन्धु सम, सीता हृदय मे भी व्यथा ।।१३।।

जाते हुए अवलोक मन में, शीघ्र ही बोली यहाँ ।
सुख से पहुंचकर नाथ से, वृत्तांत सब कहना सही ।।
पुण्याधिकारी ही मनुज, करता सुखद शुभ काम को ।
अपने किये का शीघ्र ही, पाता सुभग परिणाम को ।।१४।।

आ करके हनुमान वीर ने, सब वृत्तान्त सुनाया ।
विरह-वेदना से सीता की, शुष्क हुई है काया ।।
शोक-गर्त में पड़ी हुई, वह लेती नाम तुम्हारा ।
आंखो से बहती रहती है, अविरल जल की धारा ।।१५।।

उचित आप समझे जो स्वामिन्, करे कार्य वह सत्वर ।
दशमुख अपनाने को उसको, देता कष्ट भयंकर ।।
लेकिन सीता नही कभी भी, उसकी ओर निहारे ।
बिता रही है जीवन के, दिन आश तुम्हारी धारें ।।१६।।

सुन सीता की कष्ट कहानी, बदन-कमल मुरझाया ।
खेद-खिन्न उस समय राम को, सबने धैर्य बन्धाया ।।
बोल उठा लक्ष्मण हे अग्रज, नहीं शोच का अवसर ।
लाना है लंका से जाकर, सत्य सती को सत्वर ।।१७।।

हे सुग्रीव सद्य हो प्रस्तुत, लंका हमको जाना ।
बुलवाओ भामण्डल को भी, सीता को अब लाना ।।
हो जाओ तैयार शीघ्र तुम, डरते हो क्यों मन में ।
शूरवीरता नही तनिक भी, तस्कर उस रावण मे ।।१८।।

कहने लगा वहां पर विस्मित, सिंहनाद विद्याधर ।
देव आपके साथ सर्वथा, है यह सारा परिकर ।।
सोच समझ करके ही सम्मति, सब कुछ होगा करना ।
हो हित अहित न हो किंचित् भी, उचित वही आचरण ।।१९।।

हनुमान ने जा लंका में, जो उत्पात मचाया ।
सुप्त सिंह को तीर मारकर, मानों आज जगाया ।।
लड़ने में उससे हम सबकी, नहीं कुशलता स्वामिन् ।
नहीं आज मेरा होता है, जाने को लंका मन ।।२०।।

जामवन्त मन्त्री बोला यों, होते हो क्यों कायर ।
अधम दशानन बूंद तुल्य है, रामचन्द्र हैं सागर ।।
पाप किया परदारा हरकर, इससे मृत्यु समझिये ।
पूर्व पराक्रम की बातों से, आप न मनमें डरिये ।।२१।।

पुण्यवान पुरुषों का भी जब, आता है अशुभोदय ।
जीवन हेतु वस्तुओं द्वारा, हो जाता उनका क्षय ।।
आत्म-पक्ष में विद्यमान हैं, बड़े बड़े विद्याधर ।
दिखा चुके हैं घोर रणों में, रिपुओं को अपना कर ।।२२।।

सुनिये नाम कहें कुछ उनके, बलशाली है अङ्गद ।
धन जति, एक भूत, प्रिय मन्दिर, तडितवक्र तोड़े मद ।।
बज्रभष्टि, नल, नील, गजस्वन, क्रूर केलि भीमारव ।
पवन-पुत्र का प्रबल पराक्रम, देखा है आंखों सब ।।२३।।

भामण्डल बलवान न कम है, जो है सीता भ्राता ।
राम और लक्ष्मण-सा अनुपम, वीर न यहां दिखाता ।।
कर विचार लंका जाने का, मिले सभी विद्याधर ।
मार्गशीर्ष के कृष्ण पक्ष में, चले युद्ध को मिलकर ।।२४।।

होते हुए शकुन तब सुखकर, जय अपनी हो जानी ।
प्राप्त करेगा फल कुकृत्य का अब दशमुख अभिमानी ।।
शस्त्र युक्त खेचर समूह मे, राम शोभते ऐसे ।
घिरा हुआ ताराओ द्वारा, शोभित हो शशि जैसे ।।२५।।

मिले मार्ग में उनसे आकर, अगणित अधिपति खेचर ।
चले गगन में प्रमुदित होते, सकल सैन्य को लेकर ।।
कुमुद, काल, नल, नील, शल्य शुभ, हनुमान दुर्मर्षण ।
श्री सुग्रीव विराधित नभचर, चले राम सङ्ग दृढ मन ।।२६।।

लहक रहीं थी विविध ध्वजायें, निज यानों के ऊपर ।
भिन्न भिन्न शुभ चिह्न बनें थे, वहां ध्वजाके पट पर ।।
आ पहुंचे वे निमित्त मात्र में, श्री वेलन्धर पुर में ।
जीता वहां समुद्र नृपति को, नल ने प्रबल समर में ।।२७।।

तब समुद्र अधिराज प्रेम से, राम-शरण में आया ।
देकर उसका राज्य उसे ही, सेवक परम बनाया ।।
उस नृप ने लक्ष्मण को अपनी, दी सुन्दर कन्यायें ।
थी प्रत्यक्ष अहो बालायें, गुण की ही मालाये ।।२८।।

रहकर वहाँ रात भर सुख से, चल करके फिर सत्वर ।
आ पहुंचे गिरि शुभ सुवेल पर, नगर सुवेल जहां पर ।।
जीत सुवेल गगनपति को भी, रहे सर्व विद्याधर ।
आई विद्याधर सेनायें, हंस द्वीप में सजकर ।।२९।।

दूत भेज बुलवाया सत्वर, उनने भामण्डल को ।
उसी वीर की बाट देखते, बिता रहे थे पलको ।।
पुण्यवान् मनुजों को जग में, नहीं कार्य है दुष्कर ।
है जिनराज हृदय में जिनके, वे नर हैं लोकोत्तर ।।३०।।

होता सदा सहायक सुकृत, सबको जगती तल मे ।
वही बचाता है कष्टों से, जल में, भीषण थल मे ।।
निर्धन के समान जो पहले, भटक रहे थे बन में ।
पुण्य-विवश ही हुए सहायक, खेचर गण आ रण में ।।३१।।

राम-सैन्य को जान निकट मे, कुपित हुआ वह रावण ।
व्याकुल हा ! हो उठे हृदय में, सारे ही लंकाजन ।।
जलधि सदृश गम्भीर घोष तब, वादित्रो का छाया ।
दशमुख ने सेनापतियों को, अपने निकट बुलाया ।।३२।।

उसी समय आ पास विभीषण, बोला वाणी सादर ।
सुनिए मेरे वचन शांत हो, करुणा के रत्नाकर ।।
व्याप रहा यश देव आपका, कुन्द पुष्प-सा निर्मल ।
मलिन न कीजे उसे लोक में, परदारा वश इस पल ।।३३।।

जो सम्मान विश्व में पाया, शुभ-कृत्यों के द्वारा ।
वहाँ न ले जाये अब उसको, अपयश-सरिता-धारा ।।
हो प्रसन्न सीता को सत्वर, राम-निकट पहुंचाओ ।
है न दोष कुछ इस सुकृत्य में, दुगुना पुण्य कमाओ ।।३४।।

सुख-समुद्र में रहो मग्न तुम, न्याय पंथ में चलकर ।
न्याय पंथ ही उभय लोक में, होता सबको सुखकर ।।
हम सब हैं आधीन आपके, करुणा हम पर कीजे ।
होवे ना विध्वंस सैन्य का, सीता भिजवा दीजे ।।३५।।

इन्द्रजीत तब लगा बोलने, पिता पक्ष को लेकर ।
रण से हो भयभीत पूज्य तुम, जाना वाणी सुनकर ।।
पूछ रहा है कौन आपसे, उचित तथा अनुचित को ।
व्यर्थ प्रकाशित करते हैं क्यों, अपने कायर मतको ।।३६।।

यदि कायर है हृदय आपका, सुख से घर में रहिए ।
पर कायरता पूर्ण वचन यों, मत निज मुखसे कहिए ।।
महिला रत्न प्राप्त कर कोई, सौंप न सकता पर को ।
बोला पुनः विभीषण मुख से, सुनकर इस उत्तर को ।।३७।।

बालक ही तू रहा आज तक, नही जगत का अनुभव ।
पापी के पापी होता है, यह जाना मैंने अब ।।
तू अन्याय अग्नि में सम्प्रति, बोल वचन घी डाले ।
मोह विवश ले पिता पक्ष का, निज कर्तव्य न पाले ।।३८।।

देखेगा तू युगल बन्धु का, रण में प्रबल पराक्रम ।
मचा रहा उन्मत्त तुल्य ही, तू निज घर में ऊधम ।।
सुग्रीवादिका आत्म-पक्ष के, मिले राम से जाकर ।
ले ले वे बलवान् सैन्य निज, डटे सामने आकर ।।३९।।

रक्त-नेत्रमय हुआ दशानन, सुनकर वचन बिभीषण ।
खींची निशित कृपाण म्यान से, बध करने को तत्क्षण ।।
वीर विभीषण ने भी सत्वर, दृढ़ तर स्तम्भ उठाया ।
यों प्रस्तुत युद्धार्थ देखकर, सचिवों ने समझाया ।।४०।।

हुई कलह नहिं सभा भवन में, पहुंचे आत्म-सदन पर ।
दशमुख बोला इन्द्रजीत से, अपने निकट बुलाकर ।।
निकले त्वरित विभीषण गृह से, करता अहित हमारा ।
शत्रु-पक्ष के हित में तत्पर, हित नहिं उसके द्वारा ।।४१।।

हो यदि मम प्रतिकूल अङ्ग भी, वह भी मुझे न भाता ।
गृह भेदी यह शत्रु भयङ्कर, नहीं आज से भ्राता ।।
हुआ कहीं जो इस पुर में वह, इन आंखों के गोचर ।
तो मेरी तलवार करेगी, छिन्न शीघ्र उसका सिर ।।४२।।

मै भी रत्नश्रवा पुत्र हूँ, लङ्का तजकर जाऊं ।
रहते रावण के इस पुर में, कभी नहीं मैं आऊं ।।
जहां काम-वश श्रेष्ठ सती को, हाय ! सताया जाता ।
अपने अधम कदाग्रह को ही, न्याय बताया जाता ।।४३।।

होता सदा अमंगलमय ही, उस नर का मुख दर्शन ।
छोड़ चला लंका यों कहकर, तत्क्षण विज्ञ विभीषण ।।
सत्ता के मद से प्रमत्त हो, करे भूप मनमानी ।
सह न सके उसकी अनीति को, कोई भी विज्ञानी ।।४४।।

निज दल-बल परिवार सहित वह, हंस द्वीप में आया ।
सविनय राम समीप पहुंचकर, निज वृत्तान्त सुनाया ।।
आता उसको देख प्रथम थे, शंकित सब विद्याधर ।
हुये निशंकित चित्त शीघ्र वे, सत्य बात को पाकर ।।४५।।

शीश झुकाकर रामचन्द्र से, बोला विज्ञ बिभीषण ।
आश्रय दे मुझको चरणों में, कृपा कीजिए इस क्षण ।।
है जिनेन्द्र का भव भव आश्रय, इस भव में तब आश्रय ।
बोले राम प्रसन्न चित्त हो, वीर रहो तुम निर्भय ।।४६।।

विज्ञ ! विभीषण अपने को तुम, लंका-पति अब जानों ।
और आज से हम दोनों को, अनुज अलौकिक मानों ।।
दूगा लंका राज्य तुम्हें मैं, दशमुख का निग्रह कर ।
तज करके अपमान जन्य दुख, सुख से रहो यहां पर ।।४७।।

भामण्डल भी आ पहुंचा तब, दल बल सहित वहां पर ।
कपिवंशी अति मुदित हुए मन, बली सहायक पाकर ।।
होता कौन प्रसन्न न जग में, आत्म पक्ष को लख कर ।
पुण्योदय से हो मानवको, सभी यहां पर सुखकर ।।४८।।

हंस द्वीप में रहकर कुछ दिन, लंका सन्मुख किया प्रयाण ।
खेचर पतियों के समूह से, भरा सकल आकाश महान ।।
समर भूमि में आत्म-पक्ष युत, आ पहुंचे सत्वर जब राम ।
होने लगी सुसज्जित सेना, तज करके सारा आराम ।।४९।।

सुनकर भेरी शब्द दशानन, मनमें हर्षित करे विचार ।
जान बूझकर मरने आये, ये मर्कटगण मेरे द्वार ।।
जिन्हें बचाते रहे आज तक, अहो सर्वदा मेरे बाण ।
लेंगे निशित बाण वे ही अब, सचमुच इन सबके प्राण ।।५०।।

देखा है क्या नही इन्होंने, संग्रामों में मेरा हाथ ।
भोगेंगे परिणाम भयङ्कर, तज बैठे जो यों मम साथ ।।
हरा इन्हें मैं शीघ्र युद्ध में, कभी न दूंगा जीवनदान ।
फल पाया मैंने यह देखो, कर इन दुष्टों का सन्मान ।।५१।।

बुला लिये निज आश्रित खेचर, जिन्हें समरसे था अनुराग ।
आये सभी अवनीन्द्र सहित झट, त्याग सकल परिजनका राग ।।
आगत सकल खेचरों का वह, करता था अतिशय सन्मान ।
रण के लिये हुये उत्साहित, पाकर उससे इस विधि मान ।।५२।।

रामचन्द्र से दुगुनी सेना, थी उस लंकेश्वर के पास ।
किन्तु राम को अपने बलका, था मनमें पूरा विश्वास ।।
पुण्य उदय से दीर्घ शत्रु भी, बन जाता अपना प्रिय मित्र ।
और पाप के दुर्विपाक से, क्षण में बनता पुत्र अमित्र ।।५३।।

देख जगत की यह विचित्रता, विज्ञ साधते सदा स्वधर्म ।
फल देता है प्राणी मात्र को, नित्य शुभाशुभ अपना कर्म ।।
देख निकट में राम सैन्य को, करें नगरजन मुख से बात ।
दण्डक वनमें खरदूषण का, किया वीर लक्ष्मण ने घात ।।५४।।

पवन पुत्र ने आत्मशक्ति से, किये ध्वंस लंका प्रासाद ।
कोई कहे पलायन होंगे, ये सब सुन लंकापति नाद ।।
पकड़ इन्द्र को इस रावण ने, प्रगटित की थी अपनी शक्ति ।
की है श्री कैलाश शैलपर, इसने जिनवरकी शुभ भक्ति ।।५५।।

कुम्भकर्ण भ्राता बलशाली, इन्द्रजीत भी है बलवान् ।
मेघनाद को देख शत्रुगण, समर-भूमि से करें प्रयाण ।।
एक एक से बढ़ कर योद्धा, विद्यमान रावण के पास ।
होगी किसकी जीत यहां पर, कैसे हो विधिका विश्वास ।।५६।।

वीर पत्नियें निज प्रिय पति को, देती हुई अधिक उत्साह ।
स्वामी कार्य में बने न बाधक, स्वामिन लेश हमारी चाह ।।
प्रबल शत्रु पर विजय प्राप्त कर, आओगे जब तुम इस गेह ।
वीर भार्या विरुद प्राप्त कर, नाथ करूंगी दूना नेह ।।५७।।

रण से विमुख न होना स्वामिन्, वीरोचित करना सब कार्य ।
समरांगण में मरे वीर ही, पीठ दिखाते अधम अनार्य ।।
स्वामि कार्य के लिए जगत में, तजते जो योधा निज प्राण ।
पाते हैं वे स्वर्गलोक में, देवों के द्वारा सन्मान ।।५८।।

वीरो की तो प्रिया कीर्ति है, जो रहती जग में सब काल ।
स्वस्थ चित्त हो लड़ना रिपु से, सभी हमारी चिन्ता टाल ।।
आओगे जब जीत शत्रु को, पूजूंगी सादर भगवान ।
और करूंगी बड़े प्रेम से, स्वामिन् मैं तेरा सन्मान ।।५९।।

शत्रु युद्ध से डर जाओगे, दूंगी मैं सौ सौ धिक्कार ।
और समझ लेना तब मेरा, पा न सकोगे सुखमय प्यार ।।
बोले सुभट पत्नियों से यों, कायरता का यहां न नाम ।
करते रहे प्रतीक्षा जिसकी, आ पहुंचा अब वह संग्राम ।।६०।।

धरो धैर्य तुम अपने मन में, होगा उचित युद्ध में सर्व ।
खण्ड खण्ड होगा रिपुओं का, आज हमारे द्वारा गर्व ।।
हमें न समझो कायर मनमें, खेले हैं अगणित संग्राम ।
विजय प्राप्त कर आये हैं हम, प्रिये आज तक अपने धाम ।।६१।।

मारें, मरें सुभटजन रण में, यही क्षत्रियों का है धर्म ।
दिखा पीठ रण में रिपुओं को, नहीं करेंगे अनुचित कर्म ।।
समझा बुझा सकल परिजन को, चले वीरगण धर उत्साह ।
स्वामी कार्य के लिए सुभटको, नहीं लेश तनकी परवाह ।।६२।।

निकल पड़े सत्वर लंका से, विजयभाव धर 'हस्त' 'प्रहस्त' ।
उन सेनापतियों के संग, चली दशानन सैन्य समस्त ।।
उस अनीक में थे विद्याधर, जिनने देखे थे संग्राम ।
रखने उद्यत हुए सभी ही, निज-निज स्वामी का शुभ नाम ।।६३।।

था मरीच, दृढ़ सिंह, सुमंडित, शंभू, सारस, तथा जघन्य ।
रावण के थे शूरवीर सब, रहें लोक में सदा अनन्य ।।
इन्द्र-तुल्य वह इन्द्रजीत भी, निकला मेघनाद के साथ ।
आ पहुंचा पुष्पक विमान मे, समर भूमि में लंका नाथ ।।६४।।

भामण्डल सुग्रीव आदि पर, था रावण को अतिशय रोष ।
जगका अतिशय अटल नियम यह, नहीं देखता अर्थी दोष ।।
सागर-सदृश सैन्य लख रिपुकी, उठे रणार्थ शीघ्र नल नील ।
सेवक अपने स्वामि कार्य में, कभी नहीं करते है ढील ।।६५।।

निकल पड़े जयमित्र चन्द्र प्रभ, रतिवर्धन, बल, कुमुदावर्त ।
था मन में उत्साह सभीके, हो खण्डित रावण का गर्व ।।
हनूमान निज रथारूढ हो, आ पहुंचा करने संग्राम ।
और विभीषण राम सखा दृढ़, दिखता था रणमें अभिराम ।।६६।।

बजते ही भेरी मृदङ्ग के, लगे चलाने भट हथियार ।
चमकीं तलवारें बिजली-सी, करें शत्रुओं का संहार ।।
होते ही संघर्ष परस्पर, हुआ घोर रण चारों ओर ।
पर आमिष भक्षी पक्षीगण, दिये दिखाई वहां विभोर ।।६७।।

फेंक रहा था कोई रिपु पर, अपने शस्त्रों का समुदाय ।
शस्त्र घातसे गिर पड़ता था, होकर सुभट वहा निरुपाय ।।
रिपु के निशित शरों के द्वारा, रुधिर युक्त हो रहा शरीर ।
हटा नहीं पीछे तिल भर भी, खड़ा रहा कोई दृढ़ वीर ।।६८।।

रण कर रावण के सुभटों ने, बानर वीर हटाये ।
राम-पक्ष के वीरों ने तब, राक्षस सुभट दबाये ।।
बढ़ता देख राम-सुभटों को, हस्त, प्रहस्त भयङ्कर ।
करके युद्ध बिकट रिपुओं का, लगे मारते सत्वर ।।६९।।

देख ध्वंस अपनी सेना की, नील और नल आये ।
देख उन्हें संग्राम भूमि में, शत्रु सभी घबराये ।।
होता रहा कराल युद्ध यह, सुभटों मध्य परस्पर ।
नल ने किया विनष्ट हस्त को, निशित शस्त्र को लेकर ।।७०।।

इधर नील ने भी प्रहस्तका, सत्वर बध कर डाला ।
मरने से सेनापतियों के, हुआ शत्रु-मुख काला ।।
सुन सेनापतियों के क्षय का, करके दूना साहस ।
अन्य नायकों सह सैनिक गण, आये झट आगे धस ।।७१।।

इधर राम के भी वीरों ने, अपने शस्त्र उठाये ।
तज कर ममता इस शरीर की, रिपु पर सर्व चलाये ।।
मनुजो का संहार घोर यह, देख सका नही दिनकर ।
चला गया अस्ताचल के प्रति, प्रगटी रात भयङ्कर ।।७२।।

फिर प्रभात मे सुभट सज्ज हो, आये रण में सत्वर ।
लड़ते पक्ष परस्पर दोनों, हटे न कोई डरकर ।।
क्रोध रूप होकर रिपुओं को, कोई वीर बुलाता ।
शस्त्र मार कर कौशलता से, भूपर वही गिराता ।।७३।।

शार्दूलने वज्रोदर को, किया शस्त्र से घायल ।
वज्रोदर ने प्रत्युत्तर में, किया उसे भी विह्वल ।।
कभी राम-भट आगे बढ़ते, हटें वीर रावण के ।
दिखे दृश्य उस समर भूमि मे, भिन्न भिन्न प्रति क्षण के ।।७४।।

खिन्न देखकर निज वीरो को, करके अति उत्साहित ।
आया माली युद्ध-भूमि मे, लेकर शस्त्र अपरिमित ।।
इधर अंजनी सुत भी आया, गज के रथ पर चढ़ कर ।
लगे भागने वृन्द विपक्षी, रण में उसको लख कर ।।७५।।

सेना को लख व्यथित वीर से, माली दौड़ा आया ।
पवनपुत्र ने शक्ति मार कर, उसको शीघ्र भगाया ।।
हनूमान के सन्मुख आया, वज्रोदर रथ चढकर ।
किया पराङ्मुख रण से उसको, रथ विहीन तत्क्षण कर ।।७६।।

रावण सुत ने बाण मार तब, किया ध्वजाका छेदन ।
पवन-पुत्र ने तीक्ष्ण शरों से, किया कवच का भेदन ।।
कर प्रहार दृढ़ चक्र नक्र पर, रथ के सिंह छुड़ाये ।
देख निरंकुश उन्हें सैन्य का, सकल वीर घबराये ।।७७।।

तब श्री शैल हटाकर सब को, पहुंचा रावण सन्निधि ।
उस पर रावण के वीरों ने, छोड़े निज शर निरवधि ।।
रहा शत्रुगण में सुस्थिर वह, सुन्दर सुदृढ़ अचल सम ।
क्या दुर्वचनों से हो सकता, चंचल मुनि का संयम ।।७८।।

देख घिरा हनुमान वीर को, कपिवंशी विद्याधर ।
आये नील, सुषेण विराधित, दिव्य रथों पर चढकर ।।
छिन्न-भिन्न कर डाली उसने, दशमुख सेना सारी ।
कुम्भकर्ण आया विलोक सब, कर भारी तैयारी ।।७९।।

देख उसे संग्राम धरा पर, हुये क्षुब्ध विद्याधर ।
लड़ने लगे 'तरङ्ग, आदि भट, उससे निर्भय होकर ।।
कुम्भकर्ण से जो-जो योधा, वहां जूझने आता ।
निद्रा विद्या के प्रभाव से, सबको वहां सुलाता ।।८०।।

लगे ऊघने विद्याबल से, वहां कपि-ध्वज सारे ।
एक ओर अपने हाथों के शस्त्र सभी ने डारे ।।
दिव्य बोधनी विद्या द्वारा, तब सुग्रीव जगाता ।
बोल वीरता के वचनों को, अति उत्साह बढ़ाता ।।८१।।

हटती देख सैन्य को दशमुख, हुआ युद्ध को तत्पर ।
बोला इन्द्रजीत सविनय यों, मस्तक नत अपना कर ।।
इस साधारण कार्य हेतु जो, आप युद्ध में आयें ।
तो फिर मम से पुत्र आपके, कौन काम में आयें ।।८२।।

आ पहुंचा संग्राम भूमि मे, इन्द्रजीत बल धारी ।
व्याकुल हुई देख कर उसको, कपि सेना तब सारी ।।
लगा मारने वह रिपुओं को, निर्दय होकर मन मे ।
आया भामण्डल तब सन्मुख, भीषण दुःख प्रद रण में ।।८३।।

हुआ घोर संग्राम परस्पर, उन दोनों में भीषण ।
इन्द्रजीत बोला कपि पति से, इस प्रकार के कुवचन ।।
हे सुग्रीव, छोड़ रावण को, बना शत्रु का किंकर ।
देता हूँ मैं दण्ड तुझे अब, शीर्ष छेद कर सत्वर ।।८४।।

देखूं कौन बचा सकता है, मेरे तीक्ष्ण शरों से ।
लगे चलने शस्त्र भयङ्कर, दोनों वीर करों से ।।
भामण्डल को मेघनाद ने, गर्वित हों ललकारा ।
इधर 'विराधित' नक्र चक्र मे, चली शस्त्र की धारा ।।८५।।

इन्द्रजीत ने रोष विवश हो, जो जो शस्त्र चलाये ।
तत्क्षण ही उस सुग्रीव ने, वे सब विफल बनाये ।।
मेघनाद ने भामण्डल को, नागपाश मे फांसा ।
जिससे राम पक्ष में कुछ, कुछ व्यापी घोर निराशा ।।८६।।

इन्द्रजीत ने भी कपिपति को, नाग पाश से बॉधा ।
इस प्रकार लंकेश पुत्र ने, कार्य पिता का साधा ।।
पडा देख उनको पृथिवी पर, व्याकुल हुआ विभीषण ।
राम और लक्ष्मण से सविनय, बोला जाकर तत्क्षण ।।८७।।

भामण्डल सुग्रीव पड़े है, नागपाश में स्वामिन् ।
सम्प्रति संशय ग्रस्त हुआ है, उनका अनुपम जीवन ।।
पवन पुत्र को पकड़ लिया है, कुम्भकर्ण ने रण मे ।
ले जा सकें न उनको जब तक, रिपुगण आत्म-सदन में ।।८८।।

इससे पहले उन्हे यहां पर, हमको लाना होगा ।
समय गुमायें लेशमात्र तो, फिर पछताना होगा ।।
अङ्गद ने जा कुम्भकर्ण का, खीच लिया पट सत्वर ।
लगा वस्त्र को वह संभालने, ज्योंही लज्जित होकर ।।८९।।

निकल गया तब भुजापाश से, पवन पुत्र कुछ बलकर ।
खुला द्वार अवलोक बिहंग ज्यों, उड़ता पिंजरा तजकर ।।
देख नायकों को बन्धन में, हुए व्यथित सब ही जन ।
देख सङ्कटों में प्रिय जनको, दुखित न हो किसका मन ।।९०।।

लक्ष्मण सहित विराधित ने तब, सबको धैर्य बन्धाया ।
चल करके वह वीर विभीषण, इन्द्रजीत तट आया ।।
इन्द्रजीत सोचे यों मनमें, पिता-तुल्य यह गुरुवर ।
अपने वालों से लड़ना तो, कभी नहीं है सुखकर ।।९१।।

भामण्डल सुग्रीव निकट में, त्वरित विभीषण आया ।
व्याकुल हुआ म्लान-सी लखकर, उनकी सारी काया ।।
वीरो की यह दशा देखकर, बोले लक्ष्मण भाई ।
इन वीरों बिन जीत सकेगे, कैसे विकट लड़ाई ।।९२।।

किया स्मरण गरुडेन्द्र देव का, कम्पित हुआ सुरासन ।
संकट जान राम लक्ष्मण पर, आया वह उस ही क्षण ।।
सिंहवाहिनी विद्या सौंपी, राम-भद्र को सादर ।
गरुडवाहिनी दी लक्ष्मण को, जो रिपुओं को दु:खकर ।।९३।।

दिया अनेक दिव्य शस्त्रों को, कर उपकृति की सुस्मृति ।
सज्जन कभी नही करते हैं, उपकारों की विस्मृति ।।
सत्य धर्म के इस जगती मे, होते सभी सहायक ।
उसे न कुछ अप्राप्य कही भी, जहां धर्म है नायक ।।९४।।

गरुड़, सिंह-वाहन पर चढ़कर, उनने रण में किया प्रवेश ।
विद्या बलसे चन्द्र, सूर्य सम, चमक रहे वे आज विशेष ।।
देख गरुड़ वाहन को तत्क्षण, छूटे नाग पाश के बन्ध ।
रहते हुये सूर्य के क्या तम, कर सकता दृगसे सम्बन्ध ।।९५।।

भामण्डल, सुग्रीव उठे तब, मानों निज निद्रा को छोड ।
प्रमुदित हुए सकल खेचरगण, मनकी दु:शंकायें तोड ।।
बन्धन मुक्त उन्हे सुन करके, लगा शत्रुओ को आघात ।
मानों असमय में निज सिर पर, हुआ गगन से वज्र प्रपात ।।९६।।

समर भूमि में आया रावण, विचलित हुआ सभी पर पक्ष ।
बन्धा धैर्य अपने मनुजों को, गया अनुज लंकेश समक्ष ।।
बोल उठा रावण यों मुख से, करता हुआ तीव्र अपमान ।
कायर बन तू दास हुआ है, चलें न तुझ पर मेरे बाण ।।९७।।

तुझे देखकर शत्रु पक्ष में, होता है मुझको अति खेद ।
बोला वीर विभीषण भी यों, अब होगा तेरा उच्छेद ।।
कहने लगा दशानन फिर यों, है पुरुषत्वहीन तू दुष्ट ।
छोड़ उच्च वीरों का आश्रय, माना निकृष्टों को इष्ट ।।९८।।

किया कलंकित कुल सब अपना, रिपुओं की सेवा स्वीकार ।
मुख बिलोकने में भी अघ है, तेरे जीवन को धिक्कार ।।
कहे विभीषण-अरे नराधम ! करके परदारा की चाह ।
जान बूझकर भूल रहा है, पाप विवश निज हितकी राह ।।९९।।

लडे परस्पर बन्धु शौर्य से, धरकर मनमें भारी रोष ।
ध्वजा उड़ा दी लंकापति की, मार तीक्ष्ण शर, कर जय घोष ।।
तोडा धनुष विभीषण का जब, उसने भी तोड़ा तब शीघ्र ।
दो गजराजों सदृश देर तक, होता रहा समर अति तीव्र ।।१००।।

दशमुख ने प्रिय बन्धु वीर पर, शीघ्र चलाया तीव्र त्रिशूल ।
भस्म कर दिया लक्ष्मण ने तब, बाण मार उसके प्रतिकूल ।।
देख शस्त्र को निष्फल इस विध, बढा दशानन तीव्र अमर्ष ।
बोला वह सौमित्र वीर से, लेकर करमे शक्ति प्रकर्ष ।।१०१।।

अरे नराधम ! बाण मारकर, किया शस्त्र क्यों मेरा व्यर्थ ।
कर तू सहन शक्ति अब मेरी, यदि कुछ भी तुममें सामर्थ ।।
'खरदूषण' की भांति मुझे भी, मान रहा होगा तू स्यार ।
हो जा अब तैयार एकदम, है पल में तेरा संहार ।।१०२।।

करने से संग्राम भयङ्कर, लक्ष्मण था अतिशय ही खिन्न ।
हटा विभीषण को उस स्थल से, चला दशानन निकट प्रसन्न ।।
रावण ने सौमित्र वीर पर, छोड़ी अपनी शक्ति प्रचण्ड ।
बैठ गई अन्तस्तल में वह, छेद वेग से हृदय अखण्ड ।।१०३।।

संताडित हो दुष्ट शक्ति से, गिरा भूमि पर शैल समान ।
गिरते देख दृगों से उसके, दु:खित हुए रघुपति बलवान ।।
क्रोध विवश उनके दृग दोनों, हुए लाल अङ्गार समान ।
दौड़े त्वरित दशानन पर वे, श्रुति तक वज्र धनुषको तान ।।१०४।।

अरे नराधम ! तस्कर तुझको, पहुंचाऊंगा मैं यमलोक ।
भय खाता है इन्द्रराज भी, मेरी प्रचुर शक्ति अवलोक ।।
रामचन्द्र ने छोड़, छोड़ शर, किया दशानन को रथ हीन ।
बैठ बैठ कर अन्य रथों में, आता था दशमुख मतिहीन ।।१०५।।

रामचन्द्र ने शराघात से, तोड़ा रथ कितनी ही बार ।
किन्तु मृत्यु के पंजे में से, बचा दशानन बारम्बार ।।
बोले तब श्री राम सविस्मय, रावण तेरी आयु विशेष ।
हुए इसी से बाण व्यर्थ सब, करने में तुझको नि:शेष ।।१०६।।

बन्द करो संग्राम सर्वथा, मान सर्वथा मेरी बात ।
करके अन्तिम क्रिया बन्धु की, पुन: करूगा युद्ध प्रभात ।।
कह तथास्तु संग्राम भूमि से, चला गया हर्षित लंकेश ।
पुत्र, बन्धु बन्धन में सुनकर, हुआ उसे मन कष्ट विशेष ।।१०७।।

❑ ❑ ❑

(सर्ग १२)

पड़ा हुआ था अनुज जहां पर, वहाँ राम दौड़े आये ।
देखे चेष्टा रहित दृगों से, गिरे भूमि पर अकुलाये ।।
मूर्च्छा ने उस समय वेग से, सादर उनको अपनाया ।
करने से उपचार निरन्तर, मिटी मूर्च्छा की माया ।।१।।

जागृत सम वे उठे कष्ट से, हाय ! हाय !! प्यारे भैया ।
क्या अनर्थ हो गया भूमि पर, हाय ! आज मेरी मैया ।।
हाय ! वत्स, दुष्कर्म, पाप वश, हुई अवस्था यह तेरी ।
लूट ले गया कर्म चोर यह, हाय ! कृपण की धन ढेरी ।।२।।

पड़ा हुआ है कठिन भूमि पर, और न मुख से बोले ।
छोड़ गया दुख सहने ही को, क्यों न गया तू हमको ले ।।
तुझे देख कर मौन यहाँ पर, मेरा हृदय फटा जाता ।
करूं कार्य क्या जीकर जग में, नहीं चित्त में यह आता ।।३।।

जाऊंगा जब वत्स अयोध्या, पूंछेगी मुझसे माता ।
कहां हमारा लक्ष्मण बेटा, दुखिनी का आश्रय दाता ?
तत्क्षण हो ! निर्लज्ज नीच, मैं उनको क्या उत्तर दूंगा ।
खड़े खड़े मै उनका योंही, करुणा रोदन सुन लूंगा ।।४।।

तेरे बिना वीर भैया ! मैं आज मृतक-सा हूँ जीता ।
नही चाहिये अब त्रिभुवन मे, तेरे बिन मुझको सीता ।।
तुम बिन अब पुरुषार्थ लोक में, मेरा है निष्फल सारा ।
तीन काल, त्रिभुवन मे मुझको, कहो कौन तुमसा प्यारा ।।५।।

भो भामण्डल ! भवन पधारो, तजो जानकी की आशा ।
प्रिय सुग्रीव सैन्य ले जाओ, नहीं समर की अभिलाषा ।।
मरा बन्धु मेरा विदेश में, हरी गई सीता प्यारी ।
माता प्यार न देख सका मै, और तजी नगरी सारी ।।६।।

इन बातों का शोक नहीं है, शोक यही केवल भारी ।
कर न सका उपकार विभीषण, कहलायेगा अपकारी ।।
तुमने मेरे लिए मित्रवर, राज-पाट परिजन त्यागा ।
कर न सका उपकार तनिक भी, पापी राम अभागा ।।७।।

हे हनुमान सखे ! अब तुम भी, सकुशल अपने घर जाओ ।
मुझसे जो कुछ हुई भूल सो, आप लोग सब बिसराओ ।।
पूर्व जन्म मे दुष्कृत मैंने, हाय ! किया होगा जैसा ।
आज हाय ! सबके समक्ष में, उदय हुआ मुझको वैसा ।।८।।

सकल उपस्थित वीर मण्डली, क्षमा करो अपराध अशेष ।
रचो चिता अब एकसाथ ही, आज करूंगा अग्नि प्रवेश ।।
बोला जाम्बुनन्द तब बाणी, शस्त्र घात से है बेभान ।
सत्वर स्वस्थ नाथ होवेगा, करते क्यों यों शोक महान् ।।९।।

तुमसे वीर भद्र मानव को, उचित नहीं इस भांति प्रलाप ।
यों शोकाकुल देख आपको, होता है हमको सन्ताप ।।
नारायण सौमित्र विश्व मे, जीवेगा निश्चय हे आर्य ।
निकले दिव्य शक्ति तन मे से, वही करेंगे हम सब कार्य ।।१०।।

श्री जानकी सौमित्र की, सुन पर मुखों से दुर्दशा ।
तत्क्षण धरा पर गिर पड़ी, शाखा सदृश वह परवशा ।।
हे वीर ! सच्चा प्रेम है, निज बन्धु हित तेरे लिये ।
भूपर गिरा संग्राम में, सच आज तू मेरे लिये ।।११।।

मै मन्द भागिनी इन दृगों से, लख न सकती हूँ तुम्हें ।
मुझको हना है शत्रु ने हा, मारकर शक्ति तुम्हे ।।
हा ! हा ! तुम्हारे दुःख का, कारण बनी मैं पापिनी ।
पर क्या करूं, किससे कहूँ, मै हूँ अधिक हत भागिनी ।।१२।।

बैठे चिन्ता ग्रस्त चित्त में, शोकातुर सब ही मुख म्लान ।
आ पहुंचा उस समय वहां, पर एक विदेशी अनजान ।।
आते ही इन रामचन्द्र को, हाथ जोडकर किया प्रणाम ।
जान सर्व वृत्तान्त खेद का, बोला उनसे वचन ललाम ।।१३।।

नाथ ! विशल्या स्नान नीर, सींचा जाये यहां पवित्र ।
निर्विवाद भगवान कृपा से, अच्छा हो सकता सौमित्र ।।
उस नर के कथनानुसार भट, गये द्रोण मुख नृप के गेह ।
बिठा विशल्या को विमान में, ले आये सत्वर सस्नेह ।।१४।।

भूप द्रोणमुख सुता विशल्या, करती ज्यों ज्यों कटक प्रवेश ।
त्यों त्यों घटने लगा वेग से, श्री हरि का शारीरिक क्लेश ।।
बाला के आते ही तन से, टली शक्ति सब भूत समान ।
उसे निकलते ही धीरे से, पकड रहे कर से हनुमान ।।१५।।

बोली तब वह दिव्य वेषधर, सविनय दोनों निज कर जोड़ ।
है कोई अपराध न मेरा, आप दीजिये मुझको छोड़ ।।
सम्प्रति निष्फल गई यहां मैं, इसमें कारण है शुभ कर्म ।
सकल कष्ट नाशार्थ विश्व में, करते ज्ञानवान् सद्धर्म ।।१६।।

कहां नीच परदारा तस्कर, कहते गिरा उठा सौमित्र ।
देख विशल्याको निज सन्मुख, हुआ हृदय में अतिशय चित्र ।।
जान सचेत बन्धु को सुख से, हुआ राम का पुलकित गात्र ।
लम्ब बाहुओं को फैलाकर, मिले प्रेम से वे क्षण मात्र ।।१७।।

इस पवित्र बाला के बल से, निष्फल हुई शत्रु की शक्ति ।
राजदुलारी के हे लक्ष्मण, है अपूर्व तुझमें दृढभक्ति ।।
लक्ष्मण ने उस राजकुमारी से, निशङ्क तब किया विवाह ।
विस्मयप्रद यह समाचार सुन, बढा सैन्य में अति उत्साह ।।१८।।

जो कुछ हुआ वृत्तान्त यह, दशशीश सब सुनता हुआ ।
व्याही विशल्या शत्रु ने, इससे हमारा क्या हुआ ।।
विश्रांति पाऊंगा जगत में, शत्रुओं को पीस के ।
कर मन्त्रणा तब ही सचिव, आये निकट दशशीश के ।।१९।।

हे देव, हम पर सर्वदा की, भांति कृपा कीजिये ।
हो लोक का हित सर्वथा, वह बात कुछ सुन लीजिये ।।
श्रीराम, लक्ष्मण को हुई हैं, प्राप्त विद्यायें अहो ।
निष्फल गई निज शक्ति, पाई दिव्य कन्यायें अहो ।।२०।।

भाई तथा सुत भी पड़े हैं, शत्रु कारागार में ।
जीना कठिन उनका समझिये, आप अब संसार मे ।।
करके अनुग्रह नाथ हम पर, आप सीता को तजो ।
विषयान्ध होकर स्वार्थ वश, अन्याय को मत तुम भजो ।।२१।।

तल्लीन यह सद्बुद्धि प्रभु, रहती रही निज धर्म में ।
किस पाप के परिणाम वश, प्रेरित हुई दुष्कर्म में ?
श्रीराम से शुभ सन्धि, करने में बढ़ाई है बड़ी ।
किसको प्रचुर संग्राम से, जन हानि नहिं सहनी पड़ी ? ।।२२।।

श्री राम सन्निधि दूत को, तब भेजना निश्चित किया ।
संकेत से लंकेश से सब, भाव निज बतला दिया ।।
वह दूत फिर होके विदा, तत्काल ही आया वहां ।
विद्याधरों के बीच में, श्रीराम शोभित थे जहां ।।२३।।

करके यथोचित वह विनय, श्री राम से कहने लगा ।
कल्याणकारी बात सुनिये, रघु-शिरोमणि, मन लगा ।
लकेश ने सत्वर तुम्हें सन्देश कहलाया यही ।
विकराल इस संग्राम से मुझको प्रयोजन है नहीं ।।२४।।

देखो, प्रथम संसार में, रण-विज्ञ कितने हो गये ।
लेकिन सभी विकराल यम के, गाल में वे सो गये ।
होवे न जन धन नाश इससे, योग्य है बस प्रीति हो ।
हो योग्य से ही प्रेम-बन्धन, है जगत की रीति हो ।।२५।।

वनराज पाकर कन्दरा, आश्रय सुखी होता यथा ।
हें राम ! तुम मेरा सहारा, लो सुखी होगे तथा ।।
मैं विश्व में विख्यात हूँ, क्या यह नहीं तुमने सुना ।
ले मर्कटो को व्यर्थ ही, करते हमारा सामाना ।।२६।।

वह इन्द्र सा मानी रहा था, इन्द्र कारागार में ।
विख्यात है मेरा पराक्रम, सर्वदा संसार में ।।
मुझको न कुछ भी चाहिये, प्रिय जानकी ही दो हमें ।
देकर बहुत सा राज्य, माला माल कर देंगे तुम्हें ।।२७।।

ऐसा करोगे यदि न तुम, सबको छुडा लूंगा सही ।
पश्चात् रहने के लिए भी, गेह तक दूंगा नहीं ।।
बोले तभी श्रीराम नहिं, धन, राज्य की कुछ चाह है ।
हम हैं विपिन में ही सुखी, निज जानकी की चाह है ।।२८।।

हे दूत ! तुम जाकर कहो, लंका न हमको चाहिये ।
जो है हमारा इष्ट वह, सत्वर हमें दे जाइये ।।
करता हुआ अद्य पुष्टि, चर बोला पुनः श्रीराम से ।
होंगे किंचित अज्ञात्, इस संग्राम के परिणाम से ।।२९।।

निशंक हो आये यहां वह, नहिं किया तुमने भला ।
अब जानकी की आश छोड़े, जानकर उसको बला ।।
लंकेश यदि होगा कुपित, तो जानकी की बात क्या ।
हो जायेगी दुष्कर तुम्हें, फिर प्राणरक्षा भी यहां ।।३०।।

तब वीर भामण्डल वहां, अत्यन्त ही क्रोधित हुआ ।
बहु गर्ज करके मेघ सम, उस दूत से कहता हुआ ।।
आती न तुझको लाज जो, कहता गिरा यों मदभरी ।
रे दुष्ट ! तेरे नाथ ने, श्री राम की सीता हरी ।।३१।।

लंकेश का विध्वंश कर, ये राम लायेंगे सिया ।
संहार करने दूत का तब, खड्ग निज कर में लिया ।।
सौमित्र ने कर थाम कर, तत्क्षण किया उसको मना ।
नहिं क्षत्रियोचित कार्य है, इस दूत का संहारना ।।३२।।

सह कर कठिन अपमान, अपना दूत झट आया वहां ।
निज मन्त्रियों के पास बैठे थे, व्यथित स्वामी जहां ।।
जो कुछ कहा था राम ने, इस भांति वह कहने लगा ।
हां ? ले गया सीता चुरा, लङ्केश हमको दे दगा ।।३३।।

पर कामिनी के हेत तू, तैयार मरने के लिए ।
निज वस्तु के ही अर्थ, प्रस्तुत युद्ध करने के लिए ।।
हे देव, जो कुछ योग्य हो, वह आप ही सब कीजिये ।
यदि कार्य सेवा योग्य हो, आदेश सत्वर दीजिए ।।३४।।

बातें सुनी सब गाल पर, सुन्दर हथेली पर धरे ।
करके बदन कुछ म्लान-सा, निज चित्त में चिन्ता करे ।।
सग्राम में उन शत्रुओं को, जीत पाऊंगा यहां ।
पर शत्रु के वश पुत्र प्रिय, उनको कुशलता है कहां ? ।।३५।।

मैं प्रेम दिखला शत्रु से, निज पुत्र ले आऊं कहीं ।
तो क्षत्रिय की मण्डली में, वीर-पद पाऊं नही ।।
पश्चात् शत्रु जयार्थ, रावण साधता बहु रूपिणी ।
कपिवंशियों ने बात यह निज, गुप्तचर के मुख सुनी ।।३६।।

लकेश को बहु रुपिणी यदि, सिद्ध जो हो जायेगी ।
तब जयश्री तो सर्वथा, पर पक्ष को अपनायेगी ।।
सबसे प्रथम श्री राम से, आदेश लेना चाहिये ।
लंकेश विद्या सिद्धि में, फिर विघ्न करना चाहिये ।।३७।।

श्री राम सुनकर के वचन, यों खेद से बोले वहां ।
निज धर्म से विपरीत हम, तिलभर न चल सकते यहां ।।
विद्याधरो ! ये भीरुता, सूचक वचन तुमने कहे ।
निज नीति की रक्षार्थ, अगणित त्रास मैने है सहे ।।३८।।

लंकेश तो निज-गेह में, विद्या नियम है साधता ।
करना उपद्रव ध्यान में, यों क्या कहाये वीरता ?
पश्चात् लक्ष्मण को जता, सुकुमार सब लङ्का गये ।
सब ही कलह प्रिय पुत्र वे, कौतुक वहां करते नये ।।३९।।

आया उन्हे अवलोक, 'मय' नृप क्रोध वह करता हुआ ।
युद्धार्थ वह तलवार को, निज हाथ में धरता हुआ ।।
युद्धार्थ उसको देखकर, मन्दोदरी बोली यही ।
धार्मिक दिशा में युद्ध का, आदेश स्वामी का नही ।।४०।।

तब उन कुमारों ने उपद्रव, हाय ! मन माने किये ।
निःशंक होकर सर्वथा, पुरवासियों को दुख दिये ।।
रक्षा करो ! रक्षा करो !! हम लोग पाते है व्याथा ।
निर्नाथ क्या लङ्का हुई है, आज जाने सर्वथा ।।४१।।

सब राज-मन्दिर ओर दौड़े, प्राण रक्षा के लिये ।
प्रस्तुत हुआ कोई न, उनकी बात सुनने के लिये ।
यक्षेन्द्र द्वय रक्षार्थ तब, पाताल से आते हुए ।
भागे सभी विद्येश सुत, तत्काल घबराते हुए ।।४२।।

यक्षेन्द्र आकर भक्ति से, बोला वचन श्री राम से ।
सन्तोष हमको है नहीं, इन बालकों के काम से ।।
लकेश तो तल्लीन है, इस काल विद्याध्यान में ।
जाके उपद्रव ये करें, निर्भीक उसके स्थान मे ।।४३।।

अनरीति करने से किसी का, हो सकेगा क्या भला ?
देने उलहना देव तुमको, सद्य मैं आया चला ।।
उत्तर दिया सौमित्र ने, देते उलहना आप यों ।
होते सहायक पाप मे, आती न तुमको लाज क्यों ? ।।४४।।

जो ले गया है जानकी, लंकेश माया चार से ।
फिर क्या प्रयोजन है तुम्हें, उस दुष्ट के उपकार से ।।
यक्षेन्द्र सारा क्रोध तज, जाते हुए निज स्थान को ।
यह लोक सादर पूजता है, सर्वदा गुणवान को ।।४५।।

विद्याधरो के वीर पुत्रों ने, वहां ऊधम किया ।
लंकेश का पाषाण सम, अचलित रहा सारा हिया ।।
उस ही समय बहु रुपिणी, जय जय प्रबल करती हुई ।
आराधना के योग से वह, सिद्ध दशमुख को हुई ।।४६।।

जैसा उपद्रव हाय ! अङ्गद ने किया,
साश्रु सारी रानियों ने कह दिया ।
रानियों को सान्त्वना देने लगा,
अभिमान से इस भांति वह कहने लगा ।।४७।।

पूर्ववत् सुख से रहो रणवास में,
शीघ्र दुष्टों का करूंगा नाश मैं ।
मैं स्वयं ही जाऊंगा संग्राम को,
बाँध लाऊंगा सहज में राम को ।।४८।।

फिर गया वह शीघ्र उद्यान में,
मैथिली बैठी जहां पति ध्यान में ।
सोचती मन में इसे अवलोक कर,
आ रहा मम ओर यह पापी निडर ।।४९।।

देवि ! अब भी तो मुझे अपनाइये,
राम की सुधि सर्वथा बिसराइये ।
देश देशान्तर दिखाऊंगा तुझे,
सौख्य सारा प्राप्त तब होगा मुझे ।।५०।।

वल्लभे ! अब भी कृपा हम पर करो,
चित्त का सन्ताप सब मेरा हरो ।
मैथिली बोली तभी गद्गद् गिरा,
भूप तुमको मानती सारी धरा ।।५१।।

पाप की बातें न यों मुझसे करो,
चित्त में भगवान से भी तो डरो ।
शक्तिशाली जानकर उसको महा,
पति-प्रेमवश तत्काल सीता ने कहा ।।५२।।

संग्राम मे मारो वही प्राणेश को,
तो सुना देना प्रथम सन्देश को ।
पद्म ! भामण्डल भगिनी कहती यही,
आज तक आशा विवश जीवित रही ।।५३।।

सूखती आधार बिन जैसे लता,
शुष्क होगी शीघ्र त्यों पृथ्वी-सुता ।
नाथ ! तुम संसार में होगे जहां,
दासी तुम्हारी आ मिलेगी झट वहां ।।५४।।

सती को उद्यान बीच सब, दिखला कर निज माया ।
मुदित-मुदित लंकेश शीघ्र ही, राजभवन मे आया ।।
निज पति के इस अधम कृत्य से, दुखियारी है रानी ।
पहुंच शीघ्र लंकेश निकट में, बोली उत्तम वाणी ।।५५।।

हे हृदयेश्वर ! इस धरणी पर, हुए भूप अति आगे ।
रहा ध्यान नित एक यही निज, कुल में दोष न लागे ।।
हे स्वामिन ! इस अधम कृत्य से, वंश कलंकित होगा ।
नारी जन समुदाय सर्वथा, तुम से शंकित होगा ।।५६।।

भोग भोगकर नित्य मनोहर, इच्छा शान्त न होती ।
विषयों के चक्कर में देखो, दुनिया जीवन खोती ।।
राज्य भोग के साथ समय में, नाथ ! महा व्रत धारो ।
संयम का दृढ़ कवच पहनकर, कर्म शत्रु संहारो ।।५७।।

चला जायेगा धर्म बिना ही, जो प्रभु जीवन ऐसे ।
हो सकते ससार जलधि से, पार आप फिर कैसे ? ।।
अगर भोग ही इष्ट आपको, किन्नरी-सी बालाएँ ।
है अष्टादश सहस्त्र रानिया, उनको आप रमाएँ ।।५८।।

मानी मेरी बात आज तक, जग मे तुमने जैसे ।
करें मुदित मम बात मानकर, आज सर्वथा वैसे ।।
हाथ जोडकर पड़ी पगों में, अश्रु गिराती रानी ।
थाम प्रेम से उसे करों से, बोला रावण वाणी ।।५९।।

निष्कारण हे प्रिये ! खेद से आंसू चार गिराना ।
उचित नही निज जीवन-धनका कोमल हृदय दुखाना ।।
होती है क्यों तू अधीर यों, शक्ति छिपी क्या मेरी ?
एक अकेला ही मैं रण में, करूं शत्रु की ढेरी ।।६०।।

कांते ! कभी न कर यों मुख से, कायरता की बातें ।
बिता शची सम राज महल में, सुख से अपनी रातें ।।
कर न वल्लभे, दु:ख हृदय में, निश्चय जय पाऊंगा ।
राम और लक्ष्मण को सत्वर, पकड़ यहां लाऊंगा ।।६१।।

होते ही प्रत्यूप नगर में, अगणित बाजे, बाजे ।
लेते हुए नाम जिनवर का, उठे सभी ही राजे ।।
बजवाये फिर सेनापति ने, सेना हेत नगारे ।
आ पहुंचे पल भर में योधा, अगणित आयुध धारे ।।६२।।

बोला दशानन हे प्रिये, दर्शन तुम्हारा हो न हो ।
कहती हुई मन्दोदरी यह, बात मत मुख से कहो ।।
तुम शत्रुओं को जीत करके, शीघ्र आओगे यहां ।
और पहले से अधिक, सम्मान पाओगे यहां ।।६३।।

लेके विदा आप लङ्का पति, त्वरित समर में आया ।
देख उसे लक्ष्मण ने अपना, सुन्दर रथ सजवाया ।।
घोर युद्ध सूचक क्षणभर में, बजे भयङ्कर बाजे ।
बधिर हुई आशायें मानों, मेघ प्रलय के गाजे ।।६४।।

रामचन्द्र, लक्ष्मण भी तत्क्षण, निज निज धनुष चढाये ।
जलधि समान सैन्य से मण्डित, समर क्षेत्र मे आये ।।
आ पहुंचे सब समर धरा पर, बजी युद्ध की भेरी ।
करने लगे वीर गण सत्वर, रिपुओं की ही ढेरी ।।६५।।

करके कोई प्रबल ताड़ना, सन्मुख शत्रु बुलाता ।
कहता कोई क्यों न नीच, तू मुझ पर शस्त्र चलाता ?
मान रहा है वीर आपको, फिर पीछे मत जाना ।
कितनी अरे, शक्ति है तुझमें, मुझको यह बतलाना ।।६६।।

कितने ही मर चुके समर में, वीर निरे अभिमानी ।
देख व्यर्थ अभिमान् विवश, हा मरता रण में प्राणी ।।
इस जग के सुख भोग नीच तू, अपने प्राण बचाकर ।
कर न प्राण प्यारी को विधवा, जीवन यहां गुमाकर ।।६७।।

छोड़ा तभी विपक्षी ने शर, उसको उत्तर देते ।
स्वामि भक्त सेवक निज प्रमुदित, तन, मन, धन सब देते ।।
देकर भी सर्वस्व आज हम, प्रभु का कार्य करेंगे ।
देते अपनी देह शत्रु से, मन में नहीं डरेंगे ।।६८।।

आसन हा ! हो गये वहाँ, पर कितनों के ही खाली ।
बाणों के छा जाने से हा ! दिखती रजनी काली ।।
कितने ही वीरों के रण में, चाप कठिन तर टूटे ।
रक्त-कलश के सदृश वहां पर, लाखों माथे फूटे ।।६९।।

वही अनर्गल पृथिवी तल में, विकट रुधिर की धारा ।
होने लगे पार कितने ही, लेकर अश्व सहारा ।।
आमिष भक्षी प्राणि बहुतेरे, आये रण में भूखे ।
खाकर मनुज कलेवर इच्छित, मन में रहे न सूखे ।।७०।।

कही कही विकराल डाकिनी, कड़-कड हाड चबाती ।
छुकी हुई उन्मत हुई-सी, गाती और बजाती ।।
अहो ! भोगते थे निज घर में, सुख जो इन्द्र सरीखे ।
पडे हुए हैं अङ्ग-हीन वे, धो धो कर अपने जीसे ।।७१।।

जो न भूमि पर थे पग देते, खाती उन्हें शृङ्गाली ।
चूंथ रहे हैं गिद्ध युद्ध में, भुजा कहीं शर वाली ।।
पडते हुए गगन से मस्तक, भाते सूर्य सरीखे ।
अथवा गिरे रक्त पङ्कज ही, मानों अमरपुरी से ।।७२।।

❑ ❑ ❑

पश्चात् अरिगण ने, सकल सेना दबाई राम की ।
होती हुई सहसा भयङ्कर, तव प्रगति संग्राम की ।।
लड़ने लगे सब वीरता से, मोह तजकर प्राण का ।
पीछे हटे राक्षस सकल, लख शौर्य जब हनुमान का ।।७३।।

तब कुन्द, मकरध्वज विपक्षी, सामने आये वहां ।
श्री राम सेना पर, प्रखरतर बाण बरसाये वहां ।
वे वीर विद्याधर सहज, उत्तर त्वरित देते हुए ।
निज आयुधों से शत्रुओं के, प्राण वे लेते हुए ।।७४।।

फिरने लगा हनुमान रण में, श्रेष्ठ निज रथ पर चढ़ा ।
निर्भीक फिरते देख उसको, घोर कोलाहल बढ़ा ।
उसके सपाटे में समर में, वीर जो आया हटा ।
मरकर पड़ा संग्राम में, या भागकर जीवित रहा ।।७५।।

करता दुखित मृग झुण्ड को, वनराज कानन में यथा ।
अति दल मलिल की वीर ने, सम्पूर्ण रिपु सेना तथा ।
'मय' बाण बरसाकर तभी, लड़ने लगा हनुमान से ।
चकनाचूर रथ उसका किया, हनुमान ने निज बाण से ।।७६।।

तब दूसरा रथ एक उसको, शीघ्र रावण ने दिया ।
मय ने उसी में बैठकर, हनुमान से फिर रण किया ।।
तोड़ा प्रबल मय वीरने, रथ अंजनी सुत का यदा ।
आया वहाँ पर दौड़कर, बलवान् भामण्डल तदा ।।७७।।

दोनों परस्पर आयुधों को, व्यर्थ-सा करते हुए ।
निःसीम अपनी शक्ति पूर्वक, युद्ध वे करते हुए ।।
वह मय उसे भी युद्ध में, जब रथ रहित करता हुआ ।।
आया तभी सुग्रीव सन्मुख, बाण बरसाता हुआ ।।७८।।

मय ने उसे भी कर दिया, सम्पूर्ण शस्त्रों के बिना ।
आया विभीषण वेग से, करता हुआ तब सामना ।।
अत्यन्त दुःसह युद्ध दोनों में, यहां होता रहा ।
क्षत उस विभीषण के हृदय से, रक्त का स्रोता बहा ।।७९।।

संग्राम में निज नायकों की, देखकर दुर्गति बड़ी ।
श्री राम की क्रोधाग्नि इससे, और भी ज्यादा बढ़ी ।
वे वीरवर युद्धार्थ सिंहों के, प्रबल रथ पर चढ़े ।
देते हुये शुभ सान्त्वना, झट वेग से आगे बढ़े ।।८०।।

करते हुये मैदान-सा-वे, राम आ पहुंचे वहां ।
मय कर रहा था सिंह सम, सब सैन्य को व्याकुल जहां ।।
बहु बाण बरसा राम ने, मय को समर में ढक दिया ।।
शस्त्रास्त्र के चातुर्य बल से, खूब ही व्याकुल किया ।।८१।।

उसको बिलख विह्वल दशानन, यों बिकट संग्राम से ।
सत्वर समर में आ गया, संग्राम करने राम से ।।
जाता उसे उस ओर लखकर, वीर लक्ष्मण ने कहा ।
पापी दशानन बोल मुख से, तू उधर जाता कहां ? ।।८२।।

रे रङ्क राक्षस ! पर त्रिया-हर पाप जो तूने किया ।
अवतार उसको दण्ड देने के, लिये मैंने लिया ।।
रे रे ! नराधम ! बन्धुवर, श्री राम पृथिवी के पती ।
आदेश पा तेरी समर में, मैं करूंगा दुर्गती ।।८३।।

तुझ-सा न कोई विश्व में, होगा दुराचारी बड़ा ।
जाता कहां हट कर समर से, सामने ही रह खड़ा ।।
यमराज से भी सौगुनी, मैं दुर्दशा तेरी करूं ।
मिथ्या बना है वीर तू, अब गर्व मैं तेरा हरूं ।।८४।।

तब क्रोध से कर रक्त-दृग, उत्तर दशानन ने दिया ।
रे मूढ, मेरी शक्ति से, डरता नहीं तेरा हिया ।।
उत्कृष्ट जितनी वस्तुये उनका प्रभुत्व मुझे मिला ।
तुम दीन के घर जानकी को, लग सकेगा क्या भला ।।८५।।

घण्टा सुशोभित हो सदा, गजराज के ही कण्ठ में ।
लौटा सकूं जो मिल चुका, ऐसा नही हूँ लण्ठ में ।।
यमराज से प्रेरित हुआ, तू युद्ध करना चाहता ।
क्या विश्व-विश्रुत चक्र का, तुझको नहीं कुछ भी पता ।।८६।।

बोले पुनः लक्ष्मण भली, विधि शक्ति तेरी जानता ।
कब मानता मैं वीर तुझको, चोर पूरा मानता ।।
रे रे नराधम ! लोक निन्दित, पाप जो तूने किया ।।
तो हाय ! अपने हाथ से ही, मृत्यु को न्यौता दिया ।।८७।।

लंकेश लक्ष्मण पर प्रखरतर, बाण बरसाने लगा ।
सौमित्र करके शर विफल, निज शौर्य दिखलाने लगा ।।
लंकेश ने अपने हृदय में, पूर्णतः जाना यही ।
सामान्य शस्त्रों से सुमित्रानन्द, वश होगा नहीं ।।८८।।

लंकेश ने सौमित्र पर, जलबाण तब छोड़ा वहां ।
छोड़ा पवन शर वीर ने, उत्तर उसे देते महा ।।
दशशीश द्वारा युद्ध में, दिव्यास्त्र जब छोड़े गये ।
सौमित्र से पल मात्र में, सब ही वहाँ तोड़े गये ।।८९।।

ये वीर दोनों उस समय, घमसान रण करते हुए ।
कायर इन्हें अवलोक मन ही मन अधिक डरते हुए ।।
करते परस्पर वीर दोनों, शर प्रखर अगणित वृथा ।
होने लगी सर्वत्र इनकी, वीरता की ही कथा ।।९०।।

लंकेश ने निज शत्रु पर, फिर विघ्न शर छोड़ा अहा ।
उसका निवारक बाण, लक्ष्मण को न सुस्मृति में रहा ।।
दिव्यास्त्र द्वारा ही विफल, तत्काल वे करने लगे ।
योधा बिलख यह दृश्य, अति उत्साह से लड़ने लगे ।।९१।।

तत्काल ही विद्याधरों की पुत्रियां आकाश में ।
सब देखतीं थीं दृश्य यह, पूछा किसी ने पास मे ।।
हे देवियों ! आकाश से तुम, दृश्य क्या अवलोकती ?
बोली सभी लज्जा सहित, हरि ओर हम सबकी मती ।।९२।।

सुनकर वचन सौमित्र ने, अपना बदन ऊंचा किया ।
हो सिद्ध सत्वर कार्य वह, आशीष लक्ष्मण को दिया ।।
उसका निवारक 'सिद्ध' शर, तब याद उनको आ गया ।
छोड़ा तभी शर सत्रु पर, अति हर्ष मुख पर छा गया ।।९३।।

बहु रूपिनी के जोर पर, अति रूप रावण ने किये ।
सर्वत्र उस रण-भूमि में, लंकेश दिखलाई दिये ।।
सौमित्र अपनी शक्ति से, ज्यो शीश उसका छेदता ।
क्षण मात्र उससे अधिक, सिर सामने वह देखता ।।९४।।

छेदे अहो जब चार सिर तब, आठ दिखलाई दिये ।
छेदे त्वरित ही आठ जब, सोलह दशानन ने किये ।।
निज तीक्ष्ण बाणों से भुजायें, भेदता सौमित्र ज्यों ।
निज शक्ति से तत्काल ही, दुगुनी करे लङ्केश त्यो ।।९५।।

उसके शवों से ही सकल हा, भर गई वह रण मही ।
अगणित दिखाते थे पड़े, मस्तक कहीं पर, कर कहीं ।।
संग्राम करने से सतत लंकेश, अतिशय ही थका ।
सौमित्र का वह अन्य शस्त्रों से, न कुछ भी कर सका ।।९६।।

तब छोड़ा मायाचार अपना, रूप शुभ प्रगटित किया ।
होकर कुपित निज चित्त में, बिकराल मुख अपना किया ।।
सामान्य शस्त्रों से उसे, दुर्लन्घ्य मन में जान के ।
निज चक्र से ही मौत उसकी, आप मन में ठान के ।।९७।।

अपने अलौकिक चक्र का, वह चिन्तवन करता हुआ ।
आया दशानन हाथ में, उत्पन्न भय करता हुआ ।।
अवलोक करके चक्र, लक्ष्मण ने विहंस उससे कहा ।
रे रंक ! अपने हाथ में तू, बोल यह क्या ले रहा ? ।।९८।।

प्रस्तुत हुआ उसको, चलाने के लिए रावण यदा ।
श्री राम वज्रावर्त ले, सुग्रीव ले करके गदा ।।
तुम चक्र का करने निवारण, शस्त्र ले लेकर कड़े ।
करते विविध विधि कल्पना, सब हो गये रण मे खड़े ।।९९।।

निज शक्ति भर लंकेश ने, सौमित्र पर फेंका उसे ।
कल्पान्त के आदित्य का, भ्रम हो गया लखकर उसे ।।
वह मेघ मण्डल के सदृश, गम्भीर स्वर करता हुआ ।
दिव्यास्त्र उन विद्याधरो के, व्यर्थ सब करता हुआ ।।१००।।

दे तीन फेरे शीघ्र ही, सौमित्र कर में आ गया ।
सम्पूर्ण सेना में अलौकिक, हर्ष इससे छा गया ।
सद्धर्म से संसार में, क्या क्या नही होता कहो ।
हा पाप वश निज वस्तु ही, घातक यहां बनती अहो ।।१०१।।

अवलोक करके चक्र अपना, तब विपक्षी हाथ में ।
यो सोचता लंकेश मन मे, हूँ धरा का नाथ मैं ।।
भगवान का त्रयकाल में, मिथ्या वचन होता नहीं ।
अब कर्म का प्रेरा हुआ, मेरा समय आया वही ।।१०२।।

अवलोक कर जिसकी ध्वजा को, शत्रु घबराते सदा ।
दासी सदृश अनुगामिनी है, भूमि जिसकी सर्वदा ।।
यों आज वह लंकेश मारा जायेगा आश्चर्य है ।
कुलटा त्रिया के तुल्य ही, संसार का ऐश्वर्य है ।।१०३।।

इस लोक के ये भोग सारे, सर्वथा ही निन्द्य हैं ।
विष जानकर त्यागा इन्हें, वे ही यतीश्वर वन्द्य हैं ।।
यह प्राप्त नरभव भोग में, मेरा गया सारा वृथा ।
किसको सुनाऊं चित्त को, इस बातकी दुस्सह व्यथा ।।१०४।।

पाकर सकल अनुकूलता, दीक्षित स्वयं होता कहीं ।
पाता परम सुख धाम में, ऐसा समय आता नहीं ।।
जिसके उदय से आज तक, निज धर्म को भूला रहा ।
वनिता तथा सुकुमार, आदिक पर सदा फूल रहा ।।१०५।।

अब क्या करूं आई यहां, वेला बिकट सन्ताप की ।
मैंने भयङ्कर दुर्दशा की, आज अपने आपकी ।।
विषयाभिलाषी रङ्क मैं, दिन रात भोगों में फंसा ।
पूरा हुआ अब तक न मेरा, दुष्ट भोगों का नशा ।।१०६।।

हैं धन्य वे भरतादि, निर्भय भूमि का पालन किया ।
फिर त्याग कर वैभव सकल, आत्मार्थ शिवसाधन किया ।।
हा ! मोह ने जीता मुझे, धिक्कार, बारम्बार है ।
अन्तिम समय के शोक का, आता न मेरा पार है ।।१०७।।

बोला तभी सौमित्र, दशमुख ! सोच क्या करते अहो ।
क्या चाहते हो, शांत हो, निःशंक तुम मुझसे कहो ।।
श्री राम की सीता तुम्हें, देना अभी भी इष्ट हो ।
सग्राम से तुमको दशानन, फिर न कोई कष्ट हो ।।१०८।।

प्रभु की कृपा से हम सुखी, तेरा न कुछ भी चाहिए ।
इच्छा हमारी है यही, तू भी यहां सुख से जिए ।।
बोला दशानन रङ्क ! तुझको गर्व उपजा है वृथा ।
तूने सुनो जग में न क्या, मेरे पराक्रम की कथा ।।१०९।।

रे रे नराधम, युद्ध में, परलोक पहुंचाकर तुझे ।
        सम्पूर्ण इस संसार में, फिर शांति मिल सकती मुझे ।।
होगी अधर्म तब मृत्यु, मेरे हाथ से निश्चय यहीं ।
        विधि लेख लाखों यत्न से, भी अन्यथा होता नहीं ।।११०।।

रे रे कुपुत्रों ! बाप ने, तुमको निकाला देश से ।
        सामर्थ्य क्या रक्खो तुम्हारी, लड़ सको लंकेश से ?
बहका रहा विद्याधरों का नाम नारायण बना ।
        हां, हो न सकती थी परीक्षा, घोर इस रण के बिना ।।१११।।

होगी परीक्षा आज ही, निर्लज्ज ! इस संग्राम में ।
        तुझको पठाऊं चक्रसह, सत्वर बिकट यम धाम में ।।
विद्याधरों का तुच्छ मण्डल, आज जो तुझको मिला ।
        उनकी मदद से कौन-सा, तू जीत सकता है किला ।।११२।।

लकेश ! यह अन्तिम समय, प्रभु नाम को उच्चार तू ।
        यमलोक में ही जायगा, तजकर सकल परिवार तू ।।
बहु भांति मैं समझ चुका हूँ, पर नहीं तू मानता ।
        किस बात में अपनी भलाई, यह न कुछ तू जानता ।।११३।।

अतएव अपना इस समय, तजना न तू आग्रह अती ।
        भवितव्यता अनुसार हो, उत्पन्न होती है मती ।।
निज हाथ मे घटकार सम तू, तुच्छ यह क्या ले रहा ।
        ज्यों ही दशानन ने कुपित, ऐसा वचन उससे कहा ।।११४।।

मारा फिराकर चक्र लक्ष्मण ने, निशाना बांध के ।
        रोका उसे दशशीश, दिव्यास्त्र सारे साध के ।।
पर चक्र के आघात से, उर भिद गया उसका कड़ा ।
        गिरिराज सम वह राक्षसो का, नाथ भूपर गिर पड़ा ।।११५।।

जितने जगत में शुभ अशुभ, तन धारियों के काम हैं ।
        जो दिख रहे सुख दुःख सकल, उनके बिकट परिणाम है ।।
निर्जीव सुन निजनाथ को, सेना लगी सब भागने ।
        कहकर अभयपद मृदु बाणी से, रोका सभी को राम ने ।।११६।।

आया विभीषण शव निकट, रोता हुआ दुःख का भरा ।
हा ! हो गई है शून्य-सी, पति हीन सारी उर्वरा ।।
दुःख दाह से उद्यत हुआ, स्वयमेव मरने के लिए ।
श्री रामने रथ से उतर, शस्त्रास्त्र उसके ले लिए ।।११७।।

भ्राता-विरह के कष्ट से, वह तो धरापर गिर पड़ा ।
हस्तावलम्बन रामने देकर, किया उसको खड़ा ।।
आंसू बहाते वह विभीषण, शोक बहु करने लगा ।
तुम चल बसे संसार से, हे बन्धुवर देकर दगा ।।११८।।

विद्याधरों के नाथ ! अब, हम शोक सागर में पड़े ।
दो सान्त्वना सत्वर प्रजा, वत्सल जरा होके खड़े ।।
आश्रय कृपा कर दीजिए, हे तात ! मुझको शोक में ।
तुमसा प्रतापी कौन था नर, दूसरा भूलोक में ।।११९।।

लंकेश बध की जब खबर, पहुंची विपुल रणवास मे ।
रोती तथा पड़ती हुई, आई सभी शव पास मे ।।
मन्दोदरी, रम्भा, अनन्दा, सुन्दरी कमलानना ।
प्रवरा, महादेवी, सुशीला, श्रीमती चन्द्रानना ।।१२०।।

श्री रुक्मणी, शीला, सुभद्रा, उर्वशी, कनकप्रभा ।
भद्रा, मनोवेगा, तडिन्माला, विशाला, सुप्रभा ।।
इत्यादि सब ही रानियां, हा ! शीश निज धुनती हुई ।
धर शीश पतिकी देह पर, व्याकुल प्रचुर होती हुई ।।१२१।।

कोई लिपट कर अङ्ग से, बोली विवश हो मोह के ।
हे प्राण वल्लभ ! आपने, छोड़ा हमें किस द्रोह से ।।
श्री राम ने उन नारियों को, दी अधिक तर सान्त्वना ।
तत्काल की सबने वहां पर, शव दहन की योजना ।।१२२।।

फिर पद्मद्रह पर राम ने की, वीर की अन्तिम क्रिया ।
जलती चिता को देखकर, दुःखसे विभीषण रो दिया ।।
तब पोंछ कर दृग-नीर, भा मण्डल गिरा बोला वहां ।
हे वीर वर ! पण्डित विभीषण, शोक यह कैसा यहां ।।१२३।।

करता हुआ संग्राम वह, रावण गया परलोक में ।
निज नाम भी उसने कमाया है, अधिक इस लोक में ।।
उसके लिये अब शोक करना, सर्वथा ही व्यर्थ है ।
करने उसे जग में सजीवन, कौन वीर समर्थ हैं ।।१२४।।

जैसे शुभाशुभ कर्म करते, जीव इस संसार मे ।
पाते स्वयं परिणाम, वैसा विश्व कारागार में ।।
नि:शंक अपने कर्म सबको, भोगने पड़ते सदा ।
मिथ्या न कर सकता तनिक भी, देव या मानव कदा ।।१२५।।

इस कर्म बन्धन को सहज जो, तीक्ष्णता से तोड़ते ।
तजकर जगत के मोह को, निज में हृदय को जोड़ते ।।
होते वही निष्कर्म जन, सम्पूर्ण सुख पाते वही ।
उनको प्रणाम सदैव है, फिर देह में आते नहीं ।।१२६।।

बहु भाति समझाया वहां, उद्वेश उसका कम हुआ ।
श्रीराम सह वह वीर लंका, मध्य फिर जाता हुआ ।।
जा शीघ्र लंका वाटिका, राम सीता से मिले ।
मिलकर परस्पर म्लान मन, तत्काल सबके ही खिले ।।१२७।।

पूर्वार्द्ध समाप्त

जैन श्रीरामकथा

उत्तरार्ध

प्रथम सर्ग

निज अनुज सहित श्री रामचन्द्र, लंका में सुख से करें वास ।
        पर सुत वियोग से व्याकुल हो, मातायें लेती उष्ण श्वास ।।
सखियों से करती यही बात, आर्यें मेरे कब वीर पुत्र ।
        उनको विलोक होगा हिम-सा, अत्यन्त तप्त मेरा सुचित्त ।।१।।

वे करें परस्पर यही बात, सुत गये विपिन में राज त्याग ।
        जगको महान आदर्श रूप, इन भ्राताओं का बन्धु राग ।।
सीता अपना भूली न धर्म, नि:शंक गई निज नाथ सङ्ग ।
        तजके उसके ये राज-भवन, मातायें चित्त मे सौख्य भंग ।।२।।

माताओं को सुत का वियोग, देता रहता अत्यन्त ताप ।
        कर पुन: पुन: सुस्मृति महान, असमय मे करती है विलाप ।।
गृह के आँगन में एक बार, बैठी थी माताये उदास ।
        आये मुनि नारद वहां आप, करके बहु देशान्तर प्रवास ।।३।।

उठकर कौशल्या ने तुरन्त, चरणों में उनके धरा शीश ।
        अवलोक वदन उसका उदास, पूछे करुणामय वे ऋषीश ।।
हे वीर प्रसू, हे वीरपत्नि, आ पड़ा कौन सा विकट त्रास ? ।
        किस कारण कह तू मुझे अद्य, दिख पडती है अतिशय उदास ।।४।।

हे देवर्षी ! वात्सल्य मूल, तुम इधर-उधर करते प्रयाण ।
कौतुक करते रहते अनेक, इससे न हमारा रहा ध्यान ।।
सम्प्रति करके दर्शन त्वदीय, मनमें हमको कुछ मिली शांति ।
हे मुने ! सुतों का है वियोग, इस कारण हम दुखिया नितान्त ।।५।।

सीता सह लक्ष्मण और राम, करते भीषण वन में निवास ।
उनके कष्टों का कर विचार, रुक जाता मेरा हाय श्वास ।।
मिलता न सुतों का समाचार, इससे उदास रहती नितान्त ।
कौशल्या यों व्यथित चित्त, कह डाला निज सारा वृत्तान्त ।।६।।

सुन वाणी उसकी व्यथा पूर्ण, नारदमुनि-मनमें हुआ खेद ।
जननी मतकर तू शोक लेश, होगा तेरे दुःख का उच्छेद ।।
धीरज धर मनमें अल्पकाल, लाऊंगा में सुत समाचार ।
यों कहकर नारद मुनि सुवाक्य, कर गये गगन पथसे विहार ।।७।।

लङ्का मे आ पहुंचे तुरन्त, लेकिन मन में आया विचार ।
सम्प्रति जानूं में किस प्रकार, श्रीराम और हरि समाचार ।।
पूछुं रावण की कुशल क्षेम, होगा इससे सब वृत्त ज्ञात ।
तब पूछा अङ्गद से सप्रेम, लंकेश नाथ तो कुशल भ्रात ।।८।।

रावण का उसको मान मित्र, अङ्गद को उपजा तीव्र क्रोध ।
रिपु मान ले गया राम पास, मुनि रहे आप करते विरोध ।।
मुनि करे हृदय में तीव्र सोच, यह सङ्कट आया कहां आज ।
कैसी कर बैठा विकट भूल, श्री जिनवर ही अब रखें लाज ।।९।।

श्री रामचन्द्र मुनि को विलोक, हो गये खड़े निज स्थान त्याग ।
करके प्रणाम उनको विशुद्ध, बोले सबका है उदित भाग्य ।।
मुनि ने होकर सन्तुष्ट चित्त, सस्नेह दिया आशीर्वाद ।
बोले फिर वे हे बन्धु युग्म, मातायें तुमको करें याद ।।१०।।

ज्यों धेनु वत्सका पा वियोग, होती रहती है व्यथित चित्त ।
त्यों हैं मातायें व्यथित विपुल, समझो इसको तुम हे पवित्र ।।
निज पुत्रों का पाकर वियोग, करती रहती है वे विलाप ।
इस राज भोग में हो विलग्न, क्यों भूल गये हैं सदन आप ।।११।।

अवलोक दशा उनकी विचित्र, आती करुणा सबको अपार ।
तज बैठी हैं वे सकल कल्प, हो गया अल्प उनका आहार ।।
जाकर दर्शन दें आप शीघ्र, नहीं तो उनका होगा वियोग ।
घेरे रहता है सदा काल, चिन्ता रूपी ही महा रोग ।।१२।।

नारद मुख सुन निज जननि वृत्त, आँखों से बहने लगा नीर ।
कर माताओं का प्रेम स्मरण, मनमें उनके हा ! बढी पीर ।।
हे मुने ! आप करुणा निधान, की है करुणा हम पर पधार ।
दी स्मृति आपने जो पवित्र, उपकार आपका है अपार ।।१३।।

वे पुत्र नहीं पर हैं कुपुत्र, जो माता को देते बिसार ।
देखा है ऐसों में प्रत्यक्ष, सचमुच में ही कलिका प्रचार ।।
हे विज्ञ विभीषण यहां नित्य, भोगे हमने स्वर्गीय भोग ।
पर करे आज हमको अपार, विह्वल माताओं का वियोग ।।१४।।

तब दूत भेज सब समाचार, माताओं पर भेजे तुरन्त ।
चल पड़े यान में हो सवार, करने को विरहज दुःख अन्त ।।
पथ में आते जो विविध दृश्य, समझाते उनका मर्म राम ।
ये देखो ऋषि आश्रम पवित्र, करते इसमें मुनि तप अकाम ।।१५।।

आते इसके वन्दन निमित्त, इस जगती के ऋषिवर अनेक ।
यह वही दण्डकारण्य देवि, था दिया जहाँ मुनिको आहार ।।
हे प्रिये ! देख यह है सुमेरु, हो यहाँ तीर्थ करका अभिषेक ।
रावण ने तुमको हरा यहीं, करके मन में माया प्रचार ।।१६।।

यह नदी देख है महारम्य, है बकावली अत्यन्त शुभ्र ।
हम पृथिवी से अत्यन्त उर्ध्व, छू रहा अपरिमिति विपुल अभ्र ।।
तू वंशस्थल गिरि को विलोक, अपने जीवन को धन्य मान ।
दो मुनियों को हे देवि अत्र, उपजा था अनुपम दिव्य ज्ञान ।।१७।।

यह है दशांगपुर अति विशाल, हे वज्रकर्ण इसका अधीश ।
है ज्ञात तुम्हें सम्पूर्ण वृत्त, नृपको न नमाया आत्म-शीश ।।
पूछे सीता साकेत पास, यह इन्द्रपुरी-सी पुरी कौन ? ।
यह अवधपुरी शोभा निधान, वर्णन में इसके विज्ञ मौन ।।१८।।

सन्मुख आ पहुंचे भरत बन्धु, आने का पाकर समाचार ।
वे मिले राम सबसे सप्रेम, पुष्पक विमान नीचे उतार ।।
आया आँखों में स्नेह नीर, बोले गद् गद् हो भरत वीर ।
हे पूज्य, भरत करता प्रणाम, हैं आप सिंधु सम ही गंभीर ।।१९।।

निष्कपट मिला वह बन्धु वर्ग, था हृदयों में सदभाव प्रेम ।
पूछी सबने सविनय सनम्र, कर जोड़ भक्ति से कुशल क्षेम ।।
लख एक बार अपना कुटुम्ब, अतिशय थे प्रमुदित युगल बंधु ।
सबकी आँखों में एक साथ, था उमड़ उठा आनंद सिंधु ।।२०।।

बन्धु मिलन की उत्तमता का, ऐसा नहीं मिले उपमान ।
कृत्रिमता का जहाँ नहीं था, अन्श मात्र भी नाम निशान ।।
भाव-विहिन बाह्य से मोहक, नहिं कोरा था लोकाचार ।
कह सकते हैं शुद्ध स्वरों में, जिसको केवल मायाचार ।।२१।।

निज माताओ को दुखित देख, निज प्रिया सहित वे वीर राम ।
पुलकित तन होकर बार बार, करते चरणोंमें अति प्रणाम ।।
सन्मुख पुत्रो का मुख विलोक, हो गया विरहा का खेद दूर ।
नभमें रविके रहते प्रकाश, क्षणभर भी टिकता तिमिर क्रूर ।।२२।।

हे पुत्रो ! तुम सबका वियोग, व्याकुल करता था हमें नित्य ।
जीवन सम पाकर तुम्हे आज, हो रहा हमारा शान्त चित्त ।।
जो माता प्रति होता न क्रूर, वह पुत्र विश्व में भाग्यवान ।
वे बनें सर्वथा कुगति पात्र, गुरुजन पर देते जो न ध्यान ।।२३।।

वे भरत राज्य से थे विरक्त, भोगों से उनको था न राग ।
थे करते शासन पराधीन, पर मनमें वसता त्याग त्याग ।।
है भरत-भवन शोभायमान, उसमें उनकी रुचि है न लेश ।
निज राज-पाटके सकल कार्य, लगते हैं उनको महा क्लेश ।।२४।।

वे मन में करते हैं विचार-हैं क्षणिक जगत के सकल भोग ।
इन में होता जो रक्त चित्त, बढ़ता है उसका भ्रमण रोग ।।
धन-जनसे पूरित राज-सदन, दे सकता नहिं आत्म तोष ।
निर्ग्रन्थ अवस्थासे मिलता है, अजर अमर सुख शांति कोष ।।२५।।

जा भरत राम चरणों समीप, बोले विनम्र हो पूज्य भ्रात ।
मैं करता अब तक रहा राज, केवल प्रमाण कर आप बात ।।
अब तोड़ कर्म का विकट जाल, चाहूँ शाश्वत निज अमर मुक्ति ।
है नहीं जहां पर आधि-व्याधि, अथवा शारीरिक भी प्रभुक्ति ।।२६।।

जिसमें केवल है सुख अनन्त, नहिं जहां जन्म-मरणादि दोष ।
जो अनुपम ज्ञानानन्द रूप, जो है स्वभाव का रम्य कोष ।।
ये भोग मुझे विषधर समान, क्षण क्षण लगते हैं अति कराल ।
हो मोह विवश मैंने अपार, हा, गंवा दिया इसमें स्वकाल ।।२७।।

सुन भरत अनुज के वचन राम, आंखों में लाते हुये नीर ।
कर श्रवण तुम्हारे कठिन वाक्य, होती हैं मनमें मुझे पीर ।।
हे बन्धु, करो ऐसा न कार्य, हो जिससे हम सबको विषाद ।
नहिं मुझे चाहिए राज-पाट, मैं आया कर परिवार याद ।।२८।।

है भोग भोग्य तेरा शरीर, सम्प्रति इस तन से भोग भोग ।
तेरे सुख में हैं कमी कौन ? जिससे चाहे तू त्याग योग ।।
श्री हरि भी बोल उठे तुरन्त, होते हो क्यों तुम यों उदास ।
सेवक बन करके हम सदैव, तेरे चरणों में करें वास ।।२९।।

सब रहे रोकते बार-बार, पर भरत हृदय वैराग्यवान ।
इससे सबको अवरोध मान, वे अन्य बात पर दें न ध्यान ।।
जो है जग से अतिशय विरक्त, उसको सकता है कौन रोक ?
जो मुक्ति-मार्ग का पथिक सत्य, उसको रोके किस भांति लोक ।।३०।।

श्री ''देशभूषण केवली'', साकेत में आत्ते हुये ।
उपदेश सुन उनका विमल-सुख-शांति सब पाते हुए ।।
श्री राम लक्ष्मण बन्धु सह, सब ही तुरत आये वहां ।
प्रभु दर्शनों से चित्त, मनुजों के हुए पुलकित महा ।।३१।।

तत्काल वैरागी भरत-अपने करों को जोड़ के ।
कर वन्दना बोला विनय से, मान, माया छोड़ के ।।
हे नाथ इस संसार में, अतिशय भ्रमण मैंने किया ।
लेकिन कभी भी दिव्य-ज्ञानामृत नहीं मैंने पिया ।।३२।।

जाना यथास्थित विश्व को, अब आप के उपदेश से ।
मैं मुक्त होना चाहता हूँ, सद्य ही भव क्लेश से ।।
डूबूं न मैं भव सिन्धु में, हस्तावलम्बन दीजिए ।
दे आज मुनि दीक्षा मुझे, कल्याण मेरा कीजिए ।।३३।।

तत्काल ही भरतेश ने सानन्द-जिन दीक्षा धरी ।
इच्छा रहित क्या बन्धनों में, रह सके वन केसरी ? ।।
नभ से मुदित हो देवगण, शुभ पुष्प बरसाते हुए ।
उत्तम मनुज उस दृश्य से, सद्भावना भाते हुए ।।३४।।

एकाग्र हो निज ध्येय में, अनुपम व्रतों को पालते ।
निज शक्ति भर भरतेश मुनि, अतिचार सारे टालते ।।
धरते बनों में ध्यान वे, मुनि भूल कर संसार को ।
तिर गये कुछ काल मे वे, क्लेश पारावार को ।।३५।।

उनके विमल चरणारविन्दों में, हृदय झुकता रहे ।
तज अन्य जीवों की कथा, गुणगान मुख करता रहे ।।
उनकी अलौकिक दिव्य वाणी, कान नित सुनते रहे ।
सब मान ममता त्याग के, गुण ही ग्रहण करते रहे ।।३६।।

❑ ❑ ❑

दीक्षित सुना जब पुत्र को, मूर्च्छित हुई वह कैकयी ।
खोकर सकल सुध-बुध वहां हा ! हा मृतक-सी हो गई ।।
आई सहज में चेतना, मलयादि के उपचार से ।
सर्वाङ्ग भीना हो गया, शोकाश्रु जल की धार से ।।३७।।

हे पुत्र हमको छोड़कर, यह मार्ग क्यों तूने लिया ।
देखे बिना जलता रहेगा, रात दिन मेरा हिया ।।
पति ओर निज सुत के बिना, कैसे जिऊंगी मैं यहां ।
आधार बिन मैं वल्लरी-सी, आज हा ! जाऊं कहां ? ।।३८।।

श्री राम समझाने लगे, हम सब तुम्हारे पुत्र हैं ।
भरतेश से बढ़ कर सहायक, दुःख में सर्वत्र हैं ।।
सुविशाल भवनों में सभी, सेवक तुम्हारे सर्वथा ।
दीक्षित भरत को देख करके, शोक करना है वृथा ।।३९।।

उत्तम व्रतों को धर सुनो, निज जन्म को सार्थक करूं ।
अतएव करके त्याग सब, इस काल संयम मैं धरूं ।।
ममता विवश चिरकाल से, यह जीव जग भ्रमता फिरे ।
धरता जहां पर जन्म है, उस योग में ममता करे ।।४०।।

पृथिवी मती श्री आर्यिकाके-पास व्रत उसने धरे ।
तज देह की ममता सदा, शुद्धाचरण वह आचरे ।।
देखो अपरिमित काल से, नश्वर सकल संसार है ।
निस्सार है सब कुछ यहां, धर्माचरण ही सार है ।।४१।।

मिलकर खेचर भूमिगोचरी, राम निकट सब आये ।
विनय युक्त होकर के सबने, अपने भाव दिखाये ।।
प्रभो आप अब भूतल के, बनिए शासक भारी ।
करें निषेध आप नहीं किंचित्, इतनी विनय हमारी ।।४२।।

शूर वीर, शुभ चक्र युक्त है, लक्ष्मण बन्धु हमारा ।
बनें वही इस भूपर अनुपम, शासक एक तुम्हारा ।।
नृपति योग्य सब गुण उसमें हैं, हमको वही सहारा ।
जाओ निकट शीघ्र ही वह, मानें वचन तुम्हारा ।।४३।।

लक्ष्मण ने यों कहा-रामसे-मैं तो हूँ नित अनुचर ।
कर सकता अपमान न उनका, सम्प्रति नृप पद लेकर ।।
गुरुजन होते स्वामि जगत् में, ऐसी रीति पुरानी ।
क्या यह पद्धति कभी आपसे, रह सकती अनजानी ।।४४।।

मिलकर सब ही नृपतिगणों ने, पुरको अधिक सजाया ।
दे दोनों को विपुल राज-पद सबने हर्ष मनाया ।।
मातृ प्रेम का दिव्य नमूना, है यह सचमुच अनुपम ।
इस प्रकार का बन्धु प्रेम-शुभ देखा जाता है कम ।।४५।।

भाई, भाई में कलह परस्पर, दिखती है घर-घर मे ।
द्वेष-अग्नि जलती रहती है, दोनों के ही उर में ।।
जहां रही है तुच्छ हृदय में, धन की तीव्र पिपासा ।
वहां निरर्थक आप समझ लें शुद्ध प्रेम की आशा ।।४६।।

मान और वैभव जगती में, बहुविधि बैर कराते ।
ये दोनों ही बड़े बड़ों को, दुर्गति द्वार दिखाते ।।
इन दोनों के ही पीछे, रण होते रहें भयङ्कर ।
पर न समझता सृष्टि नियम नर, जाना सबको तजकर ।।४७।।

रघुपति के थे चार रत्न शुभ, हल, मूसल अतिभारी ।
गदा, रत्नमाला सुरत्न ये, अनुपम शोभा धारी ।।
शंख, चक्र, असि, गदा, सुशैया, दण्ड दिव्य कौस्तुभ मणि ।
सप्त रत्न के धारक थे नित, अर्ध चक्र श्री लक्ष्मण ।।४८।।

रामचन्द्र की मुख्य प्रिया थी, महा सती श्री सीता ।
लक्ष्मण के श्री सती विशिल्या, रूपवती सुविनीता ।।
कितने ही नगरों के दोनों, बन्धु रहे अधिकारी ।
पुण्यवान नर ही पाते हैं, उत्तम सम्पत्ति प्यारी ।।४९।।

थे अपार वैभव के स्वामी, जग में दोनों भ्राता ।
जो जैसा करता स्वजन्म में, वैसा ही फल पाता ।।
तीन खण्ड के अधिपति दोनों, सूर्य चक्र सम शोभित ।
देख अलौकिक सुन्दरता को, सुर भी होते मोहित ।।५०।।

इनके शासन में जगती में, दुखी न कोई दिखाता ।
सबको सब कुछ अल्प यत्न से, यथासमय मिल जाता ।।
कृषक वर्ग खेती के द्वारा, धान्य विपुल उपजाते ।
वे आनन्द सहित औरों को, खाते और खिलाते ।।५१।।

बणिक वर्ग मे सत्य धर्म था, मन में कपट न माया ।
न्याय मार्ग से मिल जाता जो, पोषे उससे काया ।।
क्षत्रिय वर्ग दुखित मनुजों की, रक्षा मे था तत्पर ।
बिन कारण हथियार कभी भी, चलता नहीं किसी पर ।।५२।।

प्रेम भाव से विप्र वर्ग भी, पूजा पाठ कराता ।
था सन्तुष्ट हृदय उनका अति, मनमें लोभ न आता ।।
नही रही भरमार करों की, नही कहीं थी रिश्वत ।
न्यायाधीश न्याय करते थे, रह करके निर्मल चित्त ।।५३।।

करे न कोई कलह परस्पर, सभी प्रेम से रहते ।
डरते सब अतिशय अधर्म से, सत्य बात सब कहते ।।
निज प्रियता से 'राम-राज्य', यह जग आज विदित है ।
राम-राज्य की न्याय नीति भी, सबको ही सम्मत है ।।५४।।

हे शत्रुघ्न वत्स, तुमको-जो रुचे मनोहर राज ।
ले स्वन्त्रता पूर्वक उसको, भोगो सुख से आज ।।
यदि चाहो साकेत पुरी दूं, या दूं अन्य प्रदेश ।
सुषमामय हैं वहां अनेकों, अनुपम देश विशेष ।।५५।।

पूज्य, दीजिये मुझे प्रेम से, मथुरा देश प्रधान ।
बोले राम-वत्स, उसमें हैं, मधु भूपति बलवान ।।
वह लंका पति का जामाता, खेले युद्ध अनेक ।
दिया उसे है असुरनाथ ने, शुभ त्रिशूल सविवेक ।।५६।।

देवो से वह दुर्निवार है, निज परिजन में रत्न ।
मधु-सुत वीर लवणार्णव, रिपुजन विफल सुयत्न ।।
मथुरा को तज अन्य देश की, हो जिसकी अभिलाष ।
प्रमुदित देता हूँ मैं तुमको, करो न चित्त उदास ।।५७।।

बोला वह शत्रुघ्न शीघ्र ही कीजे वही प्रदान ।
कर लूंगा अधिकार नगर पर, मर्दनकर मधु-मान ।।
ले सेना चल पड़ा वीर वह, मथुरा नगरी ओर ।
कार्य शील जीवों को जग में, कोई न कर्म कठोर ।।५८।।

कालिन्दी के दीर्घ कूल पर, अपना डेरा डाल ।
कार्य सिद्ध के अवसर में ही, लगा बिताने काल ।।
गुप्तचरों द्वारा नगरी का, जान लिया वृत्तान्त ।
रजनी समय भूप बिन नगरी, रहती है अति शान्त ।।५९।।

मधु नरपित रणवास सहित अब, बन में करे विहार ।
है त्रिशूल आयुधशाला में, करें नगर अधिकार ।।
पुर को अपना लेने का है, यह अवसर अनुकूल ।
सम्प्रति अन्य विचार उचित नहिं, होगी नहिं तो भूल ।।६०।।

अर्द्ध रात्रि के समय नगर जन, जब थे निद्राधीन ।
कर प्रवेश तब दशरथ सुत ने, किया नगर स्वाधीन ।।
मचा नगर में कोलाहल अति, सुन उसको मधु भूप ।
ले हथियार युद्ध को निकला, वीरों के अनुरूप ।।६१।।

यत्र-तत्र शत्रुघ्न वीर के, सैनिक थे बलधाम ।
क्षणभर में मच गया परस्पर, वीरों में संग्राम ।।
रथ से रथ भिड़ गये परस्पर, करें घोर संहार ।
दिखता था प्रत्यक्ष वहां पर, यम-मन्दिर का द्वार ।।६२।।

मधु सुत वीर लवणार्णव, आया करने युद्ध ।
छोड़े उसने शस्त्र अनेकों, होकर भीषण युद्ध ।।
राम पक्ष का सेनापति दृढ, जो है वीर वृतान्त ।
उसके बाणों से मधु सुत का, हुआ त्वरित प्राणान्त ।।६३।।

सुन सुत का देहान्त भयङ्कर मधु को व्यापा कोप ।
दौड़ा वह विकराल बदन हो, करने रिपु का लोप ।।
बैठा था उस समय हस्ति पर, लेकर अपने शस्त्र ।
उनके द्वारा ही करता था, रिपुओं का विध्वस्त ।।६४।।

आया रघुकुल मुकुट वेग, करने मधु संहार ।
तीव्र निशित शस्त्रों के द्वारा, करने लगा प्रहार ।।
मधु भी उस पर चला रहा था, अपने शस्त्र नृशंस ।
एक दूसरे के करते थे, वे शस्त्रों को ध्वंस ।।६५।।

दोनों ही बलवान सिंह सम, करते रहे प्रहार ।
मधु मन में तत्काल कर्म वश, आया विमल विचार ।।
जीवन का विश्वास न अब कुछ, इस रण से क्या काम ?
क्यों न सुधारूं मैं विरक्त हो, अपने ही परिणाम ।।६६।।

हिंसामय संग्राम सर्वथा, विज्ञों द्वारा त्याज्य ।
इसमें फंसे हुए जीव को, आती क्यों नहिं लाज ?
यह अधर्म का ही निमित्त है, है न प्रशंसा योग्य ।
अहो ! आज तक जग में मैंने, भोगे भोग मनोज्ञ ।।६७।।

तृप्त हुई है कभी न मेरी, भोग लालसा लेश ।
विषय कषाय विवश होकर के, सहे बहुत से क्लेश ।।
क्षण भंगुर अतिशय असार है, यह सारा संसार ।
इसकी ममता में पड कर, किया न आत्मोद्धार ।।६८।।

जब मैं था स्वाधीन अहो तब, आई नहीं सुबुद्धि ।
कर न सकी रक्षा यह मेरी, देखो राज समृद्धि ।।
आग लगे पर कूप खोदना, जिस प्रकार है व्यर्थ ।
भूतकाल की चिन्ताओं से, सिद्ध न कोई अर्थ ।।६९।।

धीर-वीर व्रणपूर्ण नृपति मधु, ज्यों था गज आरूढ़ ।
भाव साधु वह बना भाव से, हित में हुआ न मूढ ।।
श्री अरहन्त, सिद्ध, मुनिवर, जो केवलि भाषित धर्म ।
ये मङ्गल है, उत्तम है ये, यही शरण नहिं कर्म ।।७०।।

कर्म भूमि मे जहां जहा पर, विद्यमान भगवान ।
उनके चरणो का ही सम्प्रति, है मुझको अति ध्यान ।।
वे प्रभु मेरे हृदय-कमल में, आके करें निवास ।
सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का ही, मुझको दृढ़ विश्वास ।।७१।।

यावज्जीवन छोड़ रहा हूँ, मै सारे आहार ।
नही मुझे इस राज-सदन से, है किंचित् भी प्यार ।।
करते हुए भ्रमण भव वन मे, दिया किसी को ताप ।
मन, वाणी, काया के द्वारा, हो मिथ्या वह पाप ।।७२।।

करता हूँ परिहार सर्वथा, रागादिक जो हेय ।
दिव्य शुद्ध चैतन्य रूप ही, मात्र एक आदेय ।।
स्वच्छ ज्ञान दर्शन मय मै हूँ, अन्य सर्व संयोग ।
भोक्ता मै अपने स्वरूप का, नहि पुदगल का भोग ।।७३।।

नही मुझे हो सकती है अब, तृण संस्तर की प्राप्ति ।
किन्तु हृदय मन्दिर में मेरे, तीन भुवन के आप्त ।।
छोड़ परिग्रह को भावों से, लोच किये शिर केश ।
तत्क्षण मधु के परिणामो मे, थी न शत्रुता लेश ।।७४।।

गजारूढ़ मधु मुनि सत्वर ही, हुये ध्यान में लीन ।
मानों हैं ध्यानस्थ अखण्डित, मुनि कोई प्राचीन ।।
वह शत्रुघ्न शांत लख उसको, करता हुआ प्रणाम ।
क्षमा करो अपराध हमारा, तुम हो गुण के धाम ।।७५।।

कभी नहीं हम हुए समर में, शस्त्रों से भयभीत ।
लेकिन इस मुनिता के द्वारा, लिया आपने जीत ।।
धन्य आपका दिव्य पराक्रम, धन्य आपका त्याग ।
वह समाधिका अवसर पाता, हो जिसका सद्भाग ।।७६।।

देव अप्सराओं ने देखा, मधु का अनुपम दृश्य ।
हर्षित हो वह पुष्प चढ़ायें, करके नभ में नृत्य ।।
कर समाधि सह मरण हुआ वह, स्वर्ग लोक में देव ।
वहां बहुत से सुर मिल करके, करते उसकी सेव ।।७७।।

अपने परिणामों का ही फल, नित पाता है संसार ।
शुभ परिणामों से होता है, मानव का उद्धार ।।
ध्यान दीजिये इसीलिए नित, परिणामो की ओर ।
जीवन मे हो सहज सरलता, बनिये नहीं कठोर ।।७८।।

राम बन्धु ने मथुरा का ही, राज्य लिया था मांग ।
उसमे एक प्रबल कारण था, पूर्व जन्म का राग ।।
बार-बार उसने नगरी में, लिए बहुत अवतार ।
काम किया करते हैं मन में, पूर्व जन्म संस्कार ।।७९।।

इधर जीत कर मथुरा नगरी, रही सैन्य सब फूल ।
असुर गये पाताल लोक में, लेकर दिव्य त्रिशूल ।।
असुरों के मुख से मधु नृप का, जान सकल वृत्तान्त ।
परम मित्र के दुखद मरण से, होता हुआ अशान्त ।।८०।।

मध्य धरा पर आ पहुंचा वह, कर आंखो को लाल ।
विजयोत्सव लख सकल नगर में, बना और विकराल ।।
लगा सोचने इस नगरी के, हैं प्रसन्न सब लोग ।
नहीं सालता किसी मनुज को, मधु का तीव्र वियोग ।।८१।।

महा मूर्ख थे मथुरा वासी, हैं अत्यन्त कृतघ्न ।
हों ये व्यथित भयङ्कर, जिससे करूं इन्हें मैं विघ्न ।।
प्रसरित किया नगर में उसने, मरी विभीषण रोग ।
मरने लगे धड़ाधड़ पुरजन, तज जीवन का योग ।।८२।।

कोई मरता राज मार्ग में, कोई सदन के बीच ।
सभी व्याधि के लिए एक थे, महा ऊंच या नीच ।।
तभी वहां +सप्तर्षि पधारे, करने चातुर्मास ।
सभी रहे वट वृक्ष तले ही, भव से महा उदास ।।८३।।

मुनियों के तप के प्रभाव से, व्याधि गई सब भाग ।
उनके आने से पुरजन का, उदय हुआ सद्भाग्य ।।
चारण ऋद्धि के प्रभाव से, ले अन्यत्र आहार ।
गगन मार्ग में उन ऋषियों का, था बेरोक विहार ।।८४।।

लक्ष्मण सहित राम के शुभ दिन, राज कार्य में जाते ।
इन्द्र तुल्य पाकर वैभव को, धर्म न लेश भुलाते ।।
एक समय सोती थी सीता, सुख से राज सदन में ।
देखे पिछले प्रहर स्वप्न द्वय, उसने मन्द शयन में ।।८५।।

जागृत हो प्रभात की सारी, देह क्रियायें करके ।
लगी पूंछने उनका फल वह, राम निकट आ करके ।।
आज निशा के समय नाथ, जब मैं थी निद्रा सुख में ।
दो देखे अष्टापद मैंने, घुसते अपने मुख में ।।८६।।

गिरी तथा पुष्पक विमान से, मैं निज सुध-बुध खोकर ।
आई हूँ इस समय आप तट, मन में व्याकुल होकर ।।
उत्तर दें हे नाथ आप, इन स्वप्नों का क्या फल है ।
बार बार दुःशंकाओं से, होता चित्त विकल है ।।८७।।

+ उन ऋषियों के नाम इस प्रकार हैं - सुरमन्यु, श्रीनिलय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनपलालस और जयमित्र ।

दो अष्टापद प्रगट कह रहे, होंगे दो सुत अनुपम ।
देखा जो दुःस्वप्नवाद में, शान्त रहो मन में तुम ।।
प्रिये, न चिन्ता करो लेश भी, प्रभु में चित्त लगाओ ।
पूजा दान आदि कृत्यों से, उसको तुम बिसराओ ।।८८।।

उसी समय इस पृथ्वी तल पर, प्रिय वसन्त ऋतु आई ।
पुष्प और तरु वर पत्रों में, शोभा अतिशय छाई ।।
सुषमा का साम्राज्य छा गया, वन या उपवन में ।
उस वसन्त की सुन्दरता ने, भरा हर्ष जन-जन में ।।८९।।

उसी समय साकेत निवासी, राम निकट मिल आये ।
पर अपनी हृदयस्थ बात को, कहने में सकुचाये ।।
बोले तब श्रीराम सज्जनो, कहें आगमन कारण ।
मैं सब भांति तुम्हारी मन में, बात करूंगा धारण ।।९०।।

लगे देखने वदन परस्पर, वचन न निकले मुख से ।
बोले सबको अभयदान है, बात कहो तुम सुख से ।।
उनका मुखिया 'विजय' सेठ तब, बोला धीरे स्वर में ।
सीता को हर लंकापति ने रक्खा अपने घर में ।।९१।।

मार दशानन को फिर उसको, आप सदन ले आये ।
विज्ञजनों को इस प्रकार की, कभी न बात सुहाये ।।
दशरथ सुत श्री राम निपुण हैं, क्यों लाये वे घर में ।
प्रसरित है अपवाद आज यह, पुरवासी नर-नर में ।।९२।।

मानव तो कपि के समान है, देख बड़ों का वर्तन ।
बिन समझे उनके रहस्य को, करता स्वयं प्रवर्तन ।।
नृप हो जैसा प्रजा तथा हो, जग में सत्य वचन है ।
करने में अपवाद निरन्तर, तत्पर दुर्जन मन है ।।९३।।

दोष दृष्टि वाले दुर्जन जन, पर को दोष लगाते ।
पर अपने स्थूल दोष भी, नहीं लक्ष्य में आते ।।
करके यह अपराध भयंकर, पापी पाप कमाते ।
करके हृदय व्यथित मनुजों का, दुर्गति में वे जाते ।।९४।।

हम लोगों से अपश आपका, क्षणभर सुना न जाता ।
हम लोगों के लिए चित्त में, सु चरित्र हैं सीता ।।
किन्तु निन्दकों को निन्दा से, कैसे रोका जाये ।
सूझा जब न उपाय हमें कुछ, प्रभो ! आप तट आये ।।९५।।

जैसा उचित आप अब समझें, सत्वर वैसा कीजे ।
अपने अपने भवन गमन की, हमको आज्ञा दीजे ।।
कहकर ऐसे वचन राम से, लौट गये सब पुरजन ।
हुआ किन्तु मिथ्या प्रवाद से, व्याकुल श्रीरघुपति मन ।।९६।।

मानों सिर पर गिरा वज्र हो, व्यथित हुये वे भारी ।
प्राण वल्लभा के तजने की, की मन मे तैयारी ।।
यद्यपि सीता सती सर्वथा, यह मेरा मन मानें ।
किन्तु लोक इस वास्तविकता को, किस प्रकार से मानें ।।९७।।

सीता के ही लिए युद्ध कर, लंकापति को मारा ।
लाकर उसको प्रसर रहा है, अपयश घोर हमारा ।।
होता है प्रतिकूल दैव जब सुख में दुख आ जाता ।
होते ही अनुकूल भाग्य के, दुख मे सुखजन पाता ।।९८।।

रघुकुल का यश रहे विश्व में, इससे इसको छोड़ू ।
सीता के प्रति राग प्रबल जो, उस बन्धन को तोड़ू ।।
ऐसा किये बिना लोगों का, चित्त तुष्ट नही होगा ।
लेकिन ऐसी असद् क्रिया से, कष्ट भयंकर होगा ।।९९।।

पर मैं हूँ निरूपाय सर्वथा, यह ही करना होगा ।
मनुजों के मिथ्या प्रवाद से, मुझको डरना होगा ।।
जब मैं हूँ आदर्श विश्व का, करना यही उचित है ।
अपनी मान सदन में रखना, मुझे महा अनुचित है ।।१००।।

बार-बार सीता सम्बन्धी, करके मन में विशद विचार ।
कह डाला निज एक वचन में, लक्ष्मणको अपना निर्धार ।।
सुन सीता लोकापवाद को, बोल उठा लक्ष्मण तत्काल ।
आ पहुच निन्दक लोगों का, आज नगर मे अन्तिम काल ।।१०१।।

देव, मुझे आदेश आप दें, करूं दुर्जनों का उच्छेद ।
देकर मिथ्या दोष सती को, हाय ! कराते तुमसे खेद ।।
जनता की बातों में आकर, कर न सके कुछ योग्य विचार ।
इसीलिए उसके तजने का, किया आपने यह निर्धार ।।१०२।।

उचित न जचता है यह मुझको, पुनः कीजिए आप विचार ।
सीता के परित्याग बाद भी, तुम्हें कहेगा क्या संसार ? ।।
दो मुख है संसार सर्वथा, रोष-तोष से वह भरपूर ।
सत्य धर्म को आप निभायें, तजकर सती, न बनिये क्रूर ।।१०३।।

तज भावज को विषम समय मे, योग्य नही उपजाना शोक ।
छोड़े कभी न धर्म विज्ञजन, करें सत्यकी निन्दा लोक ।।
मुनियों तक को दोष लगाता, जगत नही इस में आश्चर्य ।
पर इससे होता न कलंकित, उनका यश रूपी ऐश्वर्य ।।१०४।।

गजको देख कुपित हो करके, रहें भोकते उस पर श्वान ।
निज गति से ही गमन करे वह, रहें भोंकते उस पर श्वान ।
लोगो की झूठी बातों पर, करे नही तिलभर विश्वास ।
कानाफूसी किया करे वे, पर प्रमाण नहिं उनके पास ।।१०५।।

बोले तब श्रीराम प्रेम से, वचन तुम्हारे परम-पवित्र ।
नही सूझता है उपाय कुछ, नर स्वभाव है महाविचित्र ।।
बुलवा त्वरित 'कृतान्तवक्र'को, दिया उसे निष्ठुर आदेश ।
दूर करो सीता को गृहसे, छोडो वहां न हों जन लेश ।।१०६।।

लगा बोलने लक्ष्मण सत्वर, खेद सहित कर उन्हे प्रणाम ।
दें न आप आदेश नाथ यह, है दुखप्रद इसका परिणाम ।।
सिया रहेगी निर्जन वन में, आप कहे किसके आधार ।
बिना वृक्षके हो सकता क्या, बेलाका वनमें उद्धार ।।१०७।।

बार बार वैसी बातें सुन, हुए राम कुछ उस पर क्रुध ।
श्रवण नहीं कर सकता अब मैं, एक वाक्य भी वचन विरुद्ध ।।
सीता का मिथ्यापवाद सुन, हृदय हो रहा है बहु त्रस्त ।
निन्दा से बचने का उत्तम, है उपाय परिहार प्रशस्त ।।१०८।।

हे सेनानायक, सीता की, मुझे नहीं अब क्षण भर चाह ।
भाग्य विवश कुछ भी हो वनमें, नहीं लेश इसकी परवाह ।।
मेरे देश, नगर, गृह में अब, नहीं चाहिए उसका वास ।
भले सहे वह पशुओं के सङ्ग, रहकर वनके नाना त्रास ।।१०९।।

करा तीर्थ क्षेत्रों के दर्शन, ले जाओ उसको उस ओर ।
सिंहनाद नामा अटवी है, वन्य प्राणियों से घनघोर ।।
छोड़ उसे आओ तुम वन में, मान सद्य मेरा आदेश ।
इस बारे में अन्य मनुजकी, सुन सकता नहिं बात विशेष ।।११०।।

रथारुढ़ कर राज सुता को, चला 'कृतांतवक्र' वन ओर ।
सीता प्रति इस समय रामका, हृदय हुआ है महाकठोर ।।
रोक गहन वन में उस रथ को, बहा दृगों से जलकी धार ।
सुना दिया सब कठिन हृदय हो, रघुपतिके मनका निर्धार ।।१११।।

दुष्टजनो के वचनों से ही, त्याग रहे हैं तुमको राम ।
मेरे लिए पूज्य हो तुम नित, करता हूँ मैं तुम्हे प्रणाम ।।
लक्ष्मण ने समझाया उनको, किन्तु न समझे वे श्रीराम ।
रखने से तुमको निज गृहमें, प्रजा उन्हें करती बदनाम ।।११२।।

हे स्वामिनि, पति ने निष्ठुर हो, दिया भवनसे तुम्हें निकाल ।
किन्तु धर्मका अवलम्बन ही, देगा इस सङ्कटको टाल ।।
माता, पिता, बन्धु, परिजनकी, करो न तुम मन में अभिलाष ।
अपने निर्मल आत्म-भवनमें, धरो एक प्रभुपर विश्वास ।।११३।।

हे माता ! आधार तुम्हें हैं, यहां प्राणियों का समुदाय ।
धर्माराधन बिना नहीं है, कष्ट मुक्तिका अन्य उपाय ।।
इन वचनों से सीता के सिर, मानो हुआ वज्र का पात ।
क्षण भर में हो गया दुःख से, उसका मूर्च्छित सारा गात ।।११४।।

हो सचेत बोली गद्गद् हो, बहा दृगो से जलकी धार ।
क्यों पतिने निर्भय होकरके, किया प्रिया पर तीव्र प्रहार ।।
किन्तु नाथ से जाकरके तुम, कह देना इतना सन्देश ।
हे स्वामिन् तजने का मेरा, करना मत तुम क्लेश विशेष ।।११५।।

✻ राम के प्रति सीता का सम्बोधन ✻

धर कर धैर्य प्रजा की रक्षा, करते रहना पुत्र समान ।
हो न किसी के प्रति अनुचित कुछ, नित प्रति रखना इसका ध्यान ।।
लौकिक निन्दा के भयसे प्रिय, तज न बैठना श्री जिन धर्म ।
होता है यह प्राप्त कभी ही, करनेसे लाखों शुभ कर्म ।।११६।।

सम्यग्दर्शन प्राण जीव का, विमुख न इससे होना नाथ ।
भवान्तरों के तीव्र दु:खों से, मुक्ति दिलाता इसका साथ ।।
भक्ति भाव से देते रहना, आप सदा सुजनों को दान ।
गुणीजनों को करते रहना, शुद्ध भाव द्वारा सन्मान ।।११७।।

देने में उपदेश आपको, मैं अबला हूँ अति मतिहीन ।
आप सर्व शास्त्रों के ज्ञाता, न्याय नीतिमें महा प्रवीण ।।
हुई पुन: मूर्च्छित वह अबला, मानों पड़ी रत्न की राशि ।
चेष्टा रहित देख सीताको, रथनायकको उपजा त्रास ।।११८।।

लगा सोचने पुन: पुन: वह, यह वन है भारी विकराल ।
निराधार इस महासती का, होगा क्या काननमें हाल ।।
छोड़ अकेली मैं भी सम्प्रति, निर्दय हो कर रहा प्रयाण ।
मुझे भासता है यों मनमें, छूटेंगे इसके भी प्राण ।।११९।।

एक ओर निर्दयता भीषण, एक ओर स्वामी आदेश ।
पड़ करके शङ्का भंवरों मे, पाता नही शान्ति का लेश ।।
पराधीनता ही दुर्गति है, लाख बार उसको धिक्कार ।
जिसके विवश दबाने पड़ते, न्यायोचित भी दिव्य विचार ।।१२०।।

कठ-पुतली से हैं सेवकजन, स्वामी उन्हें कराता नृत्य ।
करता नहीं अकार्य कौन-सा, पराधीनता वश यह भृत्य ।।
चाकर से कूकर उत्तम है, करे उदर पोषण स्वाधीन ।
वे मनुष्य पशु के समान हैं, जो स्वामी सन्मुख हो दीन ।।१२१।।

अधमाधम जीवन सेवक का, कोटि बार उसको धिक्कार ।
चिर संचित पापों के फलसे, मिलता है सेवक अवतार ।।
ज्यों कोई तजता सुबुद्धि को, वन में, त्यों सीता को छोड़ ।
सेना नायकने उस रथ को, लिया नगर पथ प्रति तब मोड़ ।।१२२।।

तब सीता असहाय अकेली, वन्य मृगी सम करे विलाप ।
पूर्व जन्ममें निर्दय होकर, किया कौन-सा ऐसा पाप ।।
जिसका उदय आज पल-पलमें, व्यथित करे मुझको अत्यन्त ।
मेरे इस अत्यन्त पापका, किस प्रकार अब होगा अन्त ।।१२३।।

कमल नयन हे राम आपका, इसमें नही जरा भी दोष ।
पूर्वोपार्जित पापोदय वश, हुई कलंकित मै निर्दोष ।।
अपने किये शुभाशुभ कर्मों का, जब आता है परिणाम ।
होते हैं उस समय जीवके, सुखके साधन भी दुखधाम ।।१२४।।

एक समय था पुण्योदय वश, राजभवन में मेरा वास ।
मिला मुझे पापोदयके वश, आज दु:खदायी वनवास ।।
स्वामी सङ्ग रह करके मैंने, वन में सहे अनेकों कष्ट ।
फिर भी टला नहीं है अबतक, हा ! दु:खदायक कर्म अनिष्ट ।।१२५।।

गुण समुद्र हे राम तजी क्यों ? लक्ष्मण तुम भी हुए कठोर ।
देखा क्यों न किसी ने पुरमें, मेरी विकट परिस्थिति ओर ।।
जनक और जननी ने मुझको, हाय ! सर्वथा दिया विसार ।
कैसे सहे आज यह अबला, गिरि समान भीषण दु:खभार ।।१२६।।

❑ ❑ ❑

द्वितीय सर्ग

एकाकिनी सीता विरह से, थी विपुल व्याकुल जहां ।
पुर पुण्डरीक पुरी नराधिप, भाग्यवश आया वहां ।।
गज के ग्रहण उद्देश्य से, पुर छोड के निकला सही ।
सिंहादि पशु विकराल थे, जन-शून्य थी वन की मही ।।१।।

सुन कर करुण सीता रुदन, मन में नृपति सोचे अरे !
जन हीन वन में कौन अबला, शोक से क्रन्दन करे ?
दस्यु समझ उसको सभी, भूषण निकाले देह से ।
कीजे न मेरा स्पर्श तन, ले जाइये सब स्नेह से ।।२।।

आभूषणों से अंश भी, हमको न कुछ भी काम है ।
हम जानना चाहें तुम्हारा-धाम है, क्या नाम है ?
नि:शंक तुम मुखसे कहो, किस हेतु कानन में रहो ।
तज राजसी वैभव सकल, वन यातनायें क्यों सहो ।।३।।

होता हमे हैं दु:ख अति, यो देख तुमको क्लेश में ।
विश्वास राखो चित्त मे, हूँ वज्रजंघ नरेश मैं ।।
हे बन्धु सुनकर क्या करोगे, दु:खभरी मेरी कथा ।
दु:खपूर्ण मेरी बात से, होगी तुम्हें मन में व्यथा ।।४।।

सीता मुझे कहता जगत्, दशरथ श्वसुर गुणधाम है ।
है भ्रात भामण्डल प्रबल, भर्तार मेरे राम है ।।
वनवास से लेकर कही-संक्षेप में सारी कथा ।
हा ! दुष्ट लोगों ने किया, अपवाद मेरा सर्वथा ।।५।।

संक्षेप में कह दुःख-कथा, सीता पुनः रोने लगी ।
अवलोक कर सन्मुख उसे, व्याकुल अधिक होने लगी ।।
हे, हे बहन, धीरज धरो, भूलो हृदय से शोक को ।
हा ! रोक सकता कौन है, दुर्बुद्धि धारक लोक को ।।६।।

होगी प्रगट जब सत्यता, रघुवर बुलायेंगे तुम्हें ।
निज भूल को स्वीकार कर, सत्वर मनायेंगे तुम्हें ।।
तुम पुण्डरीकपुरी चलो, रहना वहां सुख से सदा ।
मैं बन्धु भामण्डल सदृश हूँ, बन्धु तेरा सर्वदा ।।७।।

मेरे सदन को हे सती, अपना सदन ही मान के ।
तुम धर्म आराधन करो, गुण गानकर भगवान के ।।
शङ्का करो मत गर्भ की, सब कुछ वहां होगा सही ।
माना तुम्हें मैंने बहन, अब दुःख कुछ होगा नहीं ।।८।।

बन्धो ! तुम्हारा धर्म प्रति, वात्सल्य अतिशय देख के ।
पाकर सहायक बन्धु को, सद्भाग्य अपना लेख के ।।
हो जो सहायक दुःख में, वह नर जगत् में धन्य है ।
वह देव है, धर्मिष्ठ है, उस सा न कोई अन्य है ।।९।।

वाचाल बनकर के बहुत, जन धर्म की बातें करें ।
अपने कथन को किन्तु वे - मन से कभी नहीं आचरे ।।
वात्सल्य गुणधारी मनुज, अवगुण प्रकट करते नहीं ।
संसार कुछ कहता रहे, अपवाद से डरते नहीं ।।१०।।

आई नगरी मे बैठ कर के, पालकी में जानकी ।
साक्षात् उसको मानते सब, मूर्ति है कल्याणी की ।।
रहती हुई सबसे अलग वह, राज्य के प्रासाद में ।
जाता समय उसका सभी, जिनराज की ही याद में ।।११।।

वह धर्म को ही विश्व में, सर्वस्व अपना मानती ।
हित है इसीसे सर्वथा, त्रय-योग से यों जानती ।।
श्री राम के परित्याग से, होती उसे यद्यपि व्यथा ।
पर भूलती क्षण मे उसे, कर धर्म की अनुपम कथा ।।१२।।

दुखित हृदय सीता को तजकर, सेनापति पुर आया ।
उसका सब सन्देश राम को, रोते हुए सुनाया ।।
देव, आप आदेश मानकर, छोड़ी सीता वन में ।
उस वन की करालता से भी, डरता हूँ मैं मन में ।।१३।।

जो विकराल चित्र लख कर भी, डर जाती है सीता ।
श्वापद, सिंह, क्रूर पशुओं से, क्यों न हो भयभीता ।।
जो जो कहा सती ने उससे, वह सब उन्हें सुनाया ।
सुनकर के सन्देश प्रिया का, जी उनका भर आया ।।१४।।

दुख विचार कर गिरे धरा पर, क्षण में मूर्च्छित होकर ।
विज्ञ हृदय पुष्पों-सा कोमल, बनें कठिन तर पत्थर ।।
जिस सीता के लिए राम ने, मारा वीर दशानन ।
उसी सती को अहो ! छोड़ते, लगा नहीं उनको क्षण ।।१५।।

डरता है जनता प्रवाद से, लोकोत्तर सज्जन का मान ।
है निन्दा प्रिय की अनादि से, प्राय: सारे ही जगजन ।।
हो सचेष्ट वे बोल उठे झट प्राण वल्लभे सीते ।
क्या अनर्थ कर डाला मैंने, अपने जीते जीते ।।१६।।

प्रिये, मान कर मुझको अपना, बोलो अपने मुख से ।
पीड़ित हूँ क्षण क्षण अतिशय ही, आज विरह के दु:ख से ।।
लोगों के कहने में आकर, क्या अनर्थ कर डाला ।
भेज तीर्थ यात्रा के निमसे, घर से तुम्हें निकाला ।।१७।।

तेरे बिन हे सती हो रहा, नर होकर भी कायर ।
एक बार मुझको दर्शन दे, सत्वर पुर में आकर ।।
कांटों से आपूर्ण मही में, कैसे पांव धरेगी ।
चिन्ता होती है असमय में, तन का त्याग करेगी ।।१८।।

सेनापते, आपने उसको, सचमुच छोड़ा वन में ।
अथवा मुझसे गुप्त उसे, रक्खा है किसी भवन में ।।
बोला सेनानाथ प्रेम से, रघुवर धीरज धरिये ।
पुन: मिलेगी सीता सुख से, शोक न मन में करिये ।।१९।।

किये कर्म निज पूर्व जन्म के, नाथ उदय में आते ।
निर्विकार निर्दोषी जन भी, तब नाना दुख पाते ।।
आना होता कर्म उदय में, जिस पल जग में जैसा ।
आकर के स्वयमेव अचानक, कारण मिलता वैसा ।।२०।।

अन्य प्रियाओं के होते भी सीता बिन वे व्याकुल ।
लक्ष्मण भी उस समाचार से, दुखित हुआ था पल पल ।।
शोक-सिन्धु से डूब गये थे, पुरजन, परिजन सारे ।
ज्ञान विना इस दुःख-सागर से, उनको कौन निकारे ? ।।२१।।

जिसकी कभी कल्पना भी तो, हो नहि सके हृदय से ।
वही दृश्य लखना पड़ता है, मानव को कर्मोदय से ।।
छिन्न भिन्न कर डाले पुल को, तीव्र सलिल की धारा ।
कर्मोदय की तीव्र धार में, बहता यह जग सारा ।।२२।।

शनैः शनैः सीता के सुख से, पूर्ण हो गये जब नव मास ।
श्रावण शुक्ल पूर्णिमाके दिन, नभमें शशिका पूर्ण प्रकाश ।।
जन्म दिया दो पुत्रों को तब, मानो वे हैं इन्द्र प्रतीन्द्र ।
विश्वनभो मण्डल के या थे, कोई अनुपम रवि, शुभचन्द्र ।।२३।।

पुण्डरीकपुर में जन्मोत्सव, किया गया सानन्द अपार ।
दीन, भिक्षुकों नें धन पाया, आ आके भूपति के द्वार ।।
बजने लगे नगर में बाजे, ललनायें गायें शुभ गीत ।
वज्रजंघ ने भी प्रमुदित हो, जन्म समय की सब ही रीत ।।२४।।

नाम अनङ्गलवण पहले का, दूजा था मदनांकुश वीर ।
काम तुल्य वे रूपवान थे, सागर-सम अतिशय गम्भीर ।।
एक समय भूपाल भवन में, आये श्री क्षुल्लक 'सिद्धार्थ' ।
अल्प परिग्रह अणुव्रत धारी, तथा सर्व ज्ञाता शास्त्रार्थ ।।२५।।

सीता ने दे दान भक्ति से, अपने को माना कृतकृत्य ।
वे निमित्त ज्ञाता विद्वदवर, बोले होकर प्रमुदित चित्त ।।
बहन करो चिन्ता मत कोई, ये दोनों सुत देव कुमार ।
दिखा शक्ति वे शीघ्र करेंगे, दुःख में से तेरा उद्धार ।।२६।।

मैं गृहस्थ क्षुल्लक व्रतधारी, जग कार्यों से सदा विरक्त ।
किन्तु देख धर्मिष्ठ जनों को, होता मन उनके प्रति रक्त ।।
अल्प समय में उन पुत्रों को, करा दिया शास्त्रों का ज्ञान ।
शस्त्र शास्त्र में हुए निपुण वे, रहा न कुछ बाकी विज्ञान ।।२७।।

गुरु के अल्प परिश्रम द्वारा, बनता योग्य शिष्य विद्वान ।
गुरु-श्रम सफल नहीं होता है, जहां बुद्धि पाषाण समान ।।
श्री बलभद्र और नारायण, रहें अयोध्या में जिस भांति ।
करे वास पुण्डरीक पुरी में, लवण और अंकुश उस भांति ।।२८।।

देख कुमारों की परिणय वय, वज्रजंघ नृप करे विचार ।
करूं विवाह कुमारों का मैं, हो जिससे सुखमय संसार ।।
आत्म-सुता दी लवण वीर को, अंकुशार्थ को कन्या माँग ।
किन्तु आत्मजाके देने में, दिखलाया नहीं अपना राग ।।२९।।

बोला 'प्रभु' कुपित होकर के, दूत नहीं तुमको कुछ ज्ञात ।
कैसे उसको आत्म-सुता दूं, जिसका वंश सतत अज्ञात ।।
कुल, वय, शील, रूप, तन, विद्या, और सदृशता बल शुभदेश ।
जिन नर में ये सब गुण होते, वे वरपद के योग्य विशेष ।।३०।।

प्रथम तुम्हारे उस कुमार का, हमें नहीं कुल तक भी ज्ञात ।
क्यों नहीं आती लाज तुम्हे यों, अपने मुखसे करते बात ।।
नाथ तुम्हारा न्याय नीति से, जान पड़े मुझको प्रतिकूल ।
सुता-याचना करके उसने, कर डाली है भारी भूल ।।३१।।

इस उत्तर से वज्रजंघ ने, समझा दुखदायक अपमान ।
वीर कुमारों को लेकर सङ्ग, पृथु नृपप्रति कर दिया प्रयाण ।।
वज्रजंघ ने कोप युक्त हो, दिये उजाड विपक्षी ग्राम ।
इससे हुआ त्वरित दोनों में, डटकरके भीषण संग्राम ।।३२।।

छिन्न भिन्न हो गये शत्रुगण, किया पलायन पुर की ओर ।
तब कुमार बोले वाणी यों, वीरोचित अत्यन्त कठोर ।।
खड़े रहो, क्यों पीठ दिखाते, तुम तो अहो ! बड़े कुलवान ।
बता रहे कुल, शील हमारा, तुम्हें हमारे भीषण बाण ।।३३।।

खड़ा रहा पृथु दीन बदन हो, प्रेम सहित दोनों कर जोड़ ।
सदा आप कुलवान धीर हैं, कहां हमारी तुमसे होड़ ।।
जान सका मैं नहीं आज तक, अहो ! तुम्हारा दिव्य प्रभाव ।
कर देता प्रगटित कुलीनता, मानवका ही विमल स्वभाव ।।३४।।

पृथु को नम्र देख उन सबका, शांत हो गया सारा क्रोध ।
विज्ञ मनुज उस भूमण्डल में, नहीं करते हैं वैर विरोध ।।
ले जा अपने रम्य नगर में, की अंकुश को सुता प्रदान ।
उसके साथ और भी उसने, दिया बहुत-सा सर सामान ।।३५।।

❑ ❑ ❑

एक समय वे नारद ऋषिवर, पुनः अयोध्या आये ।
सीता के परित्याग श्रवण से, मनमें अति अकुलाये ।।
अब वे इधर-उधर फिर करके, करें सतत अन्वेषण ।
आ पहुंचे वे अहो ! अचानक, पुण्डरीक नगरी बन ।।३६।।

उस वन में दोनों कुमार थे, क्रीड़ाओं में तत्पर ।
नारद को लख बड़ी भक्तिसे, नमन किया अति झुककर ।।
विनयी जान दिया मुनिवरने, शुभाशीष अति सुखकर ।
राम और लक्ष्मण से पुत्रो ! हो सुख सम्पत्ति बढ़कर ।।३७।।

सुनकर नाम अचानक उनका, बोले वीर वहां पर ।
कौन राम लक्ष्मण हैं जग में, रहते और कहां पर ?
और कौन-सा कुल है उनका, गुण कितने हैं उन में ।
करके श्रवण अपूर्व नाम यह, विस्मित हैं हम मनमें ।।३८।।

नारद कहे-सुनो हे पुत्रो, उनमें शौर्य अपरिमित ।
भारत में वे बन्धु युगल हैं, सूर्य चन्द्र सम शोभित ।।
कही मुनि ने अथ से इति तक, कथा पुरानी सारी ।
उन्हीं राम की प्राणवल्लभा, जो है जननि तुम्हारी ।।३९।।

पापोदय वश दुष्ट जनों ने, किया कलंकित उसको ।
तजा राम ने उसको वन में, स्वयं बचाने यश को ।।
कहकर यों संक्षिप्त चरित वे, शांत हो गये सत्वर ।
बोल उठा अन्कुश क्रोधित हो, किया काम यह दुखकर ।।४०।।

अन्य उपायों के द्वारा भी, दोष निवारा जाता ।
दुखित किया माता को हां हां, बन करके भी भ्राता ।।
नारि मात्र का किया राम ने, क्यों अपराध भयंकर ।
इसकी शुद्धि करूँगा अब मैं, रण में उनसे लड़कर ।।४१।।

कहें आप हे मुनिवर हमसे, कितनी दूर अयोध्या ।
देंगे दण्ड आज हम उनको, हम भी जग में योधा ।।
हे मातुल मत देर करो कुछ, सेना हमको दीजे ।
हम लोगों के इस विचार में, कुछ अवरोध न कीजे ।।४२।।

कैसे हैं वे शूरवीर नृप, देखेंगे हम जाकर ।
प्रस्तुत देख युद्ध को उनको, सीता रोई दुखकर ।।
बोले वे कुमार माता से, दुखी न हो, हे माता ! ।
दुखी देखकर सम्प्रति तुमको, उपजे हमे असाता ।।४३।।

अल्प कष्ट भी तुमको जो दे, मरण समझिये उसका ।
निःसंकोच भाव से हमसे, कहिये हेतु रुदन का ।।
हे पुत्रो, मुझको न किसी ने, उपजाया दुख भारी ।
करती हूँ मै रुदन तुम्हारी, देख समर तैयारी ।।४४।।

जनक तुम्हारे रामचन्द्र हैं, लक्ष्मण उनका भाई ।
पिता-पुत्र के युद्ध वृत्त से, रोती हूँ घबराई ।।
गुरुजन के ऐसे विरोध से, होगा अयश तुम्हारा ।
रहो यहां ही शांत चित्त से, मानो वचन हमारा ।।४५।।

अथवा मिलो जनक से जाकर, सविनय उन्हें नमन कर ।
बोले वीर पुत्र माता से, यह सब कथन अरूचिकर ।।
हे मातः हम पुत्र तुम्हारे, करें दीनता कैसे ।
जानेंगे श्रीराम युद्ध में, उत्तम सुत हों कैसे ।।४६।।

नही मृत्यु का डर है हमको, अनुचित है कायरता ।
सच्चा शूरवीर अभिमानी, नही किसीसे डरता ।।
करके माया विकट पिताने, तेरा हृदय दुखाया ।
लक्ष्मण आदि विज्ञ पुरुषों ने, क्यों नहिं सुपथ बताया ।।४७।।

मात: मेरे सुयश कार्य में, आप विघ्न मत कीजे ।
फलीभूत हो कार्य हमारा, आशीष ऐसा दीजे ।।
जीत राम को पुन: करेंगे, सत्वर तेरे दर्शन ।
आप व्यर्थ की आशंका से, व्यथित करो मत निज मन ।।४८।।

ले विशाल सेना वीरों ने, पुण्डरीक से किया प्रयाण ।
शूरवीर प्रमुदित होते थे, कायर हृदय हुए भयवान ।।
वे कुमार उत्साह सहित चल, आये त्वरित अयोध्या पास ।
सरयू सरित किनारे सबने, निर्भयता से किया निवास ।।४९।।

प्रतिपक्षी आगमन श्रवणकर, विस्मित सब ही हुए महान ।
बोले राम शीघ्र लक्ष्मण से, आया कौन गुमाने प्राण ।।
ले ले सैन्य शीघ्र आ पहुंचा, वहां खेचरो का समुदाय ।
भामण्डल को व्यथित देखकर, नारदजी बोले निरुपाय ।।५०।।

हे भामण्डल, बहन तुम्हारी, सीता के हैं ये दो पुत्र ।
पुत्र-तुल्य समझो तुम इनको, नहीं राम के है ये शत्रु ।।
सीता से जा मिला बन्धु वह, मुदित हुआ मन मे अत्यन्त ।
बहन ! तुम्हारे दीर्घ कष्ट का, क्षणभर में अब होगा अन्त ।।५१।।

असमय के इस व्यर्थ युद्ध से, है न कुमारों का कल्याण ।
रघुपति सम्प्रति भरतभूमिमें, है देवो से भी बलवान ।।
यदि विधिवश इस प्रबल समरमे, हुआ किसीका दु:खद अनिष्ट ।
होगा उस घटना से हमको, अभ्यन्तरमे अतिशय कष्ट ।।५२।।

भामण्डल ने लिया बहन को, निज विमान मे अपने साथ ।
देख सकेगी अहो गगनसे, वह अपने पुत्रों के हाथ ।।
भामण्डल ने निज समूह में, बतलाया ये हैं न अमित्र ।
निश्चय से जानेगे सब ही, ये हैं राम-भद्र के पुत्र ।।५३।।

राम और लक्ष्मण से तत्क्षण, गुप्त रहा यह सारा भेद ।
इससे सत्वर हुए समुद्यत, करने को रिपुका उच्छेद ।।
आये ज्योंही राम समर में, लवने दिया धनुष को तोड़ ।
ध्वजा छेद डाली फिर उनकी, निशितबाण उनपर बहु छोड़ ।।५४।।

मान इसे अपमान राम निज, लव पर हुए बहुत ही क्रुद्ध ।
पिता पुत्र दोनों भिड़कर ही, करने लगे भयङ्कर युद्ध ।।
इसी भांति नारायण से भी, अंकुश करता था संग्राम ।
रण-चातुर्य देखने उनका, सुर भी आये तज निजधाम ।।५५।।

नहीं जानते राम और हरि, यह है अपना ही परिवार ।
शत्रु समझकर उन पुत्रों पर, करते दोनों तीव्र प्रहार ।।
किन्तु हमारे ये गुरुजन हैं, इस प्रकार था उनको ज्ञान ।
रहे चलाते शस्त्र इसी से, रहे सुरक्षित उनका मान ।।५६।।

जो जो शस्त्र चलाते रघुपति, लवण कर रहा उनको व्यर्थ ।
अंकुश पर हरि-हथियारों का, चला नहीं कुछ भी सामर्थ ।।
तब वे दोनों लगे सोचने, हैं बलवान विपक्षी वृन्द ।
समर-भूमि में उतर पडे हैं, मानों स्वर्ग धरा से इन्द्र ।।५७।।

अंकुश के हथियार घात से, लगे घूमने लक्ष्मण नेत्र ।
लेकर उन्हे 'विराधित' रथ में, चला नगर प्रति तज रण क्षेत्र ।।
हो सचेत बोले वे लक्ष्मण, वीर विराधित रथ को फेर ।
क्या विचार करके तुम मन में, लगा रहे हो इतनी देर ? ।।५८।।

शूरवीर तो समर क्षेत्र में, कर देते प्राणों का त्याग ।
किन्तु उपार्जन करें नही वे, अयश, समर से इस विधि भाग ।।
पीठ दिखाना निन्द्य कार्य है, कैसे कर बैठे यह कार्य ।
रहे लोक में कीर्ति सजीवन, वही कृत्य करते हैं आर्य ।।५९।।

सौमित्री ने कोपयुक्त हो, अंकुश पर फेंका निज चक्र ।
वह आया वापस हरि करमें, होकर के क्षणभर विधिवक्र ।।
देख दृश्य यह रण सुभटों को, उपजा मन आश्चर्य महान ।
आये हैं इस समय कहां से, ये दोनों कुमार बलवान् ? ।।६०।।

कोटि-शिला लेकर लक्ष्मण तब, हुए मारने को तैयार ।
नारद ने आ कहा वहां यों, यह है तेरा ही परिवार ।।
सीता के ये वीर पुत्र हैं, चले न इन पर कोई शस्त्र ।
सुनते ही ये वचन वेग से, लक्ष्मण सत्वर हुए निरस्त्र ।।६१।।

अपने सारे शस्त्र फेंक कर, गये कुमारों सन्निधि राम ।
शिष्य कुमारोंने जा सन्मुख, पद-कमलों में किया प्रणाम ।।
लगा सुतों को निज छाती से, प्रेम विवश यों करें विलाप ।
सीता को तजकर के वन में, किया भयङ्कर मैंने पाप ।।६२।।

हे पुत्रों, तुम पुण्यवान् हो, हुआ भाग्यवश आज मिलाप ।
निधि-समान पाकरके तुमको, शान्त मानसिक है सन्ताप ।।
भूल नहीं सकता मैं जग में, वज्रजंघ नृप का उपकार ।
पालन-पोषण किया आजतक, देकर के तुमको आधार ।।६३।।

यदि रण में होता अनिष्ट कुछ, छा जाता दोनों में शोक ।
पिता-पुत्रके उस कुकर्मकी, जीभर निन्दा करता लोक ।।
उत्सुकतापूर्वक क्षणभर में, मिला सकल परिवार सप्रीत ।
उन पुत्रों ने सकल निभायी, अपने उत्तम कुल की रीति ।।६४।।

नहीं भूलती शिष्ट पद्धति, उच्च कुली, विनयी सन्मान ।
रहे सदा उनके हृदय में, गुरुओं प्रति आदर सन्तान ।।
वीर कुमारों का आदर युत, हुआ नगर में भव्य प्रवेश ।
दर्शनार्थ पथ पर मनुजों ने, देखे दोनों पुत्र नरेश ।।६५।।

❑ ❑ ❑

हनुमान, सुग्रीव, विभीषण-आदि राम तट आये ।
भक्ति सहित उनके चरणो में, निज-निज शीश झुकाये ।।
बोले वे श्री रामचन्द्र से, बात हमारी सुनिये ।
सीता के प्रति देव आप अब, करुणालु कुछ बनिये ।।६६।।

लाने का आदेश उसे अब, सत्वर हमको दीजे ।
शीलवती, निर्दोष सती प्रति, क्यों नहिं हृदय पसीजे ?
दूर किया उसको जब घर से, कैसे आज बुलाऊं ?
नगर-जनों को किस उपाय से, मैं प्रतीति उपजाऊं ।।६७।।

मैं तो इसको सती मानता, इसमें लेश न संशय ।
दूर करूं कैसे जन शङ्का, तुम्हीं कहो निःसंशय ।।
देकर हमें परीक्षा अपनी, आये राज भवन में ।
ऐसा किये बिना उसका पग, हो नहिं राज-सदन में ।।६८।।

देव आपकी आज्ञा का ही, होगा सब विधि पालन ।
निर्विकार, निर्दोष मैथिली, अधुना हम सबके मन ।।
दूत भेज कर देश-देश के, भूपति सर्व बुलाये ।
यह कौतुक विलोकने पुर में, अन्य मनुज भी आये ।।६९।।

सती-परीक्षा बात वेग से, फैल गई पुर-भर में ।
राम कहेंगे सीता से क्या ? बात सभी के उर में ।।
भामण्डल सुग्रीव आदि मिल, पुण्डरीक पुर आये ।
व्यथित देख सीता को उनके, हृदय कमल मुरझाये ।।७०।।

बैठी थी उस समय जानकी, राज-सदन आंगन में ।
दीर्घकाल की चिन्ता से ही, व्यापी कृशता तन में ।।
कर प्रणाम उसके चरणों में, बोले वे सब सादर ।
चल कर के हे देव कीजिये, पावन अब अपना घर ।।७१।।

करता जो अपवाद तुम्हारा, पापी है वह जग में ।
वह रोड़े अटकाता रहता, अपने हित के मग में ।।
सतियों का अपवाद करे जो, हो वह दुर्गति गामी ।
सुख पाता है सदा लोक में, मानव शुभ परिणामी ।।७२।।

आई सीता राज सभा में, किया सभी ने वन्दन ।
अतिशय व्यथित हुए निज मन में, सोचें यों रघुनन्दन ।।
छोड़ा इसको गहन विपिन में, फिर भी यह यों आई ।
आते हुए आज मम सन्मुख, लज्जा सर्व गुमाई ।।७३।।

मैंने तजी, किन्तु यह मुझसे, किंचित् राग न छोड़े ।
आर्य संस्कृति पति बिना स्त्री, पर से प्रीति न जोड़े ।।
देख राम की उदासीनता, मन में, यही विचारा ।
अब भी है जीवित जगती में, हां ! दुर्भाग्य हमारा ।।७४।।

मेरे दुःसह पति वियोग का, अन्त न अब तक आया ।
नहीं सुहाती हाय ! नाथ को, मेरे तन की छाया ।।
खडी हुई थी राम निकट जब, सीता बहु चिन्तातुर ।
बोल उठे लोकापवाद से, रामचन्द्र क्रोधातुर ।।७५।।

दूर हटो तुम यहां निकट से, आ न दृष्टि के गोचर ।
राज-सभा में तुझे देख कर, होता कष्ट भयङ्कर ।।
दशमुख गृह तू रही बहुत दिन, भूल हुई है मेरी ।
त्वरित छोड़ने में, मैंने की, घर मे रख कर देरी ।।७६।।

कहे जानकी नाथ आपने, उचितानुचित न विचारा ।
किया गया अन्याय भयङ्कर, मेरे साथ तुम्हारा ।।
गर्भवती मुझको उपजी थी, इच्छा जिन दर्शन की ।
प्रगट न की थी किन्तु कुटिलता, तुमने अपने मन की ।।७७।।

जिन यात्रा का नाम बता कर, वन में मुझे छुड़ाया ।
क्या होता परभव में मेरा, यदि छूटती काया ।।
यदि तजने का ही निश्चय था, तजते मुझसे कह कर ।
करती मैं कल्याण सर्वथा, सत्संगति में रहकर ।।७८।।

निर्दय हृदय आपने मुझको, अब तक नहिं पहचाना ।
नाथ आपके साथ सहे हैं, दुःख भयङ्कर नाना ।।
मैने निज कर्तव्य निभाया, अपने इस जीवन में ।
किन्तु आपने उसे भुलाया, तज-करके यों वन मे ।।७९।।

जो कुछ आप कहें करने को, मैं हूँ सम्प्रति तत्पर ।
स्वामी के वचनों का मैंने, किया कभी न निरादर ।।
बोले तब श्रीराम विमल है, सुन्दर शील तुम्हारा ।
लोगों को विश्वास सर्वथा, हो किस तरह हमारा ? ।।८०।।

दिखला करके चमत्कार कुछ, सत्य प्रतीत कराओ ।
प्रसरित इस अपवाद तिमिर को, सत्वर आज हटाओ ।।
कहे आप जो कुछ करने, मैं हूँ स्वामिन् अब उद्यत ।
गुप्त नही रह सकता जग में, लाख छिपाये भी सत ।।८१।।

कहे परीक्षा दूं मैं अपनी, काल कूट विष पीकर ।
या कराल फणिधर को कर से, सबके सन्मुख छूकर ।।
करू प्रवेश अग्नि ज्वाला में, देखे जगत् सच्चाई ।
अग्निकुण्ड पड़कर दिखलाऊं, इसमें नही बुराई ।।८२।।

हर्षित हृदय कहा सीता ने, बात प्रमाण तुम्हारी ।
सत्यासत्य शीघ्र जानेगी, प्रजा नगर की सारी ।।
लगे सोचने नारद मने में, क्या विश्वास अनल का ।
नहीं सती के मन में हैं भय, सचमुच घोर मरणका ।।८३।।

हाथों को ऊंचा कर अपने, श्री सिद्धार्थ पुकारे ।
दी आज्ञा इस समय आपने, राजन् बिना विचारे ।।
सीता शील जगत विश्रुत है, सुनता अब तक आया ।
अपने सत्य शील के बल पर, राम वचन अपनाया ।।८४।।

कहा राम ने कहा हुआ ही, उसको करना होगा ।
देकर दिव्य परीक्षा अपनी, अपयश हरना होगा ।।
आज सती के सत्य शील का, होगा सबको निर्णय ।
शीलवती है स्वयं मैथिली, इससे मन मे निर्भय ।।८५।।

तीन शतक कर लम्बी चौड़ी, वापी एक हुआ तैयार ।
शुष्क काष्ठ मलयागिरि चन्दन, भरा उसीमे अपरम्पार ।।
हुई प्रज्वलित ज्वाला उसमें, लपटे छूती थी आकाश ।
तीव्र उष्णता के कारण से, कोई न जा सकता था पास ।।८६।।

है इस ही साकेतपुरी मे, राय महेद्रोदय उद्यान ।
धीर 'सकलभूषण' मुनिवरको, प्राप्त हुआथा अन्तिम ज्ञान ।।
एक राक्षसी ने उन मुनि को, दिया बैर-वश कष्ट विशेष ।
पर्वत सम अडोल रह करके, जीत लिया था मोह अशेष ।।८७।।

वन्दनार्थ आते थे सुरगण, देख अग्नि का कुण्ड विशाल ।
'मेघकेतु' ने कहा इन्द्र से, जान सती का सङ्कट काल ।।
हे देवेन्द्र सती सीता का, देख आप सकते क्या कष्ट ?
बोला इन्द्र दूर तुम करना, सीता का विकराल अनिष्ट ।।८८।।

मै मुनि के दर्शनार्थ जा रहा, करना इसमे तनिक न भूल ।
होते है धार्मिक पुरुष ही, धर्मी मनुजों के अनुकूल ।।
देख प्रज्वलित अग्नि-कुण्ड की, व्याकुल रघुपति करें विचार ।
नही अनल विश्वास लेश भी, पुष्प-तुल्य सीता सुकुमार ।।८९।।

क्या होगा जानें भविष्य में, सब प्रकार है विधि बलवान ।
दिया निठुर आदेश भूल से, रहकर हा ! फल से अज्ञान ।।
इसके साथ मुझे रुचिकर है, क्रूर प्राणियों का सहवास ।
इसके बिना नहीं रुचिकर है, राज-भवन का दिव्य निवास ।।९०।।

आप्तागम गुरु की सच्ची है, सब प्रकार श्रद्धा बलवान ।
है हार्दिक अभिलाष यही हो, करें आप्त इसका कल्याण ।।
इस नारी ने विषम बनों में, दुख में सतत बटाया हाथ ।
मुझे दुःख है घोर इसी का, मैं कठोर हूँ इसके साथ ।।९१।।

देख जानकी के साहस को, दुखित हुए नर पत्थर चित्त ।
निन्दक भी उसके साहस से, लगे मानने उसे पवित्र ।।
पूर्ण प्रज्वलित देख अग्नि को, उठी जानकी ले प्रभु नाम ।
तन-मन और वचन से स्वामिन्, बार बार हो तुम्हे प्रणाम ।।९२।।

यदि मैने अपने पति को तज, की हो अन्य पुरुष की चाह ।
तो हे अनल, भस्म कर देना, करना मत तनकी परवाह ।।
जो कुछ मैं कह रही यहां पर, यदि हो मेरा वचन असत्य ।
कर लेना उदरस्थ मुझे तुम, रहे जगत में जिससे सत्य ।।९३।।

यदि मैं पतिव्रता नारी हूँ, और रहा है शील अखण्ड ।
दिखला दो तो आज विश्व को, यह कलंक कोरा पाखण्ड ।।
मेरे दिव्य हृदय-मन्दिर में, रहे विराजित सदा जिनेश ।
धैर्यु युक्त उस महासती ने, किया अग्निमें त्वरित प्रवेश ।।९४।।

अग्निकुण्ड बन गया सरोवर, प्रगटा वहां सपंकज नीर ।
प्रगटित हुआ सत्य इस जगमें, मिटी और सीताकी पीर ।।
शनैः शनैः वह नीर कुण्डका, लगा फैलने चारों ओर ।
बढ़ता उसे देख निःसंशय, मचा वहां मनुजों में शोर ।।९५।।

प्रथम सलिल घुटनों तक आया, और लिया फिर कटि को घेर ।
आते हुये उसे छाती तक, लगी नहीं पलभर भी देर ।।
लगे सोचने घबराकर जन, होगा क्या अब अपना हाल ।
देख नीरके तीव्र वेग को, बोले आ पहुंचा है काल ।।९६।।

ऊंचा कर निज-निज वस्त्रों को, दुख से करने लगे पुकार ।
अरे ! अचानक आकरके यह, पड़ा नगर पर दुखका भार ।।
हे कल्याण रूपिणी देवी, दया करो तुम हम पर आज ।
इस अपार सङ्कट से सम्प्रति, विह्वल सब नगर-समाज ।।९७।।

सीता के कहने से तत्क्षण, स्तब्ध हुआ सब नीर प्रवाह ।
स्वच्छ तरङ्ग करों के द्वारा, स्पर्श सती पदको सोत्साह ।।
विकसित हुए कमल उस जल में, भ्रमर करें उन पर गुञ्जार ।
पहुंचे दोनों पुत्र सती तट, करके सत्वर जलको पार ।।९८।।

धन्य, धन्य शब्दों से सारा, गूंज उठा क्षण में आकाश ।
सीता सती सत्य जगती में, उपजा तब सबको विश्वास ।।
कहने लगे बहुतजन मुख से, दिया व्यर्थ में हमने दोष ।
अग्नि परीक्षा सिद्ध कर रही, यह सीता बिलकुल निर्दोष ।।९९।।

कमल-वासिनी लक्ष्मी के सम, देख वहां पर उसको राम ।
आत्म-दोष की क्षमा मांगते, बोले वचन मधुर अभिराम ।।
कनक-मूर्तिके सदृश लोकमें, हुई अग्नि से तू अति शुद्ध ।
हुआ उन्हें विश्वास तुम्हारा, जो थे तुमसे महाविरुद्ध ।।१००।।

हो प्रसन्न तुम रहो सदन में, पुनः न ऐसी होगी भूल ।
होगा सब ही कार्य हमारा, तेरी इच्छा के अनुकूल ।।
कहे जानकी राजन् इसमें, नही आपकी तिलभर भूल ।
दुःख आते स्वयमेव अचानक, होता है जब विधि प्रतिकूल ।।१०१।।

नही रोष है मुझे किसी पर, तथा आप मत कीजे खेद ।
करूं प्रयत्न शीघ्र अब ऐसा, हो जिससे भव दुःख उच्छेद ।।
स्वर्ग-समान राज-सुख भोगे, रहकर नाथ आपके सङ्ग ।
उतर गया है ऐहिक सुखका, मेरे मनमें सबका रङ्ग ।।१०२।।

घूम-घूमकर इस भव-वनमें, पाये मैंने अगणित कष्ट ।
इन कष्टों का सद्य अन्त हो, यही मुझे है मनसे इष्ट ।।
लिए उखाड़ त्वरित सीता ने, अपने मस्तक के मृदु केश ।
जाके 'पृथिवीमती' साध्वि तट, धरा आर्यिकाका शुभ वेश ।।१०३।।

अनुजों सहित आप हलधर भी, गये 'सकल भूषण' के पास ।
अभय घोष मुनि लगे पूछने, केवलीपर रखकर विश्वास ।।
क्या है भगवन् आत्मतत्व यह, कर्म, बन्ध है कौन प्रकार ।
किस कारण से घूम रहा है, चेतन यह भीषण संसार ।।१०४।।

कहते हुए केवली तब यों, सुनो भव्य देकर के ध्यान ।
नहीं कोई भी प्राण जगत में, उत्तम इस चैतन्य समान ।।
दर्शन ज्ञान युक्त यह चेतन, अजर-अमर आनन्द स्वरूप ।
किन्तु मोह से बना हुआ है, अब तक यह क्लेशों का कूप ।।१०५।।

आत्म-तत्व ही सार विश्व मे, देहादिक पर वस्तु असार ।
पर की ममता से होता है, जन्म मरण हा ! बारम्बार ।।
हो विरक्त जो सकल लोक से, करता शुद्ध आत्म प्रदान ।
फंसता नही वह मोह जाल में, कर लेता अपना कल्याण ।।१०६।।

मिथ्यादर्शन आदि विभावों से, होता पर से सम्बन्ध ।
एक क्षेत्र रहना दोनो का, माना गया यहां पर बन्ध ।।
काललब्धि पा कर जब होती, आत्म तत्वकी शुद्ध प्रतीति ।
शिथिलित हो जाती क्षण भर, तब अनादिकी मिथ्या रीति ।।१०७।।

ज्यो ज्यों करता है चेतन यह, मोक्ष पन्थ में आप प्रयाण ।
स्वयं मन्द होता जाता है, अन्तरङ्ग में मोह महान ।।
इस प्रकार आगे बढ़ करके, धर करके मुनिका चारित्र ।
करके नाश सर्व कर्मों का, बन जाता चैतन्य पवित्र ।।१०८।।

हाथ जोड़ बोले तब हलधर, जानूं सकल जगत की रीति ।
शक्तिवान हूँ तजने को सब, किन्तु न छूटे लक्ष्मण प्रीति ।।
उसके स्नेह दीर्घ सागर में, डूब रहा हूँ मैं हे नाथ ।
डूबूं नहीं अधिक अब उसमें, ग्रहण-कीजिये मेरा हाथ ।।१०९।।

बोले वे भगवान् ज्ञानमय, करो न मन में चिन्ता राम ।
अल्प कालमें तज तुम सबको, प्राप्त करोगे मोक्ष स्वधाम ।।
हरि और बलभद्र बन्धुओं में, होता कुछ ऐसा स्नेह ।
जिस कारण वे छोड़ न सकते, एक दूसरे का शुभ नेह ।।११०।।

❑ ❑ ❑

(तृतीय सर्ग)

कर प्रणाम प्रभु के चरणों को, पूछे विज्ञ विभीषण ।
पूर्व-जन्म में क्या थे भगवन्, रामचन्द्र कुल-भूषण ।।
ऐसा किया कौन-सा इनने, पूर्व-जन्म में सुकृत ।
जिससे चरण-कमल में रहते, विद्याधर, मानव नत ।।१।।

हरण किया सीता का वन में, दशमुख ने किस कारण ?
पाण वल्लभाके वियोग में, फिरे राम क्यों वन-वन ।।
लक्ष्मण ने संग्राम विकट कर, खरदूषण को मारा ।
कौन पुण्य से इसके प्रति अति, है स्नेह हमारा ।।२।।

बोले वे सर्वज्ञ सुनो तुम, सावधान लंकेश्वर (विभीषण) ।
दशमुख हरिके विकट वैर में, कारण जान भवांतर ।।
जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में, उत्तम एक नगर है ।
अल्पधनी 'नयदत्त' नाम का, वहां बणिक नरवर है ।।३।।

सती सुनन्दा के थे दो सुत, धनदत्त और वसुदत्त ।
यज्ञबली नामक ब्राह्मण था, वसुका उत्तम सुहृद ।।
सागरदत्त वैश्य रहता था, उस ही अनुपर पुर में ।
सीता का ही जीव 'गुणवती', कन्या उसके घर में ।।४।।

की कन्या की वहां पिता ने, 'धन' के सङ्ग सगाई ।
देने को 'श्रीकांत' धनिकका, अभिलाषी था भाई ।।
मत भेदों को लेकर उनमें, होता कलह परस्पर ।
यज्ञबली ने कथा कही सब, 'वसु' के घर पर जाकर ।।५।।

अपमानित वसुदत्त हाथ में, तीक्ष्ण खड्ग को लेकर ।
बदल वेश अपना छिपकर के, पहुंचा उसके घर पर ।।
कर प्रहार श्री कांत सेठ पर, झट परलोक पेठाया ।
उसने भी वसुदत्त वैश्य का, असि से किया सफाया ।।६।।

तब 'धनदत्त' श्रवण करके यों, अपने भ्रात मरण को ।
चला गया परदेश खेद वश, तजकर ग्राम-भवन को ।।
अविवाहित ही रही सुता, करती विलाप निज मन में ।
मृगी हुई मर, हिरण हुये थे, मर दोनों जिस वन में ।।७।।

मरे मृगी के लिए झट हिरण-द्वय, कर संघर्ष परस्पर ।
एक बार का वैर जगत में, होता बड़ा भयङ्कर ।।
वह गुणवती धरती जब जब, भव में नारी पन को ।
उसके लिए परस्पर लड़ कर, खोते दोनों तन को ।।८।।

वह धनदत्त निराश्रित-सा हो, इधर-उधर था फिरता ।
संध्या-समय साधु-तट आया, कुछ कुछ मन में डरता ।।
कहने लगा-तृषित मैं अतिशय, दुखमय सर्व कहानी ।
कीजे प्रभु सन्तुष्ट शीघ्र ही, देकर किंचित् पानी ।।९।।

कहने लगे-साधुवर उससे, जान उसे भवि प्राणी ।
सुधा पान विष-सम रजनी में, फिर क्या पीना पानी ।।
अन्धकार में सूक्ष्म जन्तु गण, नहीं दृष्टि में आते ।
इस कारण धर्मिष्ठ अहिंसक, नहीं रात्रि में खाते ।।१०।।

सुन कर मुनि के वचन बना, वह श्रावक अणुव्रत धारी ।
तन को तज कर प्रथम स्वर्ग में, बना विभव अधिकारी ।।
चय करके उस देव लोक से - नगर महापुर उत्तम ।
मेरु सेठ की प्रिया धारिणी, हुआ 'पद्मरुचि' अनुपम ।।११।।

'छत्रच्छाप' है वही नराधिप, 'श्री दत्ता' प्रिय रानी ।
सुन्दरता में रति समान थी, अमृत मय थी वाणी ।।
एक समय वह पुत्र 'पद्मरुचि' निज गोकुल में आया ।
देख कंठ गत प्राण वृषभ को, उत्तम मन्त्र सुनाया ।।१२।।

महा मन्त्र में वृद्ध वृषभ ने, अपना चित्त लगाया ।
'श्री दत्ता' की दिव्य कुक्षि में, उसने नर तन पाया ।।
जाति-स्मरण ज्ञान शुभ उसको, उपजा बालक पन में ।
जाना मैं था पूर्व जन्म में, दुखमय हा ! पशुपन में ।।१३।।

महा मन्त्र दाता पर सम्प्रति, नहीं दृष्टि में आता ।
मिल जाता यदि मुझे कहीं वह, तो निज भाव दिखाता ।।
वृषभ ध्वज उस राजपुत्र ने, श्री जिन चैत्य कराया ।
उसके सन्मुख राजपुत्र ने, अद्‌भुत दृश्य दिखाया ।।१४।।

पीडित वृद्ध वृषभ कानों में, मानव मन्त्र सुनाता ।
जिन मन्दिर में प्रभु दर्शनको, जन समूह बहु आता ।।
पुत्र पद्मरुचि देख दृश्य को, जो यह मन्त्र सुनाया ।
उस दृश्य को किसी मनुज ने, कारण वश बनवाया ।।१५।।

राजपुत्र के निकट ले गये, उसको रक्षक सत्वर ।
किया अधिक सत्कार प्रेम से, निज आसन से उठ कर ।।
महा-मन्त्री की महा कृपा से, रामपुत्र पद पाया ।
वृषभ अवस्था में मुझको जो, तुमने मन्त्र सुनाया ।।१६।।

पूज्य आप जो अन्त समय में, मुझे न मन्त्र सुनाते ।
तो क्या पशु पर्याय त्याग हम, यह मानव भव पाते ?
भूल नहीं सकता भव भव में, मैं उपकार तुम्हारा ।
हे पुरुषोत्तम ! सकल आपका, जो कुछ यहां हमारा ।।१७।।

किया यथा उपकार आपने, करे न कोई वैसा ।
प्रत्युपकार नहीं कर सकता, सेवक रहूँ हमेशा ।।
बढी परस्पर प्रीति निरन्तर, क्रिया धर्म की करते ।
अन्त समय आया दोनों का, सर्व अणुव्रत धरते ।।१८।।

तज समाधि सह इस नर भव को, पहुंचे देव भवन में ।
देख धर्म के शुभ प्रभाव को, बढी धर्म रुचि मन में ।।
स्वर्ग भूमि में पद्म रुचि ने, मन माना सुख पाया ।
त्याग स्वर्ग, नरभव धारण कर, चक्रवर्ति-पद पाया ।।१९।।

भोग राज्य के भोग मनोहर, फिर उसने मुख मोड़ा ।
मुनि बन तप करके समाधि सह, अपने तन को छोड़ा ।।
राज्य-त्याग के उत्तम फल में, चौथे स्वर्ग सिधारा ।
क्षेमपुरी में विपुल वाहन नृप, है सब ही को प्यारा ।।२०।।

पद्मावती प्रिया है उसके, चयकर स्वर्ग नगर से ।
हुआ पुत्र वह देव पुण्य वश, उसके स्वच्छ उदर से ।।
धरा नाम 'श्रीचन्द्र' पुत्र का, हुआ राज्य अधिकारी ।
उसके न्याय पूर्ण शासन में, थी नहिं प्रजा दुखारी ।।२१।।

एक समय पा साधु योग को, त्याग राज सी सम्पद ।
सौप पुत्र को राज्य भार सब, धरा शान्ति मय मुनि पद ।।
मुनि श्रीचन्द्र शान्त एकाकी, करे तपस्या अतिशय ।
करता आत्म-साधना निशि-दिन, निर्जन बनमें निर्भय ।।२२।।

कर काया का त्याग शान्ति से, हुआ ब्रह्मपति सुखकर ।
वीतरागता का आराधन, देता सौख्य निरन्तर ।।
वह ब्रह्मेन्द्र त्रिदिव पद से चय, हुआ यहां श्री रघुपति ।
पूर्व पुण्य के प्रबल योग से, धर्म कार्य में होती रति ।।२३।।

पूर्व का मिला वही श्रीकांत, और वसुदत्त भ्रमण कर ।
हुए एक ही जगह राजसुत, राज विप्रवर ।।
भावी लक्ष्मण जीव नाम, श्रीभूति पुरोहित ।
और दूसरा हुआ वहां पर दिव्य राजसुत ।।२४।।

वेदवती थी सुता पुरोहित के अति सुन्दर ।
पूर्व उक्त गुणवती जीव में था उसका उर ।।
देख सुता सौन्दर्य राजसुत चाहे उसको ।
लगा सोचने पिता पुरोहित देगा किसको ।।२५।।

वेदवती को शम्भु चाहता प्रिया बनाना ।
पर दुष्कर था उसे पुरोहित कन्या पाना ।।
वेदवती थी वीतराग पथ की अनुगामिनी ।
वह कैसे बन सके अन्यमत नर की भामिनी ।।२६।।

एक समय तम पूर्ण रात में अवसर पाकर ।
वध कर डाला तीक्ष्ण शस्त्र ले घर में आकर ।।
बलपूर्वक कर दिया शील व्रत उसका खण्डन ।
बोल उठी तत्काल सुता होके क्रोधित मन ।।२७।।

मार पिता को किया शीलव्रत मेरा खण्डित ।
मैं सम्प्रति असमर्थ तुझे करने में दण्डित ।।
हे पापी तू किन्तु मरेगा मेरे कारण ।
बिन कारण ही दिया, दुःख कर दुष्ट आचरण ।।२८।।

पाता था नहिं शांति कही भी उसका वह मन ।
चिन्तावश हो गया शुष्क सारा ही मृदु तन ।।
तजकर तब घर-बार आर्यिका के व्रत लेकर ।
गई पाँचवें स्वर्ग धर्म में मन को देकर ।।२९।।

❊ सीता भव समाप्त ❊

❑ ❑ ❑

❊ रावण का भव ❊

परिभ्रमण कर, जहां कुश द्विजवर ।
प्राण प्रिया सावित्रि सदन मे उसके सुखकर ।।
उन दोनों का हुआ तनय वह पूर्ण पुण्य वश ।
रक्खा नाम 'प्रभास कुन्द', जग में फैला यश ।।३०।।

सुन मुनि का उपदेश छोड़ आरम्भ परिग्रह ।
बना साधु मोक्षार्थ त्याग कर साराही गृह ।।
दयावान् वह साधु साधु के सब व्रत पाले ।
लेकर प्रायश्चित सर्व दोषों को टाले ।।३१।।

शीतकाल में सरित सरोवर के तट रहता ।
आता जो उपसर्ग हर्ष से उसको सहता ।।
एक समय अवलोक गगन मे खेचर वैभव ।
करता आप विचार मिले ऐसा वैभव कब ? ।।३२।।

जिन शासन यदि सत्य सम्पदा ऐसी पाऊं ।
इसको तज कर नही अन्य में चित्त लगाऊं ।।
कैसा है आश्चर्य युक्त यह बुद्धि विपर्यय ।
लेता हैं खल खण्ड अमोलक तप का करक्रम ।।३३।।

है प्रसिद्ध यह बात मूढ़ विषयों में फंसते ।
कर परकी अभिलाष पाप कीचड़ में धंसते ।।
तृतीय स्वर्ग में गया अन्त में तन को तज कर ।
हुआ वही लंकेश स्वर्ग तज इसी मही पर ।।३४।।

गुणावली का जीव जानिये जनक सुकन्या ।
रूपवती दृढ़ व्रती राम की प्रिया अनन्या ।।
गुणावली का बन्धु, बन्धु श्री भामण्डल है ।
यज्ञवली का जीव विभीषण भूमण्डल है ।।३५।।

पूर्व वृषभ का जीव हुआ सुग्रीव गगनचर ।
निज कृति के अनुसार सर्व मिलता है भूपर ।।
बालि योगि के पूर्व जन्म कहते वे मुनिवर ।
इसी धरा पर नगर रम्य 'वृन्दावन' सुखकर ।।३६।।

था उसमें मृग एक साधु स्वाध्याय श्रवण कर ।
तजकर मृग पर्याय हुआ था मनुज धर्मधर ।।
अमर हुआ वह द्वितीय स्वर्ग में तन को तजकर ।
मत्त कोकिला नगर मध्य वह हुआ पुनः नर ।।३७।।

पहुंच गया सर्वार्थ सिद्धि में उत्तम तप कर ।
करके काल समाप्त हुआ बलवान 'बालि' नर ।।
करके कर्म विनाश सिद्धि पद उसने पाया ।
उस पद के प्राप्त्यर्थ जानिये मानव काया ।।३८।।

वेदवती का पिता विप्र श्रीभूति विचक्षण ।
पा विद्याधर देह किये अनुपम व्रत धारण ।।
गया तीसरे स्वर्ग विभव की इच्छा करके ।
वासुदेव वह हुआ आयु स्थिति पूरी करके ।।३९।।

पूर्व जन्म के बैर विवश मारा रावण को ।
राम-प्रिया के हरण रूप पाकर कारण को ।।
जो जिसको जिस समय मारता पाकर अवसर ।
यथा समय करता प्रहार वह भी फिर उस पर ।।४०।।

इस जग की घटमाल चले इस भांति निरन्तर ।
हो चेतन अत्यन्त सुखी कर्मों का क्षय कर ।।
श्री मुनि का अपवाद किया था पिछले भव में ।
सीता का अपवाद हुआ इससे इस भव में ।।४१।।

एक समय वन में 'सुस्थित' मुनिराज सुदर्शन ।
सुना चुके थे नगर वासियों को जिन दर्शन ।।
सुनती थी उपदेश आर्यिका एक वहां पर ।
ईर्ष्यावश की वेदवती ने निन्दा घर घर ।।४२।।

इन दोनों का नही शुद्ध है साधु आचरण ।
फैला वह अपवाद वायुसम पुर में तत्क्षण ।।
उद्यत तब वे साधु हुए करने को अनशन ।
देख न सकता मनुज कलंकित अपना जीवन ।।४३।।

वेदवती ने पुनः कहा लोगों में जाकर ।
दोषारोपण किया खेद है मुझे भयङ्कर ।।
भाई-बहिन हैं साधु नही यह मैने जाना ।
इनका शुद्धाचरण भूल से नहिं पहचाना ।।४४।।

कीजे मुझको क्षमा नाथ मैं बड़ी अभागिन ।
साधु द्वेष से हुआ पापमय मेरा जीवन ।।
इस प्रकार कह सब समक्ष अपवाद हटाया ।
कर निन्दा जो प्रथम निन्द्यतम पाप कमाया ।।४५।।

उसके फल में हुआ कलंकित इसका जीवन ।
लेकिन सीता सती सर्वदा है निर्मल मन ।।
परनिन्दा तज सदा कीजिये आप भलाई ।
भव-भव मे दुखरूप जानिये अन्य बुराई ।।४६।।

सज्जन जग में नित्य ढाँकते परके अवगुण ।
गुण को अवगुण कहें किन्तु जगमें पापी जन ।।
जो परनिन्दा करें धर्म के नहिं वे सन्मुख ।
और नहीं परलोक मध्य पाते हैं वे सुख ।।४७।।

बोला वीर कृतांतवक्र रघुपति से सुख से ।
नाथ छूटना मुझे इष्ट है इस भव दुख से ।।
धर जिन दीक्षा सद्य कर्म की राशि जलाऊं ।
शुद्ध-बुद्ध चैतन्य रूप मैं अपना पाऊं ।।४८।।

बोले वे श्रीराम जैन दीक्षा अति दुर्धर ।
बड़े-बड़े बलवान इसे धारण में कायर ।।
भोगे तुमने वीर आज तक सांसारिक सुख ।
कैसे होंगे सहन तुम्हें दीक्षा आगत दुख ? ।।४९।।

करना होगा तुम्हें त्याग में नीरस भोजन ।
आते ही कुछ विघ्न वहां होता है अनशन ।।
कटुक और अपशब्द कहेंगे तुमको जगमें ।
करते हुए प्रयाण चुभे कंटक तृण पग में ।।५०।।

तजना है अत्यन्त कठिन विषयों की आशा ।
दुर्जय है सब भांति मान-पूजादि पिपासा ।।
रहो सदन में वीर धरा क्या गहन विपिन मे ।
कहो कौन-सा कष्ट तुम्हें है राज-सदन मे ।।५१।।

कहने लगा कृतांववक्र मुख से हे ! स्वामिन् ।
है विरक्त अत्यन्त आज भव दुख से मन मन ।।
सुनकर उसके वचन राम को आंसू आये ।
धन्य-धन्य हो तुम्हीं वीरवर तुम्हीं कहाये ।।५२।।

लो दीक्षा सानन्द अद्य सेना के नायक ।
अब तक मेरे सभी कार्य में रहे सहायक ।।
रोक तुम्हें मै नही चाहता चित्त दुखाना ।
पाकर के देवत्व मुझे, तुम मत विसराना ।।५३।।

मान्य मुझे सब भांति हृदय से वचन तुम्हारे ।
कह कर यों तन-वस्त्र और कर वलय उतारे ।।
पाल साधु व्रत वीर अन्त में स्वर्ग पधारा ।
प्रभु भक्तों को सतत, एक सद्धर्म सहारा ।।५४।।

वह विरक्त सति सिया धर्म आराधन करती ।
उपसर्गों के समय चित्त में धीरज धरती ।।
वह मुनि सुव्रत समय लोक को था सुखदाता ।
उसी समय ही हुए, सकल भूषण जग ज्ञाता ।।५५।।

तज शरीर का मोह सिया ने सब व्रत पाले ।
आत्म शक्ति से प्रबल मोह के बन्धन टाले ।।
अन्त समय विधिसहित दिव्यसंन्यास मरणकर ।
हुई अच्युत में वह, प्रतीन्द्र शोभा रत्नाकर ।।५६।।

हो विरक्त संसार भ्रमणसे, लक्ष्मण के सुत आठ ।
करते हुए ग्रहण जिन दीक्षा, त्याग राजसी ठाठ ।।
करके घोर तपस्या अविरत प्राप्त किया निर्वाण ।
नहीं जहां है कर्म-कालिमा, जो शाश्वत स्वस्थान ।।५७।।

❑ ❑ ❑

(भामण्डल का विद्युत्पात से मरण)

विषय-रक्त भामण्डल जग का, कर नहीं सकता त्याग ।
था उसको अपने वैभव प्रति, मन में अति अनुराग ।।
सोचा करे हृदय मे अपने, यदि लूँ दीक्षा योग ।
प्राण वल्लभाओं को दुखकर, हो मम तीव्र वियोग ।।५८।।

बिरहानल में बिन कारण ही, जल जायेंगें प्राण ।
रह करके कुछ काल, करूंगा मैं अपना कल्याण ।।
एक बार अपने दल-बल से, जीतूं शत्रु समाज ।
और अखण्डित हो धरणी पर, निष्कन्टक मम राज ।।५९।।

दक्षिण तथा अपर श्रेणिमें, आज्ञा चले अखण्ड ।
एक बार जग को दिखला दूं अपनी शक्ति प्रचण्ड ।।
करते व्यर्थ मनोरथ उसके, बीते वर्ष अनेक ।
करता है मानव इच्छायें, खोकर आत्म विवेक ।।६०।।

एक समय प्रासाद-खण्ड पर, सोता था निश्चिन्त ।
विद्युत पड़ी गगन से, उस पर हुआ देह का अन्त ।।
मनुज दीर्घ सूत्री जगती में, करता विविध विचार ।
किन्तु विकल्पों से विरक्त हो, करे न आत्म विचार ।।६१।।

क्षण-भंगुर सुख का निमित्त पा, करता नाना पाप ।
सुख न साथ उसके जाता है, बढ़ता उर सन्ताप ।।
सुन कर जीवन की घटनायें, मन में करे विचार ।
आत्म-लक्ष्य में ही सुरक्त हो, छूटे सब संसार ।।६२।।

❑ ❑ ❑

हनुमान की दीक्षा

किसी समय श्री शैल प्रियाओं, सहित गये सुरगिर पर आय ।
पावन जिस गिरि के दर्शन से, सब भवका मिटता सन्ताप ।।
देख वहां जिन मन्दिर अनुपम, हुआ सभी को अतिशय हर्ष ।
भूल गये जिन बिम्ब देखकर, काम, मान, मद, लोभ अमर्प ।।६३।।

मिलकर सबने स्वच्छ हृदय से, की पूजा प्रभु की सोल्लास ।
वीतराग जिन प्रभु पूजा से, होता महा मोह का ह्रास ।।
जिस प्रकार करता उपासना, शक्ति सहित प्रभु की श्री इन्द्र ।
अर्चा त्यों प्रभु की करता था, एक चित्तसे गगनचरेन्द्र ।।६४।।

जिन दर्शन मगलस्वरूप, जिन दर्शन टाले सन्ताप ।
उसी समय नभके पथसे रवि, सागरमे कर गया प्रयाण ।।
प्रसरित हुआ भूमि मण्डल में, गाढ़ तिमिर क्षण में सर्वत्र ।
सुर दुन्दभि नामक पर्वत पर, रहे प्रियाओं सह वे तत्र ।।६६।।

सुरभित पुष्पों की सुगन्ध से, उपजा परिजन को आनन्द ।
रात्रि वासको बिता रहे थे, कर प्रभु कथा वहां जनवृन्द ।।
इतने में उस समय गगन से, गिरा एक तारा तत्काल ।
देख उसे उस पवन-पुत्र के, हुआ चित्त का और ही हाल ।।६७।।

देखो इस नश्वर संसृति में, अहो ! देव भी कालाधीन ।
मरण समय सबही परवश हैं, चक्री तक भी नहिं स्वाधीन ।।
लवणोदधि में भरा हुआ है, जिसप्रकार अति क्षार ही क्षार ।
त्यों विचार करने से लगता, क्लेश पूर्ण सारा संसार ।।६८।।

मोह धूर्त से ठगा हुआ मैं, कर न सका अपना कल्याण ।
होता रहा दुःखप्रद मुझको, अब तक मेरा ही अज्ञान ।।
मिलते जो सम्बन्ध भाग्य से, उनका भी है क्या विश्वास ?
क्या सुख देते वे चेतन को, किन्तु बढ़ाते दुगने त्रास ।।६९।।

आके भवन राज्य सचिवों से, कहने लगा भव्य हनुमान ।
छोड़ राजसी वैभव सारा, करना मुझे आत्म-कल्याण ।।
तुम लोगों के साथ आज तक, भोगा है भोगों का कोष ।
बढ़ी कामना प्रतिदिन दूनी, हुआ नहीं उनसे सन्तोष ।।७०।।

अब मेरी अभिलाष यही है, जहां नहीं जन्मादिक क्लेश ।
करके कठिन तपस्या अनुपम, प्राप्त करूं मैं वही प्रदेश ।।
धर धरके पर्याय अनेकों, बीता मेरा काल अपार ।
अल्प हुआ नहीं अंश मात्र भी, महा मोहनी का अधिकार ।।७१।।

बोले स्वामि-भक्ति वे मन्त्री, देव, आपके हम आधीन ।
आप छोडिये हमे न अधुना, आप बिना होंगे हम दीन ।।
राज सदन मे रह कर स्वामिन, आप कीजिये अनुपम धर्म ।
रहिये नित निर्लेप कमलवत, यही धर्मका उत्तम मर्म ।।७२।।

बोले तब वे वायु पुत्र यो, जहां परिग्रह का आरम्भ ।
रहना वहां अलिप्त चित्त का, एक तरह का कोरा दम्भ ।।
जब तक मोह दशा चेतन की, और बाह्य धन से सम्बन्ध ।
तब तक नित हृदयस्थ मोहवश, होता रहे कर्म का बन्ध ।।७३।।

पर-पदार्थ की ममता से ही, राद-द्वेष की है उत्पत्ति ।
इन दोनों के कारण आती, आत्म तत्वपर महा विपत्ति ।।
देके राज्य 'मारजित' सुत को चले तपोवन प्रति हनुमान ।
मानों तोड़ सबल जंजीरें, गमन कर रहा सिंह बलवान ।।७४।।

जाके चारण-साधु चरण-तट, करके सविनय उन्हें प्रणाम ।
देंं भगवन, जिनदीक्षा मुझको, पाऊं जिससे शिवपुर धाम ।।
भव के दु:खदायक भोगों से, मैं हूँ मन में अधिक उदास ।
तोड़ दीजिये हे करुणा धन, कृपया मेरा यह भवपाश ।।७५।।

मुनि बोले हे, हे ! भव्योत्तम, आया तुमको दिव्य विचार ।
ऐहिक दिव्य सुखों को तजकर, बिरले करें आत्म उद्धार ।।
क्षुद्र कीट से लेकर सुर तक, सतत रहें विषयों में रक्त ।
कर विचार अपना कुछ उससे, कभी न होते आप विरक्त ।।७६।।

हनुमान मुनि बने हृदय से, तीव्र राग का बन्धन तोड़ ।
सप्त शतक नृप हुये दीक्षित, पवन पुत्र सङ्ग निजगृह छोड ।।
प्राण बल्लभाओं ने पति का, देख राज्यका इस विधि त्याग ।
छोड़ दिया उनने पल भर में, भोगो का सारा अनुराग ।।७७।।

जाके बन्धुमती के सन्निधि, लिये आर्यिका के व्रत धार ।
व्रत धारण ही मर्त्यलोक में, है मनुष्य जीवनका सार ।।
करने लगे तपस्या प्रतिदिन, निर्भय मुनिवर वे श्री शैल ।
आत्म चिन्तवन शुद्ध नीर से, अन्तरङ्ग का धोते मैल ।।७८।।

पांच समिति शुभ पंच महाव्रत, तीन गुप्तियों के भण्डार ।
करके प्रगटित आत्म-तेज को, किया मोह-रिपुका संहार ।।
ध्यानानल के बल से क्षण में, करके सकल घातिया नाश ।
अन्तरङ्ग मे प्रगट किया फिर, लोकोत्तर निज ज्ञान-प्रकाश ।।७९।।

अन्त समय मे आयु कर्मयुत, सकल कर्म का करके नाश ।
एक समय में प्राप्त कर लिया, अजर, अमर, अचलित निज-वास ।।
अजर, अमर, पद का लालायित, धरूं उसी का मैं नित ध्यान ।
छूट जगत के दुखद भ्रमण से, पाऊंगा मैं कब स्व-स्थान ।।८०।।

एक समय सोधर्म इन्द्र बैठे थे सुख से ।
देवो को कर लक्ष्य वचन बोले यों मुख से ।।
देवो, तुमने पुण्य कर्म से पाया यह तन ।
जिन-भक्ति में सदा लीन रक्खो अपना मन ।।८१।।

प्रभु पूजा में भाव रूप शुभ कुसुम चढ़ाओ ।
अन्तरङ्ग में सतत ज्ञान दीपक प्रगटाओ ।।
अर्हत्-पूजा कर्म-रूप बन सहज जलाती ।
क्षण भर में वह अहो ! स्वर्ग-सम्पत्ति दिखाती ।।८२।।

प्रभु सेवा बिन महा कठिन है जो भवसागर ।
पल भर में हो पार शुद्ध प्रभु का सेवक नर ।।
होकर निर्मल हृदय ईश में जो मन धरता ।
उस नर से विकराल काल भी मन में डरता ।।८३।।

रोग शोक भय और दीनता सङ्कट टलता ।
विपदाओं को देख चित्त नहिं उसका चलता ।।
देखो, है यह जीव अहो ! कैसा अज्ञानी ।
पड़ विषयो मे सुने नही जिनवर की वाणी ।।८४।।

देवो मे लवलेश मात्र संयम नही आता ।
नहिं तो मै तज विभ आज संयम अपनाता ।।
बोल उठा उस समय इन्द्र से एक अमर वर ।
करते हैं सब बात स्वर्ग मे ऐसी आकर ।।८५।।

पाकर मानव-देह विषय नहिं छोडे जाते ।
हो भोगों में लीन व्यर्थ निज समय बिताते ।।
जब थे वे श्रीराम ब्रह्म नामक सुरपुर में ।
आता था उपर्युक्त भाव उनके भी उर में ।।८६।।

भूल गये वे स्वर्ग बात विषयो को पाकर ।
करता मानव भाव हेतुओं को ही पाकर ।।
बोले शचिपति शीघ्र बात उसको समझाकर ।
जगती में सर्वत्र स्नेह-बन्धन है दृढ़तर ।।८७।।

बडे बडे विकराल युद्ध मे जो जय पाते ।
वे भी तजते प्रेम-पाश मन मे अकुलाते ।।
है लक्ष्मण पर प्रीति राम की अतिशय अनुपम ।
तोड़ प्रीति इस हेतु न धर सकते वे संयम ।।८८।।

बन जाता तत्वज्ञ मूर्ख भी कर्मोदय से ।
पाता वस्तु स्वरूप वेग से उसके क्षय से ।।
सम्यग्दृष्टि राम सर्व तत्वों के ज्ञाता ।
पर यह चारित्र मोहनीय है उन्हें सताता ।।८९।।

'रत्नचूल' 'मृगचूल' स्नेह दोनों का सुनकर ।
आये सुरपुर छोड़ परीक्षा करने भूपर ।।
राम सदन में नारिजनों को रुदन कराया ।
स्वर्ग सिधारे राम, दृश्य दुःख का प्रगटाया ।।९०।।

द्वारपाल आदिक समूह लक्ष्मण तट जाकर ।
स्वर्ग सिधारे राम, वचन बोले यों दुखकर ।।
हाय अधूरा बोल गिरे नारायण भूपर ।
चला गया तत्काल जीव नश्वर तन तज कर ।।९१।।

पूर्व तुल्य ही तेजवान दिखता सारा तन ।
सुख दुख वेदक नहीं किन्तु उसमें था चेतन ।।
चले गये वे देव स्वर्ग में हो शोकातुर ।
विधि के ही अनुसार योग मिलता सब आकर ।।९२।।

जब यह पहुंचा समाचार हरि अन्तःपुर में ।
कोलाहल मच गया शीघ्र सारे पुर भर में ।।
निज पति को अवलोक अचेतन वे ललनायें ।
कर उर ताड़न दीर्घ शोक से अश्रु गिरायें ।।९३।।

उठो, उठो हे नाथ! उचित नही ऐसा करना ।
क्या अनुचित हम सङ्ग वाटिकाओं मे फिरना ।।
देख तुम्हें यो मौन हृदय के टुकड़े होते ।
नेत्र हो रहे लाल हमारे रोते रोते ।।९४।।

क्यों निष्ठुर हो रहे पड़े हो पुरुष धरा पर ?
हूजे सद्य प्रसन्न सर्व अपराध क्षमाकर ।।
पति का ही आधार एक है अबला जन को ।
छोड़ चले असहाय आप, क्यों इस विधि हमको ? ।।९५।।

करके श्रवण विलाप राम झट दौड़े आये ।
देख चेष्टा रहित बन्धु को वे अकुलाये ।।
रूठ रहा है बन्धु आज मुझसे बिन कारण ।
यदि कुछ कारण करूं वेग से उसे निवारण ।।९६।।

कर आलिंगन प्रेम सहित वे उससे बोले ।
क्यों भूपर सो रहे क्रुद्ध होकर हे भोले !
बार बार वे स्पर्श करें निज कोमल कर से ।
और लगाते पुन: पुन: ममतावश उर से ।।९७।।

यद्यपि वे श्रीराम मृतक लक्षण को जानें ।
किन्तु मोह वश मृतक नहीं उसको वे मानें ।।
कभी कभी हा ! महा शोक से मूर्च्छा आती ।
आखों बहता नीर शोक से जलती छाती ।।९८।।

निरख बन्धु का बदन सोचते अपने मन में ।
दु:ख ही दु:ख क्या भरा तुच्छ मेरे जीवन में ।।
क्या से क्या हो गया बन्धु को कैसे पाऊं ?
किस प्रकार मै अन्य जनों को धैर्य बंधाऊं ? ।।९९।।

मान सजीवन दूर-दूर से वैद्य बुलाते ।
वे सारे ही वैद्य मृतक उसको बतलाते ।।
ला, ला शुभ मिष्ठान्न धरें लक्ष्मण के सन्मुख ।
खाता जब वह नहीं, घोरतम होता था दु:ख ।।१००।।

कभी सुलाते बड़े प्रेम से शैया ऊपर ।
सोते थे वे स्वयं पास में उसको लेकर ।।
शोभा हीन विलोक देह भूषण पहराते ।
करने उसे प्रसन्न मधुरतम, गीत सुनाते ।।१०१।।

बन्धु मोह में पड़े हुए थे जब यों रघुवर ।
लव अंकुश यह दृश्य जगत् का सन्मुख लखकर ।।
छोड़ राज्य जंजाल साधु पद को स्वीकारा ।
रह कर आत्म निमग्न, मोह राक्षस को मारा ।।१०२।।

पाकर नर पर्याय जो, करें आत्म कल्याण ।
उन पुरुषों का सर्वदा, रहे हृदय में ध्यान ।।१०३।।

❑ ❑ ❑

लक्ष्मण परलोक
और
राम की वैराग्यता
(चतुर्थ सर्ग)

लक्ष्मण का परलोक गमन सुन, अगणित खेचर आये ।
अर्द्ध चक्रि के विरह दुःख से, दृग सबके भर आये ।।
कर प्रणाम श्री रामचन्द्र को, बोले विज्ञ विभीषण ।
तजिये सब ही शोक, जगत में अमर नहीं है जीवन ।।१।।

जो लेता है जन्म, मरण उसका है निश्चित ।
ऐसा वस्तु स्वरूप, प्राणियों में हैं विश्रुत ।।
जिसने अपनी आत्मशक्ति से, लाखों शत्रु विदारे ।
वे बलशाली वीर मृत्यु से, पल में देखो हारे ।।२।।

जो करता परजन की चिन्ता, वह क्या स्वयं अमर हैं ।
प्रति प्राणी यमराज दाढ़ में, बैठा क्यों तज डर है ? ।।
तन धारी प्राणी पृथिवी पर, यथा समय सब मरते ।
विज्ञ मनुज उसके वियोग का, शोक न किंचित करते ।।३।।

तजिये अब इस मृतक देह को, खेद न मन मे करिये ।
देव, आप हैं विज्ञ विश्व में, सुन वाणी चित धरिये ।।
किन्तु मोह के विवश हुए वे, पल भर उसे न छोड़े ।
भोगो की सामग्री मंगाकर, मृतक सामने जोड़े ।।४।।

बोला श्री सुग्रीव प्रेम से, करता उन्हे प्रबोधित ।
स्वामिन् अब इस मृतक बन्धुकी, करें क्रिया समयोचित ।।
हे सुग्रीव, अरुचिकर मुझको, क्यों यह वाक्य उचारा ।
जीवन में इस वीर बन्धु ने, हित नही किया तुम्हारा ।।५।।

प्रिया विरह से जब फिरते थे, बन में मारे मारे ।
तब उसने उपकार किया था, रहकर साथ हमारे ।।
अशुभ बोलते हुए वचन ये, लाज न तुमको आती ?
इन अभद्र वचनों को सुनकर, फटती मेरी छाती ।।६।।

शव को लिए हुये कन्धे पर, इधर-उधर वे फिरते ।
देखो मोह विवश ज्ञानी भी, कैसी चेष्टा करते ।।
इस जगती में दुष्ट मोह यह, नाना नाच नचाता ।
इसका ही आवेश जीव को, अपना धर्म भुलाता ।।७।।

इसी समय शम्बुक का भ्राता, मन में यही विचारे ।
राम और लक्ष्मण ने मिलकर, अनुज हमारे मारे ।।
इस कारण ये शत्रु पुराने, कुछ प्रतिकार करूं मैं ।
सम्प्रति यही योग्य है अवसर, जाकर सर्व हरूं मैं ।।८।।

'सुन्दर' का कुत्सित विचार यह, वज्रमालि को भाया ।
दोनों ने मिलकर विरोध से, औरों को उकसाया ।।
ले, ले अपनी सैन्य वेग से, अवधपुरी तट आये ।
सुनकर के आगमन शत्रु का, पुरजन सब घबराये ।।९।।

राम साथ में शव को रखकर, रिपुओं पर झट धाये ।
ऐसे सङ्कट में भी रघुवर मन मे नहिं घबराये ।।
इस मानव के विषम कर्म का, उदय निकट जब आता ।
तब वह बाह्य कारणों को पा, दुःखों से घिर जाता ।।१०।।

जो जटायु का जीव स्वर्ग में, देव हुआ था आकर ।
और कृतांतबक्र भी उसमें, हुआ अमर मुनिव्रत धर ।।
हलधर की आपत्ति समय में, आसन हुए प्रकम्पित ।
इससे उस समय जटायु चेतन, जान वृत्त था क्रोधित ।।११।।

कहने लगा कृतांतबक्र सुर, क्यों दिखते तुम क्रोधी ?
क्या कोई अनर्थ कर बैठा, सम्प्रति दुष्ट विरोधी ।।
बोला वह जटायु सुर मुख से, जब था पक्षी तन में ।
पुत्र-तुल्य मुझको पाला था, घृणा न की थी मन में ।।१२।।

अन्त समय मे मन्त्र सुनाया, जिससे सुर भव पाया ।
अधुना उपकारी रघुपति पर, भारी संकट आया ।।
अवधिज्ञान से सेनापति ने, जानी दशा हमारी ।
कहा जटायुदेव से उसने, उनसे प्रीति हमारी ।।१३।।

मै सेना नायक था उनका, अतिशय लाड़ लड़ाया ।
पुत्र और मित्रों से बढ़ कर, मुझे अधिक अपनाया ।।
यों कह दोनों चले स्वर्ग से, अवधपुरी में आये ।
रघुवर के चरणों में अपने सविनय शीश झुकाये ।।१४।।

जाकर के जटायु ने रिपु पर, छा दी ऐसी माया ।
'अवधपुरी' की दुर्गम पथ है, शत्रु हृदय घबराया ।।
देख रहे थे शत्रु दृगों से, पर्वत पीछे आगे ।
जान असाध्य राम नगरी को, तत्क्षण वे सब भागे ।।१५।।

दोनों ने सोचा निज मन में, क्या देंगे हम उत्तर ।
इस कारण तज जगत मोह को, गए स्वर्ग मुनि व्रत धर ।।
सेनापति का जीव राम को, करने लगा प्रबोधित ।
शोकातुर उन राम भद्र को, सब ही भाता अनुचित ।।१६।।

पुन: वेग से उनके सन्मुख, नीरस तरुवर सींचे ।
और जटायु जीव मृतक, बैलों से हल को खींचे ।।
करने उन्हें प्रबोधित सुर वे, बोते बीज शिला पर ।
लगे पेलने धूलि कणों को, कोल्हू में वे रख कर ।।१७।।

बोले राम दृश्य सब लखकर, तुम जो कुछ भी करते ।
बुद्धि हीनता प्रगट करें वे, क्यों न लोक से डरते ।।
कहने लगे-अमर दोनों तब, यह सब क्रिया हमारी ।
मृतक बन्धु लेकर फिरते हो, कैसी क्रिया तुम्हारी ? ।।१८।।

राम और सेनापति सुर में, होती बात जहां पर ।
आया वहां जटायु सुरवर भी, लेकर मनुज कलेवर ।।
देख उसे बोले श्री रघुपति, क्यों तुम लिये कलेवर ।
कन्धों पर धारण कर उसको, फिर क्यों रहे महीपर ।।१९।।

कहने लगा अमर मानवगण, देखें दोष पराया ।
नही देखते पर्वत जैसा, जो दुर्गुण अपनाया ।।
आप और हम तो समान हैं, इससे राग हमारा ।
सुखसे करते भ्रमण धरा पर, पाकर साथ तुम्हारा ।।२०।।

सुन देवों के वाक्य अनोखे, रघुपति समझे मने में ।
है अनित्य संसार सर्वथा, सार न कुछ जीवन में ।।
हाय हाय ! इस अधम मोह ने, मुझको अन्ध बनाया ।
जीवित और मृतक तक का भी, मैंने भेद भुलाया ।।२१।।

धरता है जो जन्म धरा पर, निश्चय ही वह मरता ।
तो परिजन का मोह त्याग कर, क्यों न आत्म हित करता ?
मैं मैं मैं ही मानव जीवन, मैंने अपना खोया ।
मुदित हुआ पर के मिलने पर, जाते इनके रोया ।।२२।।

कौन किसी का पुत्र यहां पर, कौन किसी की दारा ।
सुख में आ मिलते हैं ये सब, दुःख में करें किनारा ।।
जान उन्हें प्रतिबुद्ध सुरों ने, छोड़ी अपनी माया ।
स्वर्ग विभूति सहित अपना सब, सुन्दर रूप दिखाया ।।२३।।

बोले वे सुर, देव, आपने, भोगे भोग निरन्तर ।
पर क्या कोई भोग आपको, हुआ लेश भी सुखकर ।।
कहने लगे राम हे देवो, भोगों में यदि सुख हो ।
रहे निरन्तर लीन इसी में, इससे कौन विमुख हो ? ।।२४।।

कष्ट रूप ही मान जगत को, भरतेश्वर ने छोड़ा ।
आत्म-सिद्धि के लिए उन्होंने, तप से नाता जोड़ा ।।
एक नहीं, अगणित वीरों ने, छोड़ा धन परिजन को ।
शाश्वत-पद के लिये अदीन मन, चले गये वे वन को ।।२५।।

देवों ने प्रतिबुद्ध राम को, निज पहचान करायी ।
पूर्व अवस्था में हे स्वामिन्, थे तुम हमें सहायी ।।
बोले राम-समय पर तुम तो, मुझको हुए सहायक ।
मानूं मैं उपकार तुम्हारा, सम्प्रति यहां कहाँ तक ।।२६।।

लक्ष्मण के शव को लेकर सब, 'सरयू' के तट आये ।
तन को भस्म किया ज्वाला ने, सबने अश्रु बहाये ।।
हे शत्रुघ्न मोक्ष की मुझको, उपजी है अभिलाषा ।
शान्त हो गई अनादि की, मन की भोग पिपासा ।।२७।।

राज्य ग्रहण कर सुख भोगो तुम, मैं जाऊंगा बन में ।
ज्ञान-ध्यान ही सार सर्वथा, क्षण भंगुर जीवन में ।।
पूज्य, मुझे भी राज-पाट से, कुछ भी नहीं प्रयोजन ।
मैं भी यह सब छोड़-छाड़ कर, सफल करूंगा जीवन ।।२८।।

जिस पथ को हे देव आपने, मनमें सुखकर माना ।
उसी मार्ग को हम लोगों ने, उचित सर्वथा जाना ।।
आप जिसे दुःख रूप जान कर, त्याग रहे हैं सत्वर ।
तो क्यों मैं दुःख रूप बनूं अति, उसको आज ग्रहणकर ।।२९।।

सुन वैराग्य वचन भ्राता के, मन में इस विधि ठाना ।
इस शत्रुघ्न अनुज को सम्प्रति, है दुस्तर समझाना ।।
जीर्ण तुल्य सम क्षण में छोड़ी, राज्य सम्पदा सारी ।
'सुव्रत' मुनि के निकट बने वे, मोक्ष मार्ग अनुचारी ।।३०।।

रम्य देह पर से क्षणभर में, भूषण वस्त्र उतारे ।
भव विरक्त होकर के अतिशय, पंच महा व्रत धारे ।।
व्रत गुप्ति समिति आदिकका, करते सुख से पालन ।
देता था आनन्द विश्व को, उनका संयम जीवन ।।३१।।

इस मनुष्य जीवन का सुन्दर, फल दोनों ने पाया ।
मुक्ति हेतु यह मानव तन है, यों ऋषियों ने गाया ।।
पाकर मुक्ति योग्य सब साधन, जो भोगों में पड़ते ।
गुमा कोडिकी लिए रत्न वे, भव सागर में पड़ते ।।३२।।

यथाशक्ति नारी समाजने, व्रत तप को अपनाया ।
राम त्याग ने त्याग भाव को, सबके हृदय जमाया ।।
गुरु आज्ञा ले राम मुनीश्वर, बन में स्वयं विचरते ।
हिंसक क्रूर वन्य पशुओं से, मन मे लेश न डरते ।।३३।।

जान राम को दीक्षित इस विधि, श्री सुग्रीव विभीषण ।
हो विरक्त संसार भ्रमण से, दिया स्वहित में निज मन ।।
श्रीनल, नील, विराधित सब ही, तोड़ मोह की ग्रन्थी ।
शुद्ध हृदय से मोक्ष मार्ग में, बने राम पथ पन्थी ।।३४।।

राम अनुज शत्रुघ्न वीर ने, धारे पंच महाव्रत ।
भूल गया संसार भाव को, निज स्वरूप में हो रत ।।
ज्ञान ध्यान में तत्पर रहकर, तनकी ममता छोड़ी ।
आत्म शांति से महा मोह की, सांकल भारी तोड़ी ।।३५।।

पंच उपवास प्रतिज्ञा लेकर, विचरें राम मुनीश्वर ।
आये सहज पारणा के दिन, 'नन्दस्थली' जहां पुर ।।
देख राम का रूप अलौकिक, धन्य, धन्य नर करते ।
देखो, ये अपने संयम में, अतिशय दृढ़तर रहते ।।३६।।

तप से तन देदीप्यमान है, मानो ये हैं दिनकर ।
चले जा रहे राज-मार्ग में, दृष्टि, आत्म में रखकर ।।
कौन बनेगा भाग्यवान् नर, भोजन इनको देकर ।
नहीं दृष्टि, सुनने में ऐसा, कोई योग्य ऋषीश्वर ।।३७।।

नहीं लेश तन की चिन्ता है, उद्यम निज परिणतिका ।
दूर हो गया भाव हृदय से, रति और अविरतिका ।।
है आहार-नीर सब ही शुभ, अत्र तिष्ठ हे स्वामिन् ।
पथ मे जाते देख राम को, कहे भक्ति से पुर जन ।।३८।।

कहता कोई पूर्व राग वश, मेरे घर पर चलिए ।
लो आहार यहां पर स्वामिन्, मुझको पावन करिए ।।
सुन कर ऐसे वचन विघ्नप्रद, लौट गये मुनि वन में ।
अन्तराय आया लख करके, खेद रहित थे मन में ।।३९।।

देख लौटते यों मुनिवर को, व्यथित हुए पुरवासी ।
पर न राम का हृदय व्यथित था, मुख पर थी न उदासी ।।
अन्य समय फिर नियम कर लिया, उनने अपने उरमें ।
वन मे ही आहार मिले तो, लूं नही जाऊं पुर मे ।।४०।।

बीत गये दिन बहुत विपिन में, किन्तु न भोजन पाया ।
खेद रहित श्रीराम साधु ने, अपना नियम निभाया ।।
आत्म मग्न रहते थे बन में, करें न पर की आशा ।
आत्म साधना में बाधक है, पर चिन्ता अभिलाषा ।।४१।।

एक समय 'प्रतिनन्द' नृपति को, दुष्ट अश्व ले भागा ।
कीचड़ में फंसकर भूपतिको, उसी विपिन में त्यागा ।।
रानी सहित सकल परिजन ने, नृप को सकुशल पाया ।
प्राणी पृष्ठ लगी रहती है, पुण्य पाप की छाया ।।४२।।

होने से मध्याह्न भूप वह, भोजन को था प्रस्तुत ।
बन-चर्या धारक रघुपति को, देख हुआ अति प्रमुदित ।।
तिष्ठ, तिष्ठ हे मुने यहां पर, है पवित्र सब भोजन ।
करा शुद्ध आहार राम को, मुदित हुआ सब परिजन ।।४३।।

हुई गगन से पुष्प वृष्टि अति, गूञ्जा जय-जय ध्वनि से ।
हुआ धन्य भूपतिकी अतिशय, पा सुबोध उन मुनि से ।।
आत्मध्यान से करें निर्जरा, कर्मों की क्षण क्षण में ।
राग-द्वेष विजयी मुनिवर वे, रहें भयङ्कर वन में ।।४४।।

ऋद्धि-सिद्धि प्रगटी चेतन में, पर उसे वे जानें ।
एक मुक्ति के बिना विश्व को, हेय सर्वथा मानें ।।
देख शान्त मुद्रा रघुवर की, मृग-गण सन्निधि आते ।
निर्भय हों उनके शरीर से, अपनी खाज खुजाते ।।४५।।

शनैः शनैः करते विहार वे, कोटि शिला पर आये ।
तज संकल्प-विकल्प मोह के, निज में आप समाये ।।
सीता जीव प्रतीन्द्र स्वर्ग में, भोग रहा सुख नाना ।
उसने राज्य त्याग का सब ही, वृत्त राम का जाना ।।४६।।

जान ज्ञान से मुनिपन उनका, मन में स्वयं विचारे ।
एक समय श्री रामचन्द्र थे, जीवन नाथ हमारे ।।
मैंने तो तप के प्रभाव से, स्वर्ग सौख्य सब पाया ।
विधि ने राम और लक्ष्मण का, सब सम्बन्ध छुड़ाया ।।४७।।

हैं ध्यानस्थ जहां वे मुनिवर, उनके सन्निधि जाऊं ।
करके विविध उपाय राग से, उनका हृदय फिराऊं ।।
तज शुद्धोपयोग शुभ वश हो, यहां स्वर्ग में आवे ।
एक मित्र के तुल्य प्रेम में, सुख से समय बितावें ।।४८।।

दुस्तर है संसार जलधि में, बिकट प्रेम का बन्धन ।
पुनः पुनः जाता इस कारण उनके प्रति मेरा मन ।।
आतुरता पूर्वक प्रतीन्द्र वह, मर्त्य धरा पर आया ।
आत्म शक्ति से उसने अनुपम, सीता रूप बनाया ।।४९।।

रागोत्पादक दृश्य मनोहर, उसने वहां बनाये ।
श्रुति सुख कारक गीत अलौकिक, मधुर कण्ठ से गाये ।।
विकसित थी वसन्त ऋतु बन में, वृक्षों में था यौवन ।
कूज-कूज कर कोयल बन में, चुरा रही सबका मन ।।५०।।

बोली राम निकट आ सीता, पृथिवी तल पर फिर कर ।
पुण्य योग से पाया तुमको, खोज-खोज के थक कर ।।
लोगों के बहकाने में आ, की थी दीक्षा धारण ।
किन्तु राग से रहा सर्वथा, तुम में ही मेरा मन ।।५१।।

कहां रूप सुन्दर यौवन वय, कहां घोर द्धुर्धर तप ।
मानव हीन बिपिन में रहना, लगता मुझको अनुचित ।।
चलिये राजभवन में भोगें, भोग मनुज के सुखकर ।
करते व्यर्थ तपस्या क्यों तुम, राजसुखों को तजकर ।।५२।।

सुन सीता के राग वचन ये, हुए न उस प्रति रागी ।
देख ध्यान की प्रबल तीव्रता, मोह सैन्य सब भागी ।।
उपजा सत्वर ज्ञान अलौकिक, लोकालोक निहारा ।
हो अरिहंत अवस्था में अब, केवल ज्ञान प्रसारा ।।५३।।

स्वर्ग लोक के देवो ने आ, की पद-पंकज पूजा ।
ऐसा अनुपम आप्त लोक में, उन्हें न कोई दूजा ।।
हाथ जोड़ कर नर प्रतीन्द्र भी, बोला वचन मनोहर ।
मोह विवश हो देव आपका, मैंने किया अनादर ।।५४।।

मेरु समान आपका दृढ़ मन, रहा ध्यान में सुस्थिर ।
नही छोड़ते विज्ञ ध्येय को, उपसर्गों से डर कर ।।
है प्रणाम हे देव आपको, क्षमा योग्य मैं सत्वर ।
हमें तारिये भव-सागर से, अपना आश्रय देकर ।।५५।।

तत्पश्चात् प्रतीन्द्र स्वर्ग में, लक्ष्मण का करके सुविचार ।
अधो-भूमि में गया वेग से, करने को उनका शुभ इष्ट ।।५६।।

हे जीवो ! तुम स्वयं विचारो, राज-पाट में निज को भूल ।
अपने ही कर्मों के द्वारा, मिले तुम्हें ये दुखमय शूल ।।
अब भी चेतो, ग्रहण करो तुम, भावपूर्वक दृढ सम्यक्त्व ।
देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धा रख, प्राप्त करो सत्वर आत्मत्व ।।५७।।

ऐहिक भोगों की लिप्सा ने, दिया तुम्हें हा ! यहां धकेल ।
शीघ्र आत्म सन्मुख हो जाओ, जग सुख-दुःख कर्मों का खेल ।।
हे दशमुख तुम मर्त्य देह में, रहे धर्म से सदा उदास ।
इस कारण सहने पड़ते हैं, आज नरक के भीषण त्रास ।।५८।।

विषम रक्त रहकर जीवन पर, कर न सके अपना कल्याण ।
अवसर पाकर चूक गये तुम, सचमुच मोह महा बलवान ।।
बोला दशमुख जीव व्यथित हो, हे सुरवर तुमको है धन्य ।
आत्म धर्म का बोध दिया जो, यह उपकार सदैव अनन्य ।।५९।।

तब दयालु सुरपति बोला यों, सत्वर चलो हमारे साथ ।
और उठाने उसे प्रेम से, त्वरित बढाये दोनो हाथ ।।
पिघल गया रावण शरीर सब, होते ही हाथों का स्पर्श ।
कर सकता कोई भी क्या तब, अशुभोदय हो जब उत्कर्ष ।।६०।।

बोल उठा रावण मुख से यो, किये पूर्व में जो दुष्काम ।
भोग रहा हूँ दुःख भूमि में, उनका ही भीषण परिणाम ।।
सभी जीव निज-निज कर्मों का, फल पाते हैं सदा अवश्य ।
किन्तु आपके शुद्ध बोध से, स्वच्छ हो गया आत्म भविष्य ।।६१।।

अपनाया मैने सुबोध को, जो है आत्म सौख्य का मूल ।
रक्खूंगा मै ध्यान यही अब, कभी न जाऊ उसको भूल ।।
खरदूषण आदिक जीवो को प्राप्त कराकर सम्यग्ज्ञान ।
आया वह सीतेन्द्र वहां पर, जहा राम प्रभु ज्ञान-निधान ।।६२।।

मस्तक नमा अतीव भक्ति से, चरण युगल मे किया प्रणाम ।
की स्तुत उसने फिर सविनय, देव आप ही है गुण धाम ।।
ध्यानानल से मोह नाश कर, प्रगट कर लिया आत्म स्वरूप ।
हे भव-तारक देव आप अब, बने हुए हैं त्रिभुवन भूप ।।६३।।

इस असार ससार उदधि मे, मुझे आपका है आधार ।
जपता हूँ एकाग्र चित्त से, नाम आपका बारम्बार ।।
आयु पूर्ण होते ही प्रभुवर, आप पधारेगे शिव धाम ।
पाऊंगा जगती में कैसे, तेरे दर्शन बिन विश्राम ।।६४।।

जान ज्ञान से राग प्रबलता, उससे वे बोले भगवान् ।
हे प्रतीन्द्र इस विश्व-भ्रमण में, रागद्वेष से भी बलवान ।।
जब तक राग रक्तता मन में, तब तक सारे मनोविकार ।
राग द्वेष हैं मोह महल के, दीर्घ और दृढ़ तर आधार ।।६५।।

छोड़ विकारों को भव्योत्तम, आत्म ज्ञान में होते लीन ।
वे पाले अजरामर पद को, करके सर्व विकृतिको क्षीण ।।
लगा पूछने वह प्रतीन्द्र फिर, दशरथादिका गति वृत्तान्त ।
लव, अंकुश निर्माणगमन सब, सुनने लगा हृदयकर शॉत ।।६६।।

दशरथ, जनक, सुमित्रा, केकई, कौशल्या, सुप्रभा अनेक ।
पहुंचे ये सब स्वर्ग लोक मे, करके उत्तम तप सविवेक ।।
लव, अंकुश तो इसी देह से, प्राप्त करेंगे झट निर्वाण ।
भामण्डल हैं भोग भूमि मे, देकर के मुनि को शुभ दान ।।६७।।

ऊच नीच गति के दाता है, सबको अपने ही परिणाम ।
शुभ से पाता दिव्य भूमि को, पाप भव से दुःख के धाम ।।
मोह जन्म सारे विकल्प तज, अपने में हो जाता लीन ।
विश्व भ्रमण सारा ही उसका, पलभर में हो जाता क्षीण ।।६८।।

लगा पूछने वह प्रतीन्द्र फिर, दशमुख छोड़ नरक दुःख गेह ।
मै भी दिव्य स्वर्ग से च्युत हो, कहां धरूंगा मानव देह ।।
लक्ष्मण तथा दशानन का है, कितना आगामी भववास ।
किस भव मे तज मोह पाशको, प्राप्त करेंगे मोक्ष निवास ।।६९।।

हे प्रतीन्द्र उनका भविष्य सुन, विजयवती पुरी है यत्र ।
होगा वहां 'सुनन्द' पुरुषवर, उसकी रोहिणी प्रिया पवित्र ।।
होगे दोनों पुत्र इसी पर, 'अरहदास' उत्तम 'ऋषिदास' ।
पाल ब धु दोनों श्रावक व्रत, प्राप्त करेंगे स्वर्ग निवास ।।७०।।

च्युत होयकर स्वर्ग लोक से, उसी नगर में पा नर देह ।
दे मुनियों को दान भक्तिसे, भोग भूमिमे पा सुख गेह ।।
जाकर के फिर स्वर्ग धरा में, इसी नगर मे धरें शरीर ।
जय प्रभु शुभ जयकान्त नाम हों, होंगे ये अतिशय गम्भीर ।।७१।।

हो करके भव से विरक्त ये, स्वयं करेंगे तप अत्यन्त ।
सप्तम स्वर्ग भूमि में दोनों, भोगेंगे सुख चिर पर्यन्त ।।
हो तुम च्युत अच्युत स्वधाम से, जहां रत्नस्थल नगर महान ।
चौदह रत्नों के अधिपति दृढ़, होंगे चक्रवर्ती बलवान ।।७२।।

तब ये दोनों सप्तम दिवि तज, होंगे तेरे पुत्र पवित्र ।
दशमुख जीव इन्द्र रथ होगा, लक्ष्मण जीव मेघरथ तत्र ।।
होगे दोनों ही स्वधर्म रत, दोनों में होगा अति स्नेह ।
होगी श्रद्धा शुद्ध धर्म में, दोनों की ही निःसन्देह ।।७३।।

श्रेष्ठ इन्द्र रथ इस धरती पर, कितने ही अपने भवधार ।
होगा दिव्य पुरुष तीर्थंकर, होंगे तुम गणधर सुखकार ।।
उस भव से ही प्राप्त करोगे, अविनाशी शाश्वत निर्वाण ।
जहां सदा के लिए सर्वथा, जन्म-मरण का है अवसान ।।७४।।

लक्ष्मण जीव मेघरथ सुन्दर, कितने ही धर मनुज शरीर ।
पुष्करार्द्ध में हो तीर्थंकर, टालेगा लाखो की पीर ।।
मैं भी इस भूमण्डल पर ही, करके किंचित् काल विहार ।
मुक्तिपुरी में पहुंच जाऊंगा, टाल सर्व कर्मों का भार ।।७५।।

निज भविष्य सुन रामचन्द्रसे, प्रमुदित अतिशय हुआ प्रतीन्द्र ।
बोला मस्तक झुका भक्ति से, धन्य धन्य मैं आज यतीन्द्र ।।
हे पुरुषोत्तम, हमें जगत में, आप बताते सुख की राह ।
उसे प्राप्त करके यह मानव, नहीं किसी की करता चाह ।।७६।।

रहे आपके पद-पद्मों मे, मेरा यह मन-मधुकर लीन ।
होंगे तेरे शुद्ध ध्यान से, भव-भव के कल्मष सबक्षीण ।।
हो सनम्र उनके चरणों में, बार-बार कर दिव्य प्रणाम ।
मनमें रखकर ध्यान उन्हींका, पहुंचा वह प्रतीन्द्र निज धाम ।।७७।।

पहुंचे वे श्रीराम मुक्ति मे, तोड़ कर्म-बन्धन विकराल ।
जन्म-मरण से मुक्त हुये अब, स्वस्थ रहेंगे वे सब काल ।।
हो प्रणाम उनके चरणों में, मन में रहे उन्हीं का ध्यान ।
मुख भी उनका भक्ति भाव से, करता रहे सदा गुण-गान ।।७८।।

- इति शुभम् -

❑ ❑ ❑